प्रकाशकीय

सुलभ-साहित्यमालामें अबतक शरत्-साहित्यके चौबीस भाग और विविध साहित्यके दो भाग निकल चुके हैं। अपनी सस्ताई और अच्छाईके कारण यह पुस्तकमाला बहुत ही लोकप्रिय हुई है और साहित्य-संसारने इसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। अब हमने गुजरातीके सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाशाली लेखक श्री कन्हैयालाल माणिकलालजी मुंशीकी रचनाओंको भी इसीमें प्रकाशित करनेका आयोजन किया है और आज उनका इतिहासिक उपन्यास 'पाटनका प्रभुत्व' पाठकोंके सामने उपस्थित किया जा रहा है।

मेरे स्वर्गीय मित्र हाजी मुहम्मद अलारखिया जब अपनी प्रसिद्ध मासिक-पत्रिका 'वीसमी सदी' में मुंशीजीके उपन्यास प्रकाशित कर रहे थे और जब इस उदयोन्मुख कलाकारकी ओर सारा गुजरात आश्चर्य और कुतूहलसे मुग्ध होकर देख रहा था, तब मैंने भी उन्हें पढ़ा और निश्चय किया कि इन रचनाओंकी हिन्दीमें भी ज़रूरत है। इसके लिए मैं मुंशीजीसे मिला और उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे अपने सबसे पहले उपन्यास 'वैरनी वसूलात'[1] की एक कापी भी संशोधित करके मुझे अनुवाद करनेके लिए दे दी, जो मेरे पास अब तक सुरक्षित है। परन्तु उस समय मुझे कोई अच्छा अनुवादकर्त्ता न मिला और फिर दूसरी झंझटोंमें फँस जानेके कारण इस कामको भूल ही गया।

---

१ यह उपन्यास 'वैरका बदला' नामसे प्रकाशित हो चुका है। 'पृथ्वीवल्लभ' 'किसका अपराध' (कोनो वॉक), 'भगवान् कौटिल्य' और 'लोपामुद्रा' भी हिन्दीमें आ चुके है।

अब इतने समयके बाद मुंशीजीका साहित्य हिन्दीमें आ रहा है और इसक मुख्य श्रेय सीतामऊके साहित्य-प्रेमी राजकुमार डा० रघुवीरसिंहजी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मोहनकुमारीजीको है जिन्होंने इस कार्यके लिए प्रेरणा ही नहीं की बल्कि अपने खर्चेसे दो उपन्यासोंके अनुवाद कराके भेज दिये, और साथ ही प्रकाशित करनेके सारे अधिकार भी हमें दे दिये। इसके लिए हम तो उनके कृतज्ञ हैं ही, सुलभ साहित्य-मालाके प्रेमी पाठक भी कृतज्ञ होंगे।

हिन्दीमें ऐतिहासिक उपन्यासोंका एक तरहसे अभाव है जब कि उनके प्रेमी बहुत अधिक हैं। इन उपन्यासोंसे हमारा विश्वास है कि इस कमीकी बहुत अंशोंमें पूर्ति होगी और हिन्दीके लेखकोंको भी इस तरहके उपन्यास लिखनेकी प्रेरणा मिलेगी।

मुंशी और उनका साहित्य

हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंने जिन श्रेष्ठ प्रतिभाशाली व्यक्तियोंको पैदा किया है, और जिनका विज्ञान, इतिहास, राजनीति आदि क्षेत्रोंमे यथेष्ट नाम हुआ है, उन्होंने मातृभाषा हिन्दीकी बहुत ही कम सेवा की है। जो कुछ भी उन्होंने लिखा है वह अँग्रेजीमें, जो कुछ भी उन्होंने कहा है वह अँग्रेजीमें। पर जब हम गुजरात, बंगाल, महाराष्ट्र आदि प्रांतोके प्रतिभाशाली व्यक्तियोंको देखते हैं तब मालूम होता है कि उन्होंने अपनी मातृभाषाकी बहुत अधिक सेवा की है। श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी गुजराती भाषाके ऐसे ही सपूतोंमें हैं। वे सफल और श्रेष्ठ वकील हैं, वक्ता हैं, राजनीतिज्ञ हैं, तत्त्ववेत्ता हैं, नेता हैं और हैं गुजराती भाषाके श्रेष्ठ साहित्यकार।

हिन्दीके लिए भी मुंशीजी बिल्कुल अपरिचित नहीं हैं। जब हमारे यहाँ कॉग्रेसी हुकूमते कायम हुई तब बम्बई-सरकारके गृह-सचिवकी हैसियतसे उनका नाम सारे देशमें फैल गया। आपकी कुछ रचनायें भी हिन्दीमें प्रकाशित हुई और भारतीय साहित्य-परिषदके स्थापक होनेके कारण उसके मुखपत्र 'हंस' के द्वारा भी हिन्दी संसार उनको काफी जान गया है।

मुंशीजीका जन्म ई० सन् १८८७ में भड़ौच शहरके एक उच्च ब्राह्मण कुलमे हुआ था। स्कूल और कालेजका जीवन समाप्त करके वे ई० सन् १९१२ मे वकील हुए। वकालतमें जी तोड़ मेहनत करके वे एक सफल वकीलकी हैसियत-से जनताके सामने आये। वकालतके जीवनमें ही उन्होंने साहित्यिक कार्य करना शुरू किया और तबसे अबतक बराबर कर रहे हैं। उपन्यास, कहानियाँ, नाटक और निबन्धके रूपमें उन्होंने गुजराती साहित्यको खूब समृद्ध बनाया है।

कानूनको यद्यपि उन्होने अपनी आजीविकाका साधन बना रखा है पर उनके जीवनकी मुख्य प्रेरणा अपने देश, प्रान्त और भाषाके प्रति उत्कट प्रेम है। उन्हें सरसरी तौरसे देखनेसे ऐसा लगता है कि वे भोगोपभोगोंके गुलाम हैं। यह बात सच है कि भोग उन्हें अत्यंत प्रिय हैं, उनके लिए वे परिश्रम भी करते हैं, परन्तु संयम और त्यागकी भावना भी उन्हें उतनी ही आकर्षित करती है। आरंभमें

उन्हें ऐसा लगा कि 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते' और 'धनमूलमिदं जगत्' और वे सारी शक्तियाँ एकाग्र करके धन कमानेमें लग गये और उन्होंने लाखों रुपये कमाये। परन्तु, जब उन्हें लगा कि देशके लिए, अपने आदर्शोंकी सिद्धिके लिए और अपने विचारोंके लिए रुपया कमाना छोड़ना चाहिए, तब उसे छोड़ते हुए भी उन्हें देर न लगी। सारी सुख-सुविधाओं और भोगोंको छोड़कर जेल जाते भी वे न हिचकिचाये। उन्होंने सिद्ध करके बता दिया कि सारी बाहरी भोग-विलासके साधन उनके लिए है, न कि वे उन साधनोंके लिए। वे साधनोंके गुलाम नहीं, साधन उनके गुलाम हैं।

बहुत लोग कहते हैं कि मुंशी भाग्य-देवीके लाड़ले पुत्र हैं। जो चाहिए सो उन्हें तुरन्त मिल जाता है। शायद यह बात सही भी हो, परन्तु, उसके साथ यह भी सही है कि उस भाग्यदेवीका कृपा-कटाक्ष प्राप्त करनेके लिए उन्होंने रात और दिन अविश्रान्त परिश्रम किया है। पहले वे एक अपना ध्येय निश्चित कर लेते हैं और फिर उसके पीछे जुट पड़ते हैं, उस ध्येयके लिए चाहे जितनी मेहनत करनी पड़े, चाहे जितना त्याग करना पड़े, इसकी उन्हें पर्वाह नहीं। मुंशीजी महत्त्वाकांक्षी हैं और सत्ता उन्हें प्रिय है। पर जिस तरह भोगोपभोग प्रिय होते हुए भी वे उनके गुलाम नहीं हैं उसी तरह सत्ताके और महत्त्वाकांक्षाके भी वें गुलाम नहीं हैं, इनके मोहमें उन्होंने कभी विवेकका त्याग नहीं किया। उन्हें सत्ता सत्ताके लिए-प्रिय नहीं, पर सत्ता इसलिए प्रिय है कि उसके बिना जरूरी देशोन्नतिके कार्य नहीं हो सकते, और यह विश्वास कि जो काम जितनी अच्छी तरहसे मैं कर सकता हूँ, दूसरा नहीं कर सकता, उनमें सत्ताकी आकांक्षा या महत्त्वाकांक्षा पैदा कर देता है। गुजराती साहित्य-संसदके सभापतिकी हैसियतसे, भारतीय विद्यामन्दिरके संस्थापककी हैसियतसे, हैम-सारस्वत-सत्रके पुरोधाकी हैसियतसे जो कार्य उन्होंने किया और अपनी भाषा, प्रांत और संस्कृतिकी जो सेवा की वह अभूतपूर्व है। बम्बई सरकारके भूतपूर्व गृह-सचिवकी हैसियतसे जैसा काम उन्होंने किया, हिन्दू मुस्लिम दंगेको जिस होशियारी और शीघ्रतासे शांत किया वह अन्य प्रांतोंके मंत्रियोंके लिए ईर्षाका विषय रहा है। लोकापवादका वे भय नहीं करते, उसके डरसे कोई भी काम करनेमे पीछे नहीं हटते। जब कोई उनका विरोध करता है, तब उनकी युद्ध-वृत्ति जाग्रत हो उठती है, प्रतिस्पर्धीको नीचा दिखानेके लिए वे सरस्वतीदेवीके दिये हुए सारे शस्त्रोंका

प्रयोग करते हैं और उसे कभी माफ नहीं करते। वे अक्सर कहा करते हैं कि 'अकृतज्ञता ही दुनियाका नियम है' पर इस नियमको जानते हुए भी वे किसी-पर उपकार न करते हों या किसीका उपकार स्वीकार न करते हों, सो बात नहीं है। वे जिस किसीके भी समागममें आते हैं, उसे कभी नहीं भूलते और हमेशा उसका भला चाहते हैं। उनकी सफलताका रहस्य इस बातमें छिपा हुआ है कि वे हर कार्यके लिए योग्यसे योग्य व्यक्तिका चुनाव करते हैं और उसपर पूरा विश्वास रखना भी जानते हैं। जो लोग उनके हाथके नीचे काम करते हैं उनके साथ वे नौकरका-सा व्यवहार नहीं करते और न अपना काम निकाल लेनेके बाद, गन्नेका रस चूस लेनेके बाद छूँछका-सा व्यवहार करते हैं। काम लेते समय वे जरूरत पड़नेपर बहुत सख्ती भी करते हैं और उनकी उत्तेजना कभी कभी सामनेवालेको घबड़ा भी देती है, पर कुछ ही समय बाद उनकी स्वाभाविक प्रसन्नता और प्रेम लौट आता है।

मुंशीजीको भारतकी प्राचीन आर्य संस्कृतिका बड़ा अभिमान है। आर्यसंस्कृतिकी महिमाका गान करते हुए वे कभी नहीं थकते। परंतु उस संस्कृतिका अर्थ हमारे व्यवहारमें आनेवाली रूढ़ियाँ नही, जाति-पाँतिके छोटे छोटे घेरोंमे घिरी हुई कूपमंडूकता नही है। आर्यसंस्कृतिसे उनका मतलब ध्यान, धारणा, मनन, निदिध्यासन और समाधिके द्वारा अपनी भावनाओ और आकांक्षाओंको दुर्धर्ष और उत्कट बनाना और फिर उनके द्वारा अपने समाजके और देशके हितार्थ समग्र साधन-सम्पत्तिका उपयोग करना है। आर्य संस्कृतिका मतलब है अविभक्त कुटुम्बकी प्रथा, दाम्पत्य सम्बन्धको वासनात्मक न मानकर धार्मिक माननेकी भावना, स्वयंवर या प्रेम-विवाह और वर्णाश्रमधर्म। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, इंद्रियनिग्रह और निष्परिग्रहता इसके मूल तत्त्व हैं। आर्यत्वके अभिमानके साथ साथ मुन्शीजीमें गुजरातका अभिमान भी ज़बर्दस्त है, पर वह अभिमान अन्य प्रान्तोंके प्रति विद्वेषके रूपमें नहीं है, बल्कि, उन्नतिकर होड़ या प्रतिस्पर्धाके रूपमें है जिसमें सभीके कल्याणकी संभावना है। दो व्यक्ति किसी खेलमें होड़ लगाते हैं तो इसका मतलब यह नही कि वे एक दूसरेके जानी दुश्मन हैं बल्कि इस-लिए कि जिस समाजके वे अंग हैं सामूहिक रूपमें उस समाजका उससे स्वास्थ्य सुधरता है। देशका हरेक प्रान्त यदि इस तरह एक दूसरेसे होड़ करे तो उसका परिणाम सामूहिक रूपमें संपूर्ण देशकी उन्नति ही होगा।

मुंशीजीका साहित्य उनके व्यक्तित्वमें और उनका व्यक्तित्व उनके साहित्यमे परिस्फुट हो रहा है। उनका रोमांच-पसन्द व्यक्तित्व उनके ऐतिहासिक भूमिकापर लिखे गये रोमांचोंसे प्रकट है जिनके लिखनेमें उन्हें सबसे अधिक सफलता मिली है। 'पाटनका प्रभुत्व' उनका सबसे पहला ऐतिहासिक रोमांच है। गुजरातके इतिहासकी भूमिकापर 'गुजरातका नाथ' 'राजाधिराज' और 'जय सोमनाथ' ये तीन उपन्यास उन्होंने और भी लिखे हैं और इन चारोंका कथानक एलेक्ज़ेण्डर डयूमाके ऐतिहासिक उपन्यासोंकी तरह परस्पर सम्बद्ध है। जिस कालका इन उपन्यासोंमे वर्णन है वह चालुक्य राजा जयसिंह सोलंकीका राज्यकाल गुजरातके इतिहासका स्वर्ण-युग है। उपन्यासोंकी इस मालामें गुजराती साहित्यके सबसे महान् तेजस्वी चरित्रोंकी अवतारणा की गई है। उनको पढ़ते समय ऐसा मालूम होता है कि सरदारों, तेजःपुंज मानिनियो, तरुणी प्रमदाओं और कुलीना प्रेमवती कन्याओंकी मानो एक कतारकी कतार मार्च करती हुई चली जा रही है। पात्रों और घटनाओंकी गतिमे वे बङ्किमचंद्र जैसे ऐतिहासिक उपन्यासकारोंसे टक्कर लेते हैं। इंग्लेण्डके इतिहासको लेकर सर वाल्टर स्काटने और फ्रांसके इतिहासको लेकर एलेक्ज़ेण्डर डयूमाने जो कार्य किया वही गुजरातके इतिहासको लेकर मुंशीजीने किया है और इस अनुकरणमे वे बहुत अधिक सफल हुए हैं।

अन्य महान् साहित्यकारोंकी तरह मुंशीजीका जीवन और साहित्यके संबंधमें अपना एक अलग दृष्टिकोण है। उसे हम उन्हींके शब्दोंमें दिये देते हैं—

"जो प्रभावक और सुन्दर है सिर्फ वही एकमात्र यथार्थ 'साहित्य' है। उसके भीतरके रहस्यको थोड़े ही लोग समझ पाते हैं और थोड़े-से सुसंस्कृत रुचिवाले लोग ही उसका आनन्द ले सकते हैं।

"विषय और उसके उपयोगके चुनावके सम्बन्धमें साहित्यकार सम्पूर्ण स्वातंत्र्यका अधिकारी है। काव्य-रूढियाँ और खासकर ऐसी काव्य-रूढियाँ जो धर्म, नीति और सामाजिक आचार-विचारोंके द्वारा गढ़ी गई हैं काव्यकी आत्माको नष्ट कर डालती हैं। साहित्यिक कार्यकी एकमात्र कसौटी उसकी सफलता है,—वह सफलता जिसके द्वारा सौन्दर्यका आविष्कार हो। और सौन्दर्य वह चीज़ है जिसकी परिभाषा नहीं हो सकती, व्याख्या या निरूपण नहीं हो सकता, जो सृजनात्मिका कलाको अमर आनन्दका स्रोत बना देता है और जो नैतिक अच्छाईसे सर्वथा जुदा वस्तु है।

" और साहित्यकी आलोचना भी केवल विषयाधीन और सृजनात्मक ही हो सकती है; अर्थात् आलोचककी कल्पनापर कलाके सौन्दर्यका जो असर पड़ता है ठीक उसी असरको व्याख्या देनेका प्रयत्न ही उसकी आलोचना है।"

मुंशीजीके मतसे कलात्मक सौन्दर्य वह है जो संस्कारयुक्त जनताकी आदर्श या पूर्णता-प्राप्तिकी वासनाको शात करे।

मुंशीजीकी जीवनकी फिलासफी यह है—

" आर्य-महत्ताका रहस्य अपने आपको एक विशिष्ट शक्तिमे परिणत कर देनेमें समाया हुआ है। जब मनुष्य अपने आपको एक ऐसे विचार या निश्चयमें खो देता है जिसके कि चारों ओर उसका व्यक्तित्व घूमता रहा है, तब वह दिव्य शक्तिसे संपन्न हो उठता है।...वह स्वयं एक मूलभूत शक्ति बन जाता है आर अप्रतिहत ओजस्विता प्राप्त करता है..."

" इसी तरह दो प्रेमियोकी कल्पना जिस ऐक्यको अस्तित्वमें ले आती है उसे जब वे अपने दोनोंके बीचमें एक अद्वितीय, अपृथक् और अपरिवर्तनीय आत्माके रूपमे देख पाते हैं तभी लक्ष्यकी सिद्धि होती है। सौन्दर्यके रूपमे प्रेम उनके जीवनपर शासन करता है।...इस तरह सारे सौन्दर्य और महत्ताका रहस्य जैसे हम हैं वैसे ही बने रहनेमें नहीं, परन्तु उसकी परवर्ती किसी अवस्था विशेषको प्राप्त करनेके प्रयत्नमे है; अर्थात् 'हूँ' मे नहीं 'हो रहा हूँ' मे है,—भावनामे है। क्यों कि सिर्फ 'हो रहा हूँ' की प्रक्रियामे ही मुझे अक्षय्य आनन्द प्राप्त होता है। प्रेम और भक्ति, साहित्य-सौन्दर्य, मानव महत्त्व, बलिदान और कर्तव्य,... सबके आधारभूत तत्त्वोंका अनुसंधान करनेके बाद उनके भीतर मैंने सिर्फ एक ही सिद्धान्त निहित पाया है: जीवनमे हो या साहित्यमे हो, सौन्दर्य अधिकाधिक मात्रामें 'हो रहा हूँ' की प्राप्तिके प्रयत्नोंमें है।"

यह 'हो रहा हूँ' की प्राप्ति आवश्यक तौरपर आध्यात्मिक या नैतिक वस्तु नहीं है। वे कहते हैं—

" एक सहिष्णु निष्क्रिय निःसत्व जीवनकी अपेक्षा दूसरेके लिए त्रासरूप भयंकर जीवन बहुत अधिक महान् है। प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्रकी महत्ता संग्राम, कष्ट, तपस्या और त्यागके बीचमे एक आदर्शमय, एक निश्चयमय, जीवन जीनेके प्रयत्नोंमें है। आदर्शके द्वारा अनुप्राणित और उसकी प्राप्तिके अर्थ कष्ट सहन करनेकी तैयारीके द्वारा निर्मलीकृत मानवीय वासनाओं और प्रेरणाओंके

भीतर ही शक्ति और बलका रहस्य छिपा हुआ है । एक सर्वाङ्गसम्पूर्ण जीवनमें शक्ति और बलका अपना एक स्थान है; इसी तरह हास्य और आँसू और अभिमान और इंद्रियोंके सुखका भी अपना स्थान है । प्रेम ही सर्वोच्च कानून है; और सौन्दर्य भी । दोनों ही पूर्णताको प्राप्त करते हैं । एक तो स्त्री और पुरुषके अविभाज्य ऐक्यमें, दूसरा अनन्त आनंदमें । ”

थोड़ेमे हम यों कह सकते हैं कि भगवान् श्रीकृष्णका पूर्णत्व ही उनका आदर्श है । उसमें भोगको भी वही महत्त्व प्राप्त है जो कि त्यागको, कूटनीतिको भी वही स्थान है जो कि सचाईको । जिसे भोग प्राप्त ही नहीं वह त्याग किस बातका करेगा ? जिसमे झूठ बोलनेका साहस ही नहीं वह सच क्या बोलेगा ? उसी आदर्शको प्राणवान् करना उनकी साहित्य-सृष्टिका उद्देश्य है । गुजराती साहित्यमें उन्होंने क्या करनेका प्रयत्न किया है सो उन्हींके लेखनीसे सुन लीजिए—

“ गुजराती कथा-साहित्यमे जो प्रमुख वस्तुएँ मैं लाया हूँ वे हैं दिलचस्प कहानी, नाटकीय परिस्थितियाँ, वार्तालाप और प्राणवान् चरित्र । सर्वप्रथम और सबसे आगे मैंने अपने आपको एक कथाकार माना है, नीतिवादी नहीं । प्रारम्भमें मेरे सम्मुख विश्व-साहित्यके सबसे बड़े कथाकार अलेक्ज़ेंडर ड्यूमाका आदर्श रहा है । न तो मैंने पाठशालाके अध्यापकोंको प्रिय ‘ अच्छे लड़के लड़कियों’को चित्रित किया है और न धुँधले, पीले, अस्पष्ट चरित्रोंका ही चित्रण किया है, बल्कि लाल रक्तसे भरे, तेजःपूर्ण स्त्री और पुरुषोंका चरित्र खींचा है जिनमे वासना है, प्रेम है; जो लड़ते-झगड़ते हैं, पाप करते हैं और वास्तव जीवनकी तरह संग्राम करते हैं । मेरी प्रमुख चिंताका विषय वास्तव जीवनका नाटक है, आदर्श या नैतिक जीवन नहीं ।

“ एक ऐतिहासिक उपन्यासको जीवनके एक रोमांचपूर्ण दृष्टिकोणके सिवाय अन्य किसी दृष्टिकोणसे देखना मैंने असम्भव पाया है । किसी साहित्यिक कलाकारके द्वारा किसी विगत युगका चित्र, जैसा कि वह वास्तवमें था, चित्रित किया जाना कभी सम्भव नहीं । वह या तो अतीत कालको एक दूसरी ही दुनियाके रूपमें देखे और उसके पात्रोंको केवल कल्पना और उसके साज-सरंजामको वर्तमानमें फिट करनेमें लग जाय; अथवा अपने चारों ओर खेले जानेवाले मौजूदा जीवनके नाटकको प्राचीन कालके पर्देपर प्रतिफलित करे । जहाँ तक मैंने समझा है कालिदास, शेक्सपियर, स्कॉट, ह्युगो आदि दूसरे प्रकारके कलाकार थे । और

मैंने अपनी ससीम शक्तियोंके द्वारा कलाके इसी आदर्शको हमेशा अपने सामने रखनेकी और उस रोमांचको जीवनके अधिक निकट लानेकी कोशिश की है। इसके पहले गुजरातीमें रोमांचवाद बादलोंमें लटक रहा था। बेसिर-पैरकी बातें ही उसमें थीं। जीवनके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। ”

हम जानते हैं कि हिन्दीका रोमांचवाद भी ‘ चद्रकान्ता ’ और ‘ चन्द्रकान्ता-सन्तति ’में इसी तरह बहुत समय तक अधर लटका किया है।

इसके आगे वे कहते हैं—

“ मेरी अधिकाश कृतियोंका प्रमुख विषय प्रेम है; परन्तु ऐसा प्रेम नहीं जो बहुत ही मन्द स्वरसे फुसफुसाया जाय और रूढ़ियों तथा कवि-चातुरीसे जिसकी आवाज रूँध दी गई हो, बल्कि, वह प्रेम जिसने कि सारी आधुनिक दुनियाको अपने पैरोंसे कुचलकर पवित्रताका ढोंग करनेवाले नीतिके पाखण्डी उपदेशकों और ठण्डे खूनवाले लज्जावादियों (Prudes) के विरोधमें ऑसुओंमें और खूनमें अपने पद-चिह्न छोड़ दिये हैं। मैंने प्रेमकी भावनाको उसकी कमजोरी और मज़बूती, उसकी प्यास और चाह, उसके विप्लवों और दुष्परिणामों, उसके दिव्य आत्म-समर्पण और दिव्य आनन्दके भीतरसे देखा है। मैंने इस विश्वाससे ऐसा किया है कि उसके निष्कपट सहज स्वाभाविक चित्रणमे ही उसकी काव्यमयता और दिव्यता समायी हुई है; और यही उसे अश्लीलता और गंदगीसे बचानेका एकमात्र उपाय है। इस विचारका अनुसरण करते हुए मैंने भारतकी प्राचीन काव्य-परम्पराओं, कवि-समयों या काव्य-रूढियोंका भंग किया है परन्तु मेरे विचारसे जीवन ही अपने वास्तवरूपमें पवित्र है, उसे गुलामीके बन्धनमें डालनेवाले कानून नहीं। ”

मुंशीजीके उपर्युक्त विचार जान लेनेके बाद पाठकोंको इस उपन्यासके समझने और आस्वाद लेनेमें सुभीता होगा।

गुजरात और राजपूतानेमे वहाँकी राजनीति और शासन-कार्यमे प्राचीन समयसे ही जैनोंका विशेष हाथ रहा है। मेवाड़, जोधपुर, जयपुर आदि राज्योंमें तो अधिकाश मंत्री और दूसरे अधिकारी अभी अभी तक जैनधर्मके अनुयायी रहे हैं। मुंशीजीने चन्द्रावतीको महाजन-सत्तात्मक राज्यके रूपमे चित्रित किया है, वह इतिहासमें भले ही न हो, परन्तु असम्भव तो नहीं है।

वैश्योंकी विभिन्न जातियाँ जिनमें अधिकांश जैन थीं और हैं प्राचीन गणतन्त्र-राज्योंकी अवशेष मालूम होती हैं। डा० सत्यकेतु विद्यालंकारके अनुसार अग्रवाल जाति 'आग्रेय' गणकी अवशेष है। स्वर्गीय काशीप्रसादजी जायसवालने इन गणराज्योंके बारेमें बहुत लिखा है। इन वैश्य जातियोंका पंचायती संगठन भी इसी बातकी ओर संकेत करता है। गणराज्योंके नष्ट होनेपर ये विभिन्न प्रान्तोंमें जाकर बस गईं और उनमेंसे अधिकांश व्यापार-वाणिज्य करने लगीं। कोई आश्चर्य नहीं यदि मुंशीजीद्वारा कल्पित चन्द्रावतीके जैन एक महाजनसत्तात्मक राज्य स्थापित कर लेते हैं।

जैन-यति आनन्दसूरिके द्वारा जैन साम्राज्यके स्थापित करनेके प्रयत्नकी कल्पना अनोखी और अनैतिहासिक होनेपर भी असम्भव नहीं कही जा सकती। परन्तु इसके कारण एक बार गुजरातके जैन समाजमें बहुत ही क्षोभ उत्पन्न हो गया था और मुंशीजीके विरूद्ध एक बड़ा भारी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। परन्तु यह इसलिए नहीं कि जैन-धर्म राज्य-स्थापनाका विरोधी है। क्षोभका कारण आनन्द-सूरिका चरित्र-चित्रण था। एक निवृत्ति परायण जैन साधुका राजनीतिमें पड़ना प्रायश्चित्तयोग्य होनेपर भी एक ऊँचे उद्देश्यकी दृष्टिसे क्षम्य हो सकता है परन्तु महालयमें आग लगाकर मण्डलेश्वरको बुरी तरहसे मौतके मुँहमें डाल देना जैनोंको असह्य मालूम हुआ। हमारी समझमें मुंशीजीने इस पात्रके आलेखनमें जरा और सावधानी रक्खी होती, कलमको और संयत रक्खा होता तो शायद उक्त आनन्दोलन न उठता।

फिर भी आनन्दसूरिका चरित्र एक महान् चरित्र है। जब हम उसके मुँहसे सुनते हैं कि—

"यदि समय रहते भारतवर्षमें एक धर्मकी सत्ता प्रबल न होगी तो एकधर्मी यवन कल जल्द ही हम सबको दासोंका भी दास बना छोड़ेंगे।"

"अन्तमें मेरे ही सिद्धान्तोंकी विजय होगी, नहीं तो परधर्मी यवन आगे बढ़ रहे हैं। भरतखंडकी पतितपावनी भूमि उनके पैरोंके नीचे कुचली जा रही है। पानीपतकी और सिन्धुदेशकी भूमि चली गई है; अब तुम्हारी जानेवाली है। एक धर्मके बगैर एक साम्राज्यकी स्थापना करोगे, तो तुम्हारे मुंजालोंकी मेहनत धूलमें मिल जायगी; तुम्हारे बच्चे-बच्चियाँ ग़ज़नीके बाज़ारमें बेचे जायँगे।"

तब हमें वह त्रिकालदृष्टा महापुरुषके रूपमें दिखाई देता है और चाहे हम

जैन हों या अजैन, मुंशीजीके साथ ही साथ सोचने लगते हैं कि अगर भारतवर्ष किसी एक धर्ममे,—चाहे वह जैनधर्म ही क्यों न होता, दीक्षित होकर एकधर्म, एकलक्ष्य और एक अविभाज्य शक्तिके रूपमें विदेशियोका मुकाबिला करता तो हमें अपने देशकी यह पराधीनता न देखनी पड़ती। अन्तमें जब हम आनन्द-सूरिको अपनी मान-मर्यादाकी जरा भी पर्वाह न करते हुए चले जाते देखते हैं, देखते हैं कि सारे प्रपंचोमें पड़कर भी वह अन्दरसे पूर्ण अनासक्त है तो उसके सारे अपराध मन ही मन माफ कर देते हैं और हमारी नजरोंमे वह मुंजालसे भी अधिक ऊँचा उठ जाता है।

मुंजालको मुंशीजीने महान् चरित्र कल्पित किया है और मालूम पड़ता है कि स्वयं अपने जीवनमे भी वे उस तक पहुँचनेकी कोशिश करते रहे हैं। बम्बईकी काग्रेसी सरकारमें गृह-सचिवके पदको जिस खूबीसे वे निभाते रहे, उसे देखकर कहना पड़ता है कि उन्होंने काफी सफलता प्राप्त की।

आखिरमे इस उपन्यासकी ऐतिहासिकताके विषयमे अधिक चर्चा न करके मैं इतना ही कहना यथेष्ट समझता हूँ कि मुंशीजी अपनी इस रचनामे उस 'ऐतिहासिक रस' की उद्भावना करनेमें पूर्णतया सफल हुए हैं जिसके बारेमें महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर लिखते हैं—

"हमारे अलंकार-शास्त्रोंमे नौ मूल रसोंका उल्लेख किया गया है। किन्तु, बहुतसे अनिर्वचनीय मिश्र रस भी हैं जिनका उल्लेख करनेका प्रयत्न नहीं किया गया। इन्हीं समस्त अनिर्दिष्ट रसोंके अन्दर एकका नाम 'ऐतिहासिक रस' रक्खा जा सकता है और यह रस महाकाव्योंका प्राणस्वरूप होता है।

"उपन्यासके अन्दर इतिहासके मिल जानेसे जो एक विशेष रस संचारित हो जाता है, उपन्यासकार एकमात्र उसी ऐतिहासिक रसके लालची होते हैं। उसके सत्यकी उन्हें कोई विशेष परवा नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति उपन्यासमे इतिहासकी उस विशेष गन्ध और स्वादसे ही सन्तुष्ट न हो और उसमेंसे अखण्ड इतिहासको निकालने लगे, तो वह सागके बीचमें साबित जीरे, धनिएँ, हल्दी, और सरसों ढूँढ़ेगा। मसालेको साबित रखकर जो व्यक्ति सागको स्वादिष्ट बना सकते हैं वे बनाएँ, और जो उसे पीसकर एकसम कर देते हैं उनके साथ भी हमारा कोई झगड़ा नहीं, क्यों कि, यहाँ तो स्वाद ही लक्ष्य है, मसाला तो उपलक्ष्य है।"

—हेमचन्द्र मोदी

प्रस्तावना

प्राचीन गुजरातका इतिहास जाननेके साधन इतने अल्प हैं कि उनपर उपन्यासकी नींव रखना बहुत कठिन है। उस समयके रीति-रिवाज़, कार्यपद्धति और संसारकी घटनाओंका हमें बहुत कम ज्ञान है। ऐतिहासिक पुरुषोंके जीवन-चरितोंका तो नितान्त अभाव है। तद्विषयक लेख भी थोड़े ही मिलते हैं, और जो मिलते हैं वे उपन्यास-रचनाके लिए निरर्थक हैं। अतएव, जिस समयका चित्रण अभीष्ट है, उसके वातावरणका सृजन करना असंभव-सा हो जाता है। इन कारणोंसे जो कुछ प्रयत्न किये जाते हैं, उनमें ऐतिहासिक दृष्टिसे अनेक दोष रह जायँ यह स्वाभाविक है। इस उपन्यासमें सज्जनोंको यदि इस प्रकारका कोई दोष दिखलाई दे, तो आशा है, वे क्षमा करेंगे।

इस उपन्यासके अनेक पात्र ऐतिहासिक हैं। भीमदेव और विमलशाहकी ऐतिहासिक ख्याति जगत्-प्रसिद्ध है, न हो, तो होनी चाहिए। इस समय जिस जगह अहमदाबाद है, उसके निकट ही कर्णावती नगरीको स्थापित करनेवाला कर्णदेव भी परिचित है; उसकी स्त्री मीनलदेवी चन्द्रपुर (दक्षिण) से किस प्रकार आई, राजासे विवाह किया, अवमानिता हुई और मुंजालके प्रयत्नसे फिर किस प्रकार सम्मानिता हो गई, यह भी इतिहासमें है। क्षेमराजके त्याग और अपने काकाके प्रति देवप्रसादके आत्म-त्यागके लिए भी ऐतिहासिक प्रमाण हैं। इतिहासमें केवल यह नहीं दिखाया गया है कि देवप्रसादकी मृत्यु किस कारण हुई। शान्तिचन्द्र, मुंजाल और उदा (श्रीमाली वणिक) के द्वारा हमारे महान् गुर्जरेश सिद्धराज जयसिंहदेवके समय की गई सेवाओंकी साक्षी इतिहास देता है; और उदा तो कुमारपालके राज्य-कालतक महामंत्री था। कुमार जयदेव भविष्यके राधाधिराज हैं, उन्हें सभी पहचान सकेंगे। त्रिभुवनपाल जयदेवके परम मित्र और पाटनके अलंकार थे। मदनपाल और लीलाधर वैद्य भी सच्चे ऐतिहासिक पात्र हैं। मदनपालकी मृत्यु भी ऐतिहासिक है। पाटनकी ध्वजापर ताम्रचूड़ कुक्कुटका चिह्न था, यह अनेक लेखोंमें मिलता है और सिद्धराज 'ताम्रचूड-ध्वज' के नामसे पुकारे जाते थे।

इस उपन्यासको इस प्रकार जन्म देनेमें दो मित्रोंसे बहुत सहायता मिली है, इसे हम साभार स्वीकार करते हैं: एक हैं श्री अम्बालाल बु० जानी, और दूसरे श्री खुशाल त० शाह।

१९१६ ई०

क० मा० मुंशी

पाटनका प्रभुत्व

१—उपोद्घात

गुजरातके वैभवपर अन्धकार, विस्मरण और पराधीनताके अनेक स्तर चढ़ गये हैं। यद्यपि आज गुजरातकी भूमिपर नीरस शान्ति छाई हुई है, तथापि किसी समय इसी भूमिपर इतिहासकी सजीव घटनाएँ घटित हुई थीं। अकालके मारे हुए इन्हीं खेतोंकी परिपूर्ण फसलने, नाममात्रको रहे हुए इन्हीं वनोंके वृक्षोंकी गहरी हरियालीने और सूखी हुई सरिताओंके उछलते हुए जलने किसी समय कुछ और ही जीवन देखा था: विजयी वीरोंकी रण-गर्जना सुनी थी, सत्ता और भक्तिके भावोंका अनुभव किया था। गुजरात एक महावृक्ष है: उसकी जड़में परमात्मा श्रीकृष्णका कर्मयोग छिपा हुआ है, उसकी डालियोंपर महाकवि नर्मद और महात्मा गाँधीकी कोंपलें फूटी हैं।

मध्यकालमें गुर्जर-साम्राज्यकी नींव डालनेवाला मूलराज सोलंकी था। उसके प्रतापके कारनामोंने अनहिलवाड़ पाटनका नाम सारे भारतवर्षमें प्रसिद्ध कर दिया था। आसपासके राज्योंको जीतकर वह उनपर पाटनकी पताका फहराना चाहता था। इसमें वह बहुत अंशोंमें सफल भी हुआ था, परन्तु, वृद्धावस्थामें उसकी धार्मिक वृत्ति इतनी अधिक बढ़ गई कि उसके पुत्र चामुंड तथा पौत्र दुर्लभ-सेनपर भी उसकी छाया पड़े विना न रही। साम्राज्यके स्वप्न नष्ट हो गये। पाटनके नरेश स्वतंत्र पर सत्ता-हीन हो गये।

जब दुर्लभसेनके भाई नागराजका युवक पुत्र भीमदेव सिंहासनपर आरूढ़ हुआ, तब देशकी स्थिति बहुत ख़राब थी। मूलराजकी राजनीतिके कारण लोग बहुत धनी और स्वच्छन्द हो गये थे। राजपूत इधर-उधरकी लूट-पाटसे

अपनी सत्ता बढ़ाते थे और उसीमें अपनी कृतार्थता समझते थे। इसलिए देशकी हालत कुछ ठीक-ठिकानेकी नहीं थी। इसी समय गजनीके बादशाहकी आकांक्षाका ज्वालामुखी फट पड़ा। उसके लावाकी ज्वालाओंने पाटनको जला डाला, सोमनाथको भूमिसात् कर दिया—गुजरातकी स्वतन्त्रताकी धूल उड गई। भीमदेव अपने प्राण लेकर कंथकोट (कच्छ) भाग गया।

परन्तु, वहाँ वह शान्त होकर बैठनेवाला नहीं था। उसमें अथाह शौर्य और साहस था। मुहम्मद ग़ज़नीके पीठ फरते ही इधर-उधरके योद्धाओंको एकत्र करके उनमे स्वदेश-प्रेम जागृत करना उसकी समझमें पल-भरका काम था। श्रावकोंको अपने राजाओंके संरक्षणमें निर्भयतासे व्यापार करनेकी टेव पडी हुई थी। वे यवनोंके अत्याचारी शासनसे तंग थे, इसलिए उन्होंने भी सहायता की, और वीरवर भीमने पाटनको फिर अपने अधीन कर लिया। उसने यवनोंके बिठाये हुए नाम-मात्रके राजाओंको देशसे बाहर निकाल दिया और पाटन फिर स्वतन्त्र हो गया।

भीमदेव योद्धा था, राजनीतिज्ञ नहीं। उसे यह नहीं आता था कि धन और सत्तासे अभिमानी बने हुए व्यापारियोको किस प्रकार ठीक रखा जाय। यह भी उसकी समझमे नहीं आता था कि लूटनेवाले और चाहे जिस बहानेसे उपद्रव मचानेवाले अविचारी राजपूतोंको किस प्रकार सीधा किया जाय। पाटनके नगरसेठ और दंडनायक विमल मंत्रीने धनके मदमें चूर होकर पाटन छोड़कर चन्द्रावती बसाई। बहुत-से धनी व्यापारी भी वहाँ जा बसे, और अपने राज्य-कार्योंको पंचायतके द्वारा करने लगे। पाटनकी सत्ता वहाँ नाम मात्रकी ही थी। भीम विमलशाहकी मैत्रीको निभाता रहा, उसकी सहायतासे आसपासके राज्योंसे लड़ा और मालवराजकी महत्त्वाकांक्षाको भी काबूमें रख सका। पाटनका राजा बहादुर कहलाता और योद्धा समझा जाता था; परन्तु पाटनके बाहर उसकी सत्ता बहुत कम थी। मूलराजके समयमें जागीरें पाकर जो राजपूत योद्धा, छोटे छोटे राजा बन गये थे, पाटनके राजाको नाम-मात्रका चक्रवर्ती समझते थे और जो शक्तिशाली मण्डलेश्वर थे, वे अपने अपने मण्डल या प्रान्तमें एक तरहसे स्वतंत्र थे। इन सबकी सहायतासे ही भीमदेवने पाटनको फिर अपने अधीन किया था; इसलिए वह उनसे कुछ कह नहीं सकता था।

जैनों और राजपूतोंमे बहुत वैमनस्य रहता था, जब-तब झगड़े हुआ करते थे। जैन साहूकार भी शक्ति और शौर्यमें कुछ कम न थे। राजा बड़ी मुश्किलसे दोनों पक्षोंको सीधा रखनेका प्रयत्न करता था। भीमने वानप्रस्थाश्रम ग्रहण कर लिया। उसकी पहली वणिक स्त्री बकुलादेवीका पुत्र क्षेमराज बड़ा बुद्धिमान् था। परन्तु, उसे विश्वास नहीं था कि राजपूत सामन्त उसकी सत्ताको कहाँ तक स्वीकार करेंगे; अतएव बुद्धिमानीसे काम लेकर वह भी वानप्रस्थ हो गया और अपने पुत्रके लिए उसने देहस्थलीका प्रान्त माँग लिया। तब राजपूत स्त्री उदयामतीका पुत्र कर्णदेव सिंहासनपर आरूढ़ हुआ। उसमे वीरता थी, पर साथ ही वह मौजी और शौकीन भी था। अतएव युद्धोंके दुःख उठानेकी अपेक्षा कर्णावती स्थापित करके वहाँ सुन्दर और विशाल महल बनवानेकी ओर उसकी दृष्टि अधिक गई। वह चाहता था कि सब कुछ शान्तिसे चलता रहे।

क्षेमराजका पुत्र देवप्रसाद अशान्तिकी मूर्ति था। उसमें भीमदेवकी वीरता, सरलता, शौर्य और प्रताप मूर्तिमान् हो रहे थे। परन्तु, बुद्धि और राजनीतिक दाव-पेचोंमे उसके समान यह भी कच्चा था। आसपासके थोड़ेसे स्वतन्त्र और छोटे छोटे नगर उसने सर किये और वह राजपूत सामंतोंका अगुआ बन गया। उन्हें भीमदेवके स्वच्छन्दी उपद्रवी दिन याद आये और वे मानने लगे कि कर्ण-देवके पश्चात् देवप्रसाद गद्दीपर बैठे, तो सोनेका सूर्य उदय हो जाय। *

इस समय पाटनके श्रावकों या जैनोंका बल बढ़ गया। जो श्रावक चन्द्रावती चले गये थे, उनमेंसे बहुतोंको पाटनके प्रति प्रेम था। वे फिर लौट आये और कर्णकी शान्त राजनीतिके कारण वे सफल भी हुए। मंत्री-पद तो वे बहुत समयसे भोग रहे थे, और, यदि राजा नाम-मात्रका हो और फिर वह उनके कहे अनुसार चलता हो, तो उस राजाको नाम-मात्रका सम्मान देते रहनेमें क्या हर्ज था?

इसी समय चन्द्रपुरकी राजकुमारी मीनल कर्णदेवसे व्याह करने आई। राजा व्याहा, पछताया और उसने उसे छोड़ भी दिया। परन्तु बादमें नगरसेठ मुंजालके प्रयत्नसे, जो कि राजाका मित्र था, पति-पत्नीके बीच मेल हो गया। राजा मीनल देवीको फिर मानने लगा और उनसे कुमार जयदेवका जन्म हुआ। मीनलदेवी

---

* अनहिलवाड़ पाटनके राजाओंकी वंशावली—

जैन थी, उसका मुख्य परामर्शदाता मंत्री बुद्धिमान् मुंजाल भी जैन था; अतएव राजपूतोंकी परिस्थिति ज़रा बेढब हो गई। देवप्रसादका प्रभाव कम होने लगा।

देवप्रसाद पहले तो चिढ़ा, फिर हारकर देहस्थली जा रहा और वहाँ अपना मंडल बढ़ानेका प्रयत्न करने लगा। देहस्थलीका मंडल एक छोटा-सा राज्य बन गया। पाटनको निर्बल देख कर देवप्रसादका हृदय फटता था; परन्तु करे क्या!

मुंजालने छोटे सामन्तोंको तो धीरे धीरे पाटनके अधीन कर लिया। परन्तु मंडलेश्वरों और खास करके देवप्रसादको अधीन करना सहज नहीं था। और फिर राजा किसी भी कड़े उपायसे काम लेनेके विरुद्ध था; अतएव मुंजाल कोई सख़्त कदम न उठा सकता था।

कर्णदेवकी मृत्यु निकट आ पहुँची। इससे वातावरण गम्भीर हो गया। सब सोचने लगे, कि 'अब क्या होगा!'

२—भूत
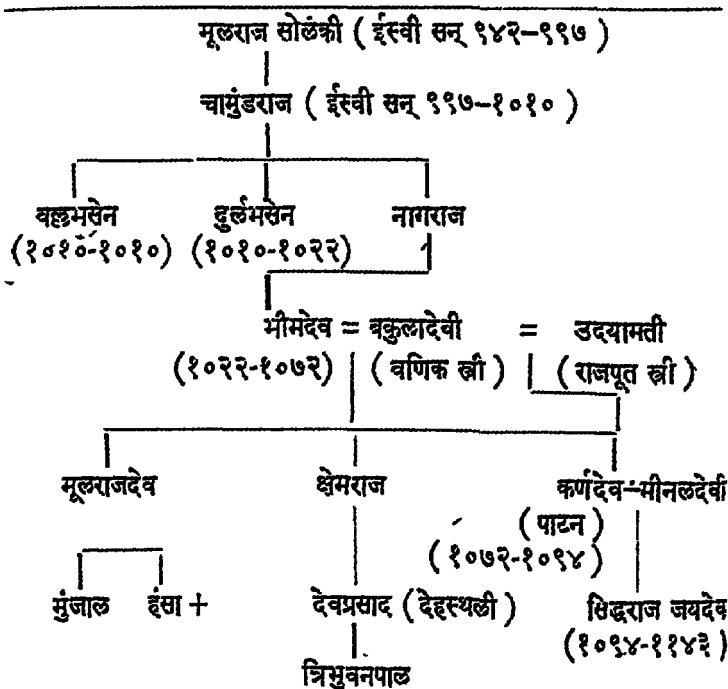
सम्वत् ११५० के ग्रीष्मकी रमणीय सन्ध्या अंधकारमें विलीन हो रही थी। सप्तमी-अष्टमीका अर्द्ध चन्द्र धीरे धीरे तेजस्वी होता जा रहा था। पाटन जानेका मार्ग इस समय शून्य और भयंकर प्रतीत होता था। आस-पासकी वृक्षावली सॉय-सॉय कर रही थी। दूरसे सुन पड़नेवाली सियारोंकी आवाज़ कभी कभी भयानक रूपसे शान्तिका भंग कर देती थी। ऐसे निर्जन मार्गपर लुटेरों और बहारवटियोंके× भयकी परवाह न करके दो घुड़सवार तेज़ीसे पाटनकी ओर जा रहे थे।

आगेके घोड़ेका सवार प्रचंड और तेजस्वी प्रतीत होता था। उसकी बड़ी बड़ी और तेजस्वी ऑखें ॲधेरेमे न दिखनेवाले पाटनके किलेकी ओर लगी हुई थीं; और वह जब-तब अपने तेज़ घोड़ेको एड़ लगाकर और भी तेज़ीसे दौड़ानेका प्रयत्न कर रहा था, मानों इस चालसे उसे सन्तोष नहीं था। उसका पहनावा उस समयके साधारण राजपूत योद्धाओंका-सा था। उसकी छोटी भौंरे जैसी काली दाढ़ीके छोर कानसे लिपटे हुए थे।

पिछला घुड़सवार लगभग सत्रह वर्षका, स्वरूपवान् और चञ्चल था। उसकी सुन्दर ऑखें, इतनी तीव्र गति होनेपर भी, आसपासकी विशेषताओंको देखनेमे नहीं चूक रही थीं। उसका पहनावा भी बड़े सवारके ही सदृश था।

वातावरणमे रमणीय अस्पष्टता थी, मोहक शान्ति थी, दुखियोंके हृदयमें भी सुख प्रेरित करनेकी शक्ति थी, फिर भी आगे चलनेवाले घुड़सवारका चित्त अशान्त था। उसकी भौंहें चढ़ी हुई थीं।

कुछ चलकर अगले घुड़सवारने घोड़ेको जरा रोका और पीछे मुड़कर पिछले घुड़सवारसे कहा, "त्रिभुवन, इस पगडंडीसे हम जल्दी पहुँचेंगे, क्यों?"

त्रिभुवनने कुछ मुस्कराकर कहा, "मुझे मालूम नहीं; परन्तु यह तो किसीका खेत प्रतीत होता है।"

× गुजरातमे बहारवटिया उन विद्रोहियोंको कहते हैं जो राजासे बिगड़कर उसके कानूनोंको तोड़ने और प्रजाको तंग करनेके लिए बाहर निकल पड़ते हैं।

" इससे क्या हुआ ? पासमें ही श्रावकोंका उपाश्रय+ है, वहींसे जाना होता है । " यह कहकर अगला घुड़सवार चल पड़ा ।

पगडंडी बहुत सकडी थी । ऊपर झुके हुए वृक्षोंकी घटामेंसे कहीं कहीं चन्द्रमा दीख जाता था । परन्तु घोडा कुशल और विश्वसनीय था । घुड़सवार उसपर भरोसा रखकर आगे बढ़ा । कुछ देरमें सकड़ी पगडंडी चौड़ी हो गई और वृक्षोंकी कतारसे बना हुआ एक प्राकृतिक चौक-सा आ गया । वहाँ चाँदनी फैली हुई थी; सब चीज़ें रुपहले रंगसे रँगी हुई दिखाई पड रही थीं । घुड़सवार विचारोंके चक्करमें इधर उधर देखे बिना घोडा दौड़ाता रहा ।

इतनेमें अगले सवारका घोडा लडखड़ा गया और तेज़ीके जोशमे बढ़ता हुआ गिर पड़ा । सवार भी उसके साथ नीचे आ रहा । गिरते-गिरते उसकी दृष्टि सामने पड़े हुए एक पत्थरपर गई । गिरनेकी पीडाको भूलकर वह उसी ओर देखने लगा ।

रुपहली चाँदनीके साथ सन्ध्याके मन्द प्रकाशके मिल जानेसे जो अद्भुत स्वप्न-जैसा सन्ध्याका उजेला हो रहा था, उसमें उसने उस पत्थरपर एक स्त्रीको देखा ।

उसके वस्त्र सफ़ेद और सादे प्रतीत हुए । मुखारविन्द सुन्दर पर सूखा-सा लगा । आँखें बडी, परन्तु म्लान-सी दिखलाई पडीं । गिरते-गिरते एक पलमें सवारने यह सब देख लिया । उसकी एक एक रेखा उसने हृदयमें अंकित कर ली, उसे पहचान लिया, हृदयकी गहराईमेंसे एक विशाल तरंग उठी और वह कहाँ है, क्या कर रहा है,—सब भूल गया ।

सवार एकदम उठ खड़ा हुआ और धूल झाडनेकी भी परवाह किये बिना पत्थरकी ओर लपका । " कौन, ऐं ! " परन्तु पत्थरपर कोई था नहीं । सवारकी आँखें फट गईं, उसका अंग अंग काँपने लगा । उसने चारों ओर देखा; परन्तु कोई भी नहीं था । स्वप्न समझकर उसने आँखें मलीं । पागलोंकी भाँति व्याकुल-सा होकर वह इधर उधर देखने लगा ।

" यह कैसा भ्रम है भगवान् ! " वह इस प्रकार दयनीय-सा मुख बनाकर बुदबुदाया, जैसे उसका हृदय फटा जा रहा हो । मस्तककी वेदनाको दबानेके लिए उसने कनपटीको हाथोंसे दबा लिया । कपालके पसीनेको पोंछ डाला । निःश्वास छोडा । अज्ञात भयसे उसे ज़रा कँपकँपी आ गई ।

+ उपासरा, जैनसाधुओंके ठहरनेके लिए बना हुआ मकान ।

इतनेमें पिछला सवार आ पहुँचा। "पिताजी, क्या देख रहे हैं! अरे क्या घोड़ेपरसे गिर पडे?"

पिताने बड़ी कठिनाईसे चित्तको ठिकाने लाकर कहा, "नहीं बेटा, घोड़ा जरा लड़खड़ा गया था।"

"क्या घोड़ा लड़खड़ा गया था? परन्तु आप गिर गये, यह तो अनोखी बात है।"—कहकर त्रिभुवन हँस पड़ा और घोड़ेको निकट लाकर पिताकी ओर देखने लगा। उनके भयंकर बने हुए चेहरेको देखकर वह चुप हो रहा। पिताके स्वभावको वह जानता था, और ऐसे अवसरपर चुप रहना ही पसन्द करता था। पिता चुपचाप अपने होठोंको दबाये हुए घोडेके पास आया और धीरेसे उसको कसा। ऊबकर, लापरवाहीसे घोडेकी लगाम उसने घोडेकी गरदनपर डाल दी और छातीपर सिर झुकाकर गहरे विचारमें लीन हो गया। उसे ऐसा लगा; जैसे एक पलमें ही बुढ़ापेने आ घेरा हो।

पीछे चंचल लडकेने पिताकी व्यथाको देखा और बीचमें बोलकर उसे अधिक दुखी करनेकी अपेक्षा मौन मुख वह भी घोड़ेको धीरे धीरे बढाने लगा। अगला घोड़ा भी अपनी इच्छानुसार चलने लगा।

कुछ देर यही क्रम रहा। इसी समय अगले सवारकी विचार-माला फिर टूट पडी। किसीने पुकारकर कहा, "अरे! वह सामने बाड़ेका दरवाजा बन्द किया हुआ है, उस तरफ़ घोड़ा लिये जा रहे हो, कॉटोंमे न जा पड़ोगे?"

सवारने फिर चित्तको ठिकाने किया, "क्यों, यह रास्ता बन्द है?"

"हॉ भैया, यों फिर कर जाओगे तो रास्ता मिल जायगा।"

"यहॉ कहॉ आ गये?"

इसी समय लड़का पीछेसे आ पहुँचा, "आप पहचानते नही, यह विमल मंत्रीका स्थानक है।"

"अच्छा!"

लड़केने पूछा, "पाटनका दरवाज़ा अब कितनी दूर है?"

"यही कोई दो खेतोंकी दूरीपर है, इस रास्तेसे जाओ।" कहकर ग्रामीणने रास्ता दिखा दिया।

पिता और पुत्र साथ साथ चलने लगे।

"बहुत विलम्ब हो जायगा। पाटनके दरवाज़े बन्द हो गये, तो फिर मुश्किल है।"

लड़केने कहा, "उस यतिने रास्तेमें बहुत देर लगा दी! मुझे तो वह कोई बड़ा पहुँचा हुआ मालूम पड़ा।"

"बेटा, आज-कल चन्द्रावतीके जैन अभिमानसे फूले नहीं समा रहे हैं। पाटनको भी जैनोंका ही बनाना चाहते हैं। क्या करूँ, मेरा वश नहीं है।"

"पिताजी, आप इतने ज़ोरसे बोल रहे हैं! कहीं कोई सुन लेगा तो!"

"हाँ, बेटा, भूल गया! लो, वह दुर्ग दिखलाई पड़ने लगा; परन्तु त्रिभुवन, वह यति तो हमसे पहले रवाना हुआ है, इसलिए अब पहुँच गया होगा।"

"हाँ, हम ज़रा थकावट दूर करनेको सो गये और वह निकल गया।"

पाटनका दरवाजा आ पहुँचा। वह बन्द होनेकी तैयारीमें था। पिता-पुत्रने चुपचाप दरवाज़ा पार किया।

कुछ देरमें अगले घुड़सवारने घोड़ा खड़ा रखकर कहा, "बेटा, मैं राज-महलमें जा रहा हूँ, तुम अपने यहाँ जाओ।"

त्रिभुवन बड़े प्रेम-भावसे कुछ देर पिताकी ओर देखता रहा, "पिताजी, यों अकेले जाओगे और कुछ हो गया तो!"

"अरे पगले! मुझे क्या होगा! किसका साहस—"

"समय अच्छा नहीं है, आप जो कदम बढ़ा रहे हैं, वह बड़ा विकट है।"

"विकट क्या है! ऐसे तो न जाने क्या क्या कर चुका हूँ।"

"परन्तु, मामा बड़े जबरदस्त हैं!"

"जाओ, जाओ, जाकर बेफ़िक्रीसे सो जाओ। ऐसे बहुत-से मंत्री देख डाले हैं।"

"अच्छा, कल सबेरे समाचार दीजिएगा।"

"ज़रा भी चिन्ता न करो।" कहकर पिताने अपना घोड़ा एक ओर बढ़ा दिया।

पिता जब तक दृष्टिसे ओझल न हो गया तब तक त्रिभुवन खड़ा रहा और कुछ देरमें उसने भी उसी ओर अपने घोड़ेको बढ़ा दिया।

३ —भविष्यवाणी

राजपूत सवार राजमहलके पिछले दरवाजेपर नौकरोंके आने-जानेकी खिड़कीके पास पहुँचा और उसने धीरे से उसे खटखटाया। कुछ देरमे एक स्त्रीने खिड़की खोल दी, "कौन, भीमा?"

सवारने ज़रा हँसते हुए कहा, "नहीं, ज़रा समरसेन चोबदारको बुला दोगी?"

स्त्री लजाकर सिर नीचा किये चली गई।

सवारने कुछ देर प्रतीक्षा की। अन्तमे थककर बगलके एक कुंडेसे घोड़ेको बाँध दिया, और खिड़कीको लाँघकर अन्दर जा पहुँचा। ऐसा प्रतीत होता था कि वह राजमहलके कोने-कोनेसे परिचित है। इसलिए वह बायीं बग़लसे नौकरोंके रहनेकी कोठरियोंकी ओर गया और उसने एक कोठरीका द्वार खटखटाया।

"कौन है इस समय?" कहकर एक बूढ़ेने द्वार खोल दिया, सवारको देखकर उसने आश्चर्यसे पूछा—"कौन?"

"मैं हूँ। चुप रह, मुझे अन्दर आने दे।"

राजपूत अन्दर चला गया और उसने सावधानीसे किवाड़ बन्द कर लिये। चोबदार हाथ जोड़े सामने खड़ा हो गया।

"प्रभु, आप इस समय और यहाँ?"

"समर, यहाँ इसी समय मेरा काम है। इस समय न आता, तो फिर जीवन-भर देहस्थलीके दुर्गमे सड़ते रहना पड़ता।"

"परन्तु मालिक, अगर मुंजाल मंत्री या मीनलदेवी जान जायँगीं, तो?"

"तो क्या हुआ? तीन-चार दिन इस प्रकार बीत गये, तो फिर मुझे कोई अड़चन नहीं आ सकती।"

"जो मालिककी आज्ञा। अब—"

"अब क्या? तुम्हारे पास जो कुछ खानेको हो, ले आओ, और फिर लीलाधर वैद्यको बुला दो।"

"अन्नदाता, यह तो नहीं हो सकता। वे रात-दिन महाराजकी सेवामें रहते हैं।"

" तो उनका दामाद वाचस्पति क्या करता है ?"

" हॉ, वे ठाली हैं; परन्तु उनसे क्या कहूँ ?"

" कहना कि जिनके कारण तुम उपाध्याय बने हो, वे बुला रहे हैं।"

चोबदारने कुछ खानेको ला दिया। राजपूतने उसे खाया। इतनी ही देरमे चोबदार बाहरसे लौट आया।

" सरकार, वाचस्पति आ रहे हैं।"

" अच्छा, अब तुम जाओ।"

" जो आज्ञा।" कहकर चोबदार वहाँसे चला गया। राजपूत इधर-उधर टहलने लगा। कुछ देरमें वह बड़बड़ाया, " तू इस समय कहाँसे ?" उसकी भवे चढ़ी हुई थीं। ऑखोंमें खिन्नता स्पष्ट दिखाई पड रही थी। विशाल कंधे झुक-से गये थे। कुछ देरमें एक दुबला-पतला झुका हुआ-सा बुद्धिमान् व्यक्ति आया। चाहे जितनी भीडमें वह ब्राह्मण पंडितके रूपमें पहचाना ज़ा सकता था। वाचस्पति गजानन पंडितने काशीमें रहकर अध्ययन किया था और इस समय वह पाठशालाका मुख्य उपाध्याय था। राजवैद्य लीलाधरका वह जमाई था और विद्वत्ता तथा विश्वासपात्रताके कारण राजमहलमें उसका सम्मान था। उसने आकर पुकारा " समरसेन !"

" समरसेन नहीं है। मैं हूँ, मैंने तुम्हें बुलाया है।"

आवाज सुनकर वाचस्पति घबरा गया, उसका कलेजा धड़कने लगा, उसकी सुध-बुध जाती रही " कौन ? मंडले—"

" धीरे, पडित, धीरे, यह कोई चिल्लानेकी जगह है ?"

" परन्तु, आप यहाँ ? आपके साहसकी तो हद हो गई।"

" साहसको रखो एक ओर, मैं किसी कामसे आया हूँ।"

" किस कामसे ?"

" मुझे काकाजीसे मिलना है।"

" यह नहीं हो सकता। दिन-रात मीनलदेवी, उदयमती या मुंजाल मेहता पास रहते हैं।"

" मैं अपने काकासे भी नहीं मिल सकता ?"

" परन्तु आप और सबके तो शत्रु हैं !"

" वाचस्पति, इस समय मैं कह रहा हूँ और तुमसे इतना-सा काम नहीं हो सकता ? आज तुम उपाध्याय किसके कारण बने हो ? यह भी वक्तकी ही बात है कि भीमदेवका पौत्र याचना कर रहा है और तुम इनकार कर रहे हो ?—ऐं ? "

" समय बहुत बलवान है, नहीं पुरुष बलवान । "

" भाड़में झोंको अपनी बुद्धिमानीको, कोई मार्ग निकालो । "

" मार्ग निकलना कठिन है । इस समय गुजरातका राजतंत्र बिगड़ गया है । सुधारनेवाला श्रीहरि—"

राजपूतने ऊबकर कहा, " श्रीहरिको रहने दो । कुछ सीधी तरहसे भी कहोगे या नहीं ? चाहे जैसे करो, पर यह काम करना ही होगा । "

" मालिक ! " सिर खुजलाते हुए पंडितने सोचना शुरू किया " एक काम कीजिएगा ? "

" कहो । "

" वणिककी जैसी पगड़ी बाँधिए और यह मेरा शाल ओढ़ लीजिए । पर, है बड़ी जोखिमका काम । शिर साँटेकी बात है । मेरे साथ चलिए, मैं आपको छिपा दूँगा । और, मौका देखकर वैद्यराजसे कहूँगा । "

" हाँ, स्वीकार है । " कहकर राजपूत पगड़ी बदलने लगा ।

" महाराज, यदि कुछ उल्टा सीधा हो जाय, तो इसकी जोखिम मेरे सिर न होगी । "

" घबरा क्यों रहे हो ? यह लो, तैयार हो गया । परन्तु, वाचस्पति, एक बात पूछूँ ? "

" पूछिए । मेरी विद्वत्ता आपहीके लिए है । "

दुःख-पूर्ण स्वरमें राजपूतने पूछा, " मरा हुआ आदमी भूत कब होता है ? "

" महाराज, विषय गूढ़ है और शास्त्रीय है । श्राद्ध-विधिके अनादरसे अत्यन्त वासनाके विकारसे यदि आत्मा प्रेतलोकमें रह जाय, तो वह मौका आनेपर पृथ्वीपर लौट आती है । "

" किसलिए ? "

" स्नेहियोंसे मिलने या उन्हें चेतानेके लिए । "

" ऐं !— " राजपूत जरा फीका-सा हँसता हुआ बोला । उसके मुखपर फिर निराशाके चिह्न दिखलाई पड़ने लगे । पहले वाचस्पति निकला, फिर राजपूत ।

दोनों कोठरीसे बाहर आ गये। जंजीर चढ़ाई और धीरे धीरे, जिस कमरेमे कर्ण-देव मृत्यु-शय्यापर पड़े थे, उस ओर चले।

राजमहलमें सर्वत्र सुनसान था। राजाकी बीमारीकी चिन्तामें, भविष्यके सोच-फिकरमें, सभीके हृदय अशान्त थे। अतएव महलमे दीपक मंदसे जल रहे थे, नौकर-चाकर धीरे धीरे चल-फिर रहे थे और सबके मुख चिन्ताग्रस्त दिखलाई पड़ रहे थे। एक अँधेरे कमरेमें होकर वाचस्पति राजपूतको ऊपर ले गया और जहाँ राजा कर्णदेवकी शय्या थी, उसकी बग़लके कमरे तक वे बिना किसी विघ्नके पहुँच गये। परन्तु, इसी समय किसी स्त्रीके कंगनोंकी खनखनाहट सुनाई पड़ी। वाचस्पतिने राजपूतका हाथ थाम लिया "मुश्किल हुई!"

राजपूतने धीरेसे पूछा, "क्यों?"

"महारानी आती मालूम होती हैं। इधर आइए, इस झरोखेमे चले जाइए, अवसर पाकर बुला लूँगा।"

"अरे!—"

"अब अरे बरे कुछ नहीं, जाइए न चुपचाप।" कहकर वाचस्पतिने झरोखेके अधखुले द्वारमेंसे राजपूतको ठेलकर किवाड़ बन्द कर दिये।

राजपूतने झरोखेमें जाते जाते किसीका पद-रव निकट आते हुए सुना और अधिकार-पूर्ण स्वरमें किसीसे कुछ पूछते हुए भी।

"कौन है?"

वाचस्पतिका उत्तर सुनाई पड़ा, "कोई नहीं माताजी, मैं हूँ।"

राजपूतका हृदय कुछ अधीरतासे व्याकुल होने लगा। वह झरोखेमें इधर उधर टहलने लगा "क्या करूँ, कोई मार्ग नहीं दिखलाई पड़ता।"

अँधेरेमेंसे आवाज़ सुनाई पड़ी, "आओ भाई, मैं दिखलाऊँ!"

राजपूत चौंक पड़ा, तलवारपर हाथ रखकर आगे बढ़ा, "कौन है?"

अस्त हो रहे चन्द्रके प्रकाशमे कोई आता हुआ दिखाई पड़ा और आनेवालेने ज़रा व्यंगसे पूछा, "राजपूतराज, इतनी ही देरमें भूल गये?"

"कौन? यति? जो रास्तेमे मिले थे? इस समय यहाँ कहाँसे?"

"जहाँसे तुम आये वहींसे। कदाचित् हमारे भाग्यमें परस्पर मित्र बनना ही लिखा है।"

" परन्तु आप कहाँसे आ गये ? "

" जिस प्रकार आपको छिपानेवाला कोई मिल गया, उसी प्रकार मुझे भी किसीने ला छिपाया। "

राजपूतने होठ चबा लिये।

" यतिजी, इस समय एक दूसरेकी बात जाननेमें सार नहीं है; परन्तु जैसा आप कहते हैं, वह ठीक मालूम होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि या तो हम मित्र बन जायँगे, या कट्टर शत्रु। "

" इस समय इस भूमिपर शत्रुताकी ही आवाज सुनाई देती है। "

" यह श्रावकोंका प्रताप है ! "

" या राजपूतोंका ? "

" यह तो कर्णदेव मरेंगे, तब ज्ञात होगा। "

अब इस बातको छोड़ दीजिए। "

राजपूतने मूँछोंपर हाथ फेरते हुए कहा, " तो अब मित्रताकी बात की जाय। आपका नाम क्या है ? "

" आनन्दसूरि। "

" और आपका ? "

राजपूतने जरा विचार करते हुए कहा, " लोग मुझे देवीसिंह कहते हैं। "

यतिने जरा हँसते हुए कहा, " यह मुझे आज ही मालूम हुआ कि मंडलेश्वर झूठ बोलते हैं। "

देवीसिंह चौंक पड़ा। उसका हाथ अनजाने फिर तलवार जा पहुँचा, " तुम कौन हो ? "

" तलवार निकालनेकी आवश्यकता नहीं है मंडलेश्वर। यहाँ गड़बड़ होगी, तो वह आपको ही भारी पड़ेगी, मुझे नहीं। "

राजपूतने निश्वास डालकर अपनी स्थितिको समझा और तलवारसे हाथ हटा लिया।

" आनन्दसूरि, तुम कौन हो ? क्या मुझे इस समय प्रकट कर देना चाहते हो ? "

" नहीं राजा, आपको दुःख पहुँचाना मेरा काम नहीं है। परन्तु इस समय तो आपपर दैवका कोप है। "

" यतिजी, दैव तो इस प्रकार कई बार कुपित हुआ और रीझा है। मुझे उसकी परवा नहीं है !"

" मंडलेश्वर, राजा रावणका अभिमान भी चूर्ण हो गया है, ध्यान रखिए। इस समय मैं शत्रु नहीं, मित्रके रूपमें कह रहा हूँ कि तुम्हारे दिन पूरे हो गये हैं। जितने दिन रहे हैं, उनका सदुपयोग कर लो।"

" सदुपयोग यही कि जितना भी हो सके, श्रावकोंको पीस डालूँ। इन पापियोंने मेरा सब कुछ लूट-खसोट लिया है। अब और भी अधिक लुट जाऊँगा, इसकी मुझे परवाह नहीं।"

" अब वे आपके हाथों अधिक न पिसेंगे।"

" क्यों ?"

" गुरुदेवका वचन है—"

" क्या ?"

" जिनभगवान्‌के शत्रु मेरे हाथों ठिकाने लगनेवाले हैं।"

मंडलेश्वरको कँपीकँपी आ गई। वह मौन होकर खड़ा रह गया।

" राजा, वर्षोंसे आप जिनभगवानके दीन सेवकोंको जला रहे हैं; इसलिए आप माफ़ नहीं किये जा सकते। फ़िर भी आप वीर पुरुष हैं और गुजरातके अलंकार।"

" आपकी क्षमाकी किसे परवाह है।" राजपूतने तिरस्कारसे हँसते हुए कहा।

" न हो; परन्तु राजाकी मृत्यु हो जानेपर बहुत उपद्रव मचेगा। यदि कभी मेरे योग्य कोई काम पड़े, तो—"

" मुझे काम पड़े ?" मंडलेश्वरने गर्वसे हँसते हुए कहा।

" राजा, आप बुद्धिमान् हैं, शूरवीर हैं। धर्म-विरोध न होता, तो आपकी उन्नति देखकर मैं प्रसन्न होता। फिर भी आजकी भेटके संस्मरण-स्वरूप मैं वचन देता हूँ, उसे याद रखना। किसी दिन काम पड़े, तो आनन्दसूरिसे कहना, वह करेगा।"

" यतिजी, मंडलेश्वर याचना नहीं करता, न कभी करेगा। जिस प्रकार धनके अभिमानमें श्रावक लोग फूल रहे हैं, उसी प्रकार अपनी भुजाओंके बल-पर हम भी मस्त हैं।

" जैसी आपकी इच्छा ! परन्तु देखो, सावधान रहना । "

" मंडलेश्वर डरता नहीं है । "

" तो भी मौतका डर तो है ? "

" यतिजी, मृत्यु मेरे लिए एक खिलवाड़ है । "

" जैसी इच्छा । अच्छा, मैं जाता हूँ । मैं उस ओरसे आया हूँ, उसी ओर जाऊँगा । " कहकर यति झरोखेकी दूसरी ओर चला गया ।

मंडलेश्वर विचार ही विचारमें मूछें चबाने लगा । उसके मस्तिष्कमें सन्ध्या-समयका भूत और यतिकी आगाही घूमने लगी । कितने ही वर्ष हुए उसने अकेले अपने हाथों अपने मंडलको छोटा-सा राज्य बना लिया था । उसके नामका डंका सारे गुजरातमें बज रहा था; परन्तु देहस्थलीमें पड़े रहना उसे भला नहीं मालूम होता था । पाटन उसके विचारसे सृष्टिका मुकुट था । उसमें महा-मणिकी भाँति सुशोभित होनेकी उसे बड़ी भारी आकांक्षा थी । इस ओर पाटनके शासक उसे निर्बल बनानेका प्रयत्न कर रहे थे । और यद्यपि उनका यह प्रयत्न अधिकांश निष्फल हो गया था, तथापि उसने इस समय मंडलेश्वरको उलझनमें डाल दिया था ।

४—मुंजाल

आनन्दसूरि झरोखेके दूसरे छोरपर पहुँच गया । वह अपने मनमें फूल रहा था । गुरुदेवसे आज्ञा लेकर जब चन्द्रावतीसे वह पाटन आया, तब उसे यह आशा नहीं थी कि ऐसे शुभ शकुन होंगे ।

" महाराज ! " एक स्त्रीका स्वर सुनाई पड़ा ।

यति विचारोंसे जाग्रत हुआ, " कौन, रेणुका ? "

" जी हाँ, पधारिए । मैंने मंत्रीजीको आपका पत्र दे दिया है और वे आपको बुला रहे हैं । "

" कहाँ हैं ? "

" चलिए मेरे साथ ! " कहकर रेणुका यतिको वहाँसे ले गई। यतिको ज़रा क्षोभ हुआ। गुजरातके महामंत्री मुंजालको कौन नहीं जानता था ? उसकी हुंडियाँ बग़दाद और वेनिसमें सकारी जाती थीं। काँपते हुए सामंत और मंडलेश्वर उसकी शक्तिकी साक्षी देते थे। मालवराज उसे अपना बनानेके लिए अवंतिका अपार धन देनेको तैयार था और पाटनके लोग उसके पीछे पागल थे, उसकी आज्ञापर मरनेको तैयार रहते थे। ऐसे मनुष्यसे पहली ही बार मिलनेपर यतिको क्षोभ होना स्वाभाविक था। एक कमरेमें दो-तीन गुमाश्ते कुछ लिख रहे थे और एक कोनेमें चार-पाँच शस्त्र-सज्जित व्यक्ति धीरे-धीरे वार्त्तालाप कर रहे थे। यतिको देखकर सबने ज़रा एक दूसरेकी ओर देखा; परन्तु कोई बोला नहीं। रेणुकाने हाथसे यतिको ठहरनेके लिए संकेत किया और वह अन्दर चली गई। कुछ देरमें वह लौटी और उसे अंदर ले गई।

अन्दर झूलेपर मंत्री बैठे हुए थे। वे लगभग पैंतीस वर्षके जान पड़ते थे। उनका मुख सुन्दर था, आँखें तलवारकी धारकी भाँति तीक्ष्ण थीं, शरीर सशक्त और सुगठित था। मुखपर इस वयसमें भी नई जवानी जैसी ही मूँछें थीं। कपालपर विचारकी गौरव-पूर्ण रेखाएँ झलक रही थीं। लम्बी चोटी कंधोंपर फैल रही थी जिसे वह समेट रहे थे।

यतिकी ओर एक तीक्ष्ण दृष्टि डालकर उन्होंने नमस्कार किया और झूलेपर बैठनेका इशारा किया। वे स्वयं पास पड़ी हुई चौकीपर जाकर बैठ गये।

" विराजिए। "

" नमस्कार मंत्री महाराज ! " कहकर आनन्दसूरि बैठ गया। पहली बार मुंजालको देखनेपर उसके हृदयमें न जाने क्या क्या विचार उठे। मुंजालकी लोकप्रियता, उसका विशाल व्यापार, उसकी दृढ़ राजनीति, शत्रुओंके मुखसे सुना जानेवाला उसका मीनलदेवीसे सम्बन्ध,—यह सब बातें तत्काल ही उसके मनके आगे आ खड़ी हुईं। इन सब विचारोंको रोककर उसने मंत्रीके साथ बातचीत आरंभ की।

" चन्द्रावतीमें सब कुशल-क्षेमसे हैं। नगरसेठका पत्र आपने पढ़ा ? "

मंत्रीने ज़रा गम्भीर स्वरमें कहा, " हाँ, परन्तु उन्होंने अपनी माताके समाचार क्यों नहीं लिखे ? मौसी कैसी हैं ? "

" जब मैं आया, तब तो उनकी हालत कुछ गिरी हुई-सी थी। "

" कहिए, कैसे आये हैं ? आप जानते हैं, इस समय मुझे अवकाश नहीं है।"
" जी हॉ, मैं आपके कार्यमे विघ्न डालनेको नहीं आया हूँ। "
मंत्री कुछ तिरस्कारसे हँस पड़ा और मौन हो गया।
" जिनभगवान्की कृपासे, गुरुदेवका वचन है कि इस समय मेरे हाथो अनेक कार्य होना भाग्यमें लिखा है और इस समय आपके काम आनेके लिए ही मैं यहॉ आया हूँ। "
" देखिए, सौभाग्यभाई लिखते हैं कि आप विद्वान् और होशियार हैं; इस लिए काम तो बहुत आयेंगे। परन्तु ठीक तो यह है कि आप एक ही काम करें। " मंत्रीने कुछ लापरवाहीसे कहा।
" क्या ? "
" कृपा करके पाटनके राज-तन्त्रमे चन्द्रावतीका झगड़ा न लावे।—" मुंजालने धीरे-से परन्तु दृढ़तासे कहा।
यति चौंक पड़ा। मुंजालने कैसे जान लिया कि इसीके लिए वह आया है ? मंत्रीसे वह जरा डरने लगा।
" मै कोई झगडा करने नहीं आया हूँ। अपने नगरसेठके लिखे अनुसार आपसे मिलकर फिर महारानीजीसे मिलूँगा और जब तक मेरे योग्य कोई काम न मिलेगा, तबतक यहीं रहूँगा। "
मुंजाल कुछ देर उसकी ओर देखता रहा, जैसे उसके कथनपर उसे विश्वास न हुआ हो और फिर बोला, " आनन्दसूरिजी, मुझे ज्यादा बात करना पसन्द नहीं है। चन्द्रावतीके श्रावकोकी सत्ताके प्रतिनिधिके रूपमें आप आये हैं, परन्तु धर्मका जोश मैं पाटनके शासनमें नहीं लाना चाहता। और आप उसे लानेका प्रयत्न करेंगे, तो मेरी-आपकी न पटेगी। इतना ही कहता हूँ कि यदि ऐसा करेंगे, तो मुझे आपको शत्रु समझना होगा। "
" नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं है। इस समय तो मैं मित्र बनकर आया हूँ, और इसके प्रमाणकी आवश्यकता हो, तो अभी दे सकता हूँ। "
" क्या ? "
" एक गुप्त बात बतलाऊँ ? "
मुंजालने फिर कुछ तिरस्कारसे हँसकर पूछा, " कौन-सी ? "
" कर्णदेवका भतीजा देवप्रसाद यहीं है। "

मुंजाल खिलखिलाकर हँस पड़ा, " आनन्दसूरिजी, चन्द्रावतीमें क्या इसी प्रकार राज-काज चलता है ? "

" क्यों ? "

" यही गुप्त बात है ? पाटनसे बाहर दोपहरके समय आप उससे मिले, अभी अभी झरोखेमे इतमीनानसे बातें कीं। क्या यह सब मेरी दृष्टिसे बाहर है ? यतिजी, आप तो लोगोंको मोक्ष दिलाया करें और मेरा काम मुझे करने दें। " मुंजालने ज़रा हँसते हुए कहा। यति दिग्मूढ हो गया। उसका गर्व ज़रा उतर गया।

" मंत्रिराज, क्षमा कीजिए। आपकी शक्तिसे मैं अपरिचित था। "

" अच्छा। परन्तु, इतना स्मरण रखिएगा कि मेरी राजनीतिके बीचमें आनेवालोंको मैं क्षमा नहीं करता।" मुजालने भयकर दृष्टिपात करके कहा। " कहिए, अब आप क्या करना चाहते हैं ? आपने भोजन कर लिया, या भूखे हैं ? "

" महारानीजीसे प्रणाम करना बाकी रहा है। आज मैं भोजन नहीं करूँगा, उपवास है। "

" अच्छा, तब मेरे साथ चलिए। मैं भी उन्हींके पास जा रहा हूँ। " कहकर मुंजालने पासकी खूँटीपरसे खेस उतार कर ओढा और दूसरे द्वारसे यतिको साथ लेकर प्रस्थान किया। आनन्दसूरिका अभिमान ज़रा उतर गया था। उसके आगे-आगे गौरवसे पैर बढाता हुआ मुंजाल तेजीसे चल रहा था। उसे देखकर यतिके मनमें विचार हुआ कि ' चन्द्रावती और प्रकारसे चाहे जैसी हो; परन्तु, पाटनके मंत्रीके समान नर-पुंगव तो वहाँ कोई नहीं है। '

जब महारानीजीके कमरेके पास आये, तब मुंजालने यतिको ठहरनेका इशारा किया। कमरेके द्वार बन्द थे। द्वारके सामने एक हरे रंगके हंडेमें दीपक टिमटिमा रहा था। मुंजालने कुंडा खटखटाया। कुछ देरमे एक बूढी स्त्रीने द्वार खोला— " कौन है ? "

" मै हूँ। " मुंजालने कहा।

" हाँ, आइए। महारानीजी आपकी राह देख रही हैं। यह कौन है ? "

" यह चन्द्रावतीके यति हैं। बूढ़ी, तुम यहाँ बैठो। मैं अभी बुलाऊँगा। " कहकर, बुढ़ियाको वहाँ बिठाकर मुंजाल अन्दर चला गया।

यतिने मुंजाल और मीनलदेवीके विषयमें अनेक बातें सुनी थीं। इस समय

यदि अज्ञात रूपसे, दीवार तोड़कर, अदृष्ट रहकर इन दोनोंकी बातें सुनी जा सकें, तो कैसा ? यति गुणपूजक था और कर्णदेवकी राजधानीमें रहनेवाले महान् व्यक्तियोके समागमका अनुभव प्राप्त करनेके लिए आया था। सौभाग्यसे अब तक तो उसकी इच्छा भली भाँति पूर्ण हुई थी। वह यह विचार करता हुआ खड़ा रहा कि कब द्वार खुले और इन महान् व्यक्तियोंमें भी सबसे अद्भुत मीनलदेवीको वह देखे। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि जब तक मुंजालकी सत्ताको कम करनेकी कोई कुंजी नहीं मिलती, तबतक सब व्यर्थ है। मीनलदेवीके विषयमे उसने बहुत कुछ सुना था। उसके विचारोका सफल होना रानीके अभिप्रायपर भी निर्भर था, इसलिए वह विचार करने लगा कि उसके साथ किस प्रकार वार्त्तालाप किया जाय।

५—मालवराजकी ख़रीद

पिताका घोड़ा दृष्टिसे ओझल होते ही त्रिभुवन भी उसकी आज्ञाको भूल कर उसी मार्गसे जाने लगा। उसका चित्त प्रफुल्लित था क्यों कि पिताके दुःखोंसे वह परिचित नहीं था। उसके लिए पाटन मूर्तिमान् सुख-स्वप्नके समान था। परन्तु, दुर्भाग्यसे वह अधिक समय तक यहाँ नहीं रह सकता था। वह धीरे धीरे राजमहलकी ओर गया और उसकी दूसरी ही ओर घूम पड़ा। आख़िर एक कोनेमें एक एकान्त झरोखेके नीचे घोड़ेको रोककर उसपरसे उतर पड़ा। उसने पृथ्वीपरसे एक कंकड़ उठाया और झरोखेकी अन्दरसे बन्दकी हुई खिड़कीपर मारा; कुछ देरमे फिर एक कंकड़ फेंका, फिर दो-चार इकट्ठे फेंके। इसके उत्तरमे धीरेसे खिड़कीका द्वार खुला और एक सुकुमार बालिकाका हँसता हुआ मुख बाहर आ गया। उसने आस-पास देखा और द्वारको और अधिक खोलकर झरोखेमे आकर नीचेकी ओर देखने लगी।

"कौन है ?"

"अरे कौनवाली, कबतक खड़ा रखेगी ?"

"कौन है ? जाता है कि नहीं ?" हँसते हुए उस बालाने कहा।

"जाऊँ कहाँ, मै ऊपर आता हूँ, रस्सी बाँध।"

"रस्सी तो तीन दिन हुए, टूट गई!"

" नहीं नहीं प्रसन्न, देखो, पिताजीका काम था, इससे मैं न आ सका।"

" तो अब मुझे काम है, लौट जाओ।" कहकर बालाने खूँटीपरसे रस्सी उतारी और वह उसे झरोखेके जंगलेसे बाँधने लगी।

" लौटकर कैसे जा सकता हूँ ? क्षत्रिय हूँ।"

" इस समय रातको चोरोंकी भाँति आना यह भी क्षत्रियत्व ही प्रदर्शित कर रहा है!"

" तुम्हारे लिए सब स्वीकार है। बस करो, इतनेसे काम चल जायगा। बहुत नीची क्यों बाँधती हो ?" कहकर त्रिभुवन रस्सीसे लिपट गया और दो-एक हाथ ऊपर गया ही था कि ऊपरसे हँसती हुई प्रसन्नने रस्सीकी गाँठ ज़रा ढीली कर दी; अतएव रस्सी खुल गई और त्रिभुवन रस्सीके साथ पृथ्वीपर आ रहा। त्रिभुवन हँसते हुए उठकर खड़ा हो गया।

" अरे चण्डिकादेवी! कोई चौकीदार आ जायगा, तो तुम्हारे और मेरे दोनोंके प्राणोंपर आ बनेगी।"

" तो मैं क्या करूँ, तुम्हारा दुर्भाग्य! रस्सीको वापिस फेंको, अब अच्छी तरह बाँधूंगी।"

त्रिभुवनने रस्सी फेंकी और प्रसन्नने फिरसे बाँध दी। पलक मारते मारते त्रिभुवन झरोखेपर पहुँच गया, जङ्गलेको थामकर ऊपर चढ़ गया और उसने प्रसन्नको जा पकड़ा।

" तुम्हें मेरी शपथ है, जो मुझे पकड़ो!"

" क्यों ?"

" मैं तुमसे रूठ गई हूँ। तीन दिन बिताते मेरे तो प्राण निकल गये।" मुँह मटकाकर प्रसन्नने कहा।

" देख लिया तुम्हारे प्राणोंको।" कहकर त्रिभुवन उसे पकड़ने लगा। बिल्लीकी भाँति तेजीसे प्रसन्न अन्दर चली गई, पीछे-पीछे त्रिभुवन भी दौड़ पड़ा। परन्तु उसके अंदर घुसनेके पहले ही प्रसन्न झूलेपर चढ़ गई और खड़े खड़े झूलने लगी।

" अरे रोको! क्या मरना चाहती हो ?"

" लो पकड़ो अब, साहस हो तो!" प्रसन्नने अधिकाधिक पैंगें बढ़ाते हुए कहा। उसकी हँसी पेटमें नहीं समा रही थी। उसकी आँखोंमें हास्य और

शरारत भरी हुई थी। त्रिभुवनको चिढ़ाते हुए पैंगोंके परिश्रमसे उसके मुखपर लाली आ गई थी। धीरे-धीरे उसकी चोटी भी खुल गई और वह अधिकाधिक पैंगें बढ़ाने लगी।

"प्रसन्न, देखो गिर जाओगी।"

"यह तुम्हारा दोष है, आये क्यों नहीं? अब मैं उतरनेकी नहीं। तुमसे जो हो सके, कर लो।"

पैंगोपर पैंगें आ रही थीं और वह बैठ बैठ कर और बढ़ा रही थी। प्रसन्नने जब मोहिनीकी आकर्षक भयंकरता धारण की तब त्रिभुवनके प्राण सटपटाने लगे और इस चिन्तामें वह चुपचाप खड़ा रहा कि यदि झूला टूट पड़ा, तो क्या दशा होगी! पलक मारते ही प्रसन्नने हाथ छोड़ दिये और वह हँसते हँसते परिणामका खयाल किये बिना ही कूद पड़ी और सामने खड़े हुए त्रिभुवनपर जा पड़ी। इस प्रकार अचानक कूद पड़नेसे त्रिभुवन चकित हो गया और स्वस्थता खोकर भूमिपर गिर पड़ा। दोनोंको कड़ी चोट आई, फिर भी हँसते हुए भूमिपर पड़े-पड़े दोनोंने एक दूसरेको भुजाओंमें कस लिया।

"दुष्टा कहींकी! ऊधम मचा रही है?" कहकर त्रिभुवनने दो-एक चपतें जड़ दीं। "शैतान तूने यह क्या किया!" उधरसे प्रसन्नने भी त्रिभुवनकी कुछ मरम्मत कर दी।

"चल, अब उठ, पहुनागत (आतिथ्य) पूरी हो गई।"

"मेरा दुर्भाग्य कि मैं यहाँ आया। चल उठ, झूलेपर बैठ। मेरा तो मस्तक भन्ना रहा है।"

"और यह मेरा हाथ देखा? छिल गया और रक्त बह रहा है।"

"ठीक हुआ, चिन्ता मिटी। चल अब मैं जाता हूँ।"

"अब जाते कहाँ हो? तब आये ही क्यों?"

"क्यों, तुम कह न रही थीं कि चले जाओ? अब मेरी बारी है।"

"ऐसा मत करो। अब तुम यहीं रहोगे?"

"त्रिभुवनने गम्भीर होकर उत्तर दिया, "कोई निश्चय नहीं है। कुछ समझमें भी नहीं आ रहा है। परन्तु इस समय बादल बड़े घिरे हुए मालूम होते हैं।"

"तुम्हारे बाप भी बड़े विकट हैं!"

"प्रसन्न, तुम उनके विषयमें क्या जानो? संसारमें उनके समान योद्धा नहीं

है, नर-पुंगव है। और तुम्हारी बुआने उन्हें इतना दुःख दिया है कि उसे वे ही सहन कर सकते हैं।"

"बुआजीकी बात ही न करो। संसारमें वे भी एक ही हैं।" प्रसन्न कुछ कर्कश स्वरमें बोली।

"और संसारमें मंडलेश्वर भी एक ही हैं।"

"सो तो ठीक, परन्तु कोई यह जान जाए कि हम प्रतिमास इस प्रकार मिला करते हैं, तब?"

"तब क्या? कोई चोरी करते हैं?"

"नहीं, परन्तु बुआजी मट्टी पलीद कर छोड़ेंगीं।"

"इसमें मट्टी पलीद करनेकी कौन बात है? परन्तु यह तो कहो कि बारहटजी (चारण) कैसे हैं?"

"वे दिनोंदिन दुर्बल होते जा रहे हैं; परन्तु तुम्हें बहुत याद करते हैं।"

"तो चलो, मिल आयें। फिर मुझे जाना है।"

"आये नहीं कि तुम्हें तो जानेकी सूझती है। अच्छा, चलो—" कहकर प्रसन्न त्रिभुवनको बारहटके पास ले गई।

सामल भीमदेवका सम्मानित बारहट था। वह उनके वीर अशान्त शासन-कालका अडिग साथी था, और आज नब्बे वर्षकी अवस्थामें भी जब कि उसकी आँखें चली गई थीं, बोलनेकी शक्ति कम हो गई थी, स्मरण-शक्ति घट गई थी, पहलेके यशोगान याद कर करके जी रहा था। राजमहलके ही एक भागमें वह रहता था और सब उसे सम्मान और श्रद्धासे देखते थे। प्रसन्न और त्रिभुवनके प्रति वह बहुत ही स्नेह रखता था। जब ये दोनों पास पहुँचे, तब वह बिछौने-पर बैठा था और बगलमें एक नौकर उसका हुक्का भर रहा था। उनके आनेपर नौकर हुक्का रखकर चला गया।

"बारहटजी, जय सोमनाथ!"

छातीपरसे सिरको उठाकर बारहटने अपनी निस्तेज आँखोंको घुमाया।

"कौन है भाई!"

"क्यों, पहचानते नहीं हो?"

"कौन, त्रिभुवनपाल? आओ, आज सामल बारहटको याद किया? बहुत दिन हो गये।"

" आपके बिना कहीं चल सकता है ? कहिए, तबीयत कैसी है ? दिनोदिन बहुत दुर्बल होते जा रहे हैं ? "

" भैया, साथी चले गये, सुभट चले गये, और कर्णदेव भी जानेको बैठे हैं। फिर मै तो पुराना हूँ, अब मुझे भी जाना चाहिए। "

" फिर हमें बोध कौन देगा ? "

" अब बोधकी किसे आवश्यकता है ? पाटन तो अब जानेको बैठा है, बल्कि उसे प्राचीन वैभव अखरता है, प्राचीन वीरता खटकती है, भैया ! " वृद्धने सिर हिलाकर कहा।

"रहने दो बारहटजी, आपको तो पहलेका ही सब कुछ भला मालूम होता है। "

बारहटने ज़रा उत्तेजित होकर कहा, "अब रह क्या गया है ? केसरिया करना त्याग कर राजा लोग षड्यन्त्र रचने लगे, रणके मैदानको छोड़कर वैधव्य-सा धारण कर लिया, प्रतिदिन कुछ न कुछ नया ही सुन पड़ता है। "

" क्यों ? हालमे ऐसा क्या सुना जो इतने चिढ़ गये हो ? " प्रसन्नने पूछा।

" प्रसन्न बेटी, क्या कहूँ ? जो मालवराज पाटनका नाम सुनकर कॉपा करता था, उसे अब रिश्वते दी जाती हैं ! उसके बलसे भयभीत होकर उसे सन्तुष्ट करनेके प्रयत्न किये जा रहे हैं ! "

प्रसन्नने होठ चबा लिये और व्याकुल होकर त्रिभुवनकी ओर देखा।

त्रिभुवनने पूछा, " ऐं ! यह भला क्या है ? "

" जब रनवास राज करने लगता है, तब इसके सिवा और क्या हो सकता है ? स्त्रियोंकी बुद्धि तो पैर-तले रहती है भैया !"

त्रिभुवनने पूछा, " परन्तु बात क्या है ? "

प्रसन्न जरा चुप खडी रही। वह समझ गई कि बारहट क्या कहना चाहता है। कहीं त्रिभुवन अप्रसन्न न हो जाय, इसलिए वह बात बदलना चाहती थी।

" होगा कुछ। परन्तु आपकी खॉसी अब कैसी है ? "

" सुनूँ तो सही, क्या बात है ? बारहटजी, कह डालिए। आपके सिवा नई बातें और कहॉसे मालूम होंगी ? "

बारहटने कहा, " क्या ? " पीछे खड़ी प्रसन्न कॉपने लगी।

" अरे भैया, मेरी यह प्रसन्न मालवराजको दी जायगी ! वाह, पाटनकी क्या तारीफ की जाय ! कन्या देकर सन्धि करना ! मेरे भीमदेव नहीं हैं इस समय, नहीं

तो सबके प्राण ले डालते ! " कहकर उसने एक सोरठा कह सुनाया—

गयौ गयौ वह राज, भेंटें दे अरि बस कियौ।
पड़े नरनपै गाज, सुनकर जो कोपैं नहीं॥

" सचमुच ? " त्रिभुवनने जरा सख्तीसे पूछा, उसकी आँखोंमें तेज आ गया। " क्या प्रसन्न मालवको ब्याहेगी ? क्यों प्रसन्न, सच है ? "

प्रसन्नको कुछ सूझा नहीं कि वह क्या कहे। उसने सिर झुका लिया। त्रिभुवनके मुखपर विकरालता आ गई। उसके नथुने फड़कने लगे। पाटन और मालवोंमें पीढ़ियोंसे शत्रुता चली आ रही थी और इस शत्रुताका पोषण करनेमें ही महत्ता समझी जाती थी। शत्रुके आगे नत होकर सन्धि करना राजपूतोंको सदा मृत्युसे भी बुरा मालूम होता रहा है।

" प्रसन्न, कहते लजाती हो ? क्या तुम भी जानेको तैयार हो ?—"

सामने सामल बारहट खेदसे सिर धुन रहा था और बीच बीचमें हुक्का गुड़गुड़ाता जा रहा था।

" बुआजी मुझे समझा तो रही हैं। "

" बुआजी, मीनलदेवी ? उनकी क्या मगदूर है ?—" बिना विचारे जरा जोरसे त्रिभुवनने कहा। पीछेसे एक कोमल पर अधिकार-प्रदर्शक स्वर सुनाई पड़ा और सब चौंककर उस ओर घूम पड़े।

" मीनलदेवीकी मगदूर पूछनेवाला यह कौन है ? "

द्वारमें एक बारह वर्षका बालक खड़ा था। उसके गौरवपूर्ण मुखपर कर्णदेवके सौन्दर्यकी छाप थी, आँखोंमें मीनलदेवीकी तेजस्विनी भव्यता थी। अपमानित राजसत्ताकी उग्रमूर्तिके समान वह खड़ा था और सबकी ओर कड़ी नजरसे देख रहा था।

बारहटने कहा, " कौन कुमार जयदेव ? आओ, मेरे सोलंकी कुलके दीपक !"

जयदेवने तिरस्कारसे पूछा, " माताजीके विषयमें इस प्रकार बोलनेवाला यह कौन है ? यहाँ क्यों आया है ? "

वैसे ही तिरस्कार और गौरवसे त्रिभुवनने उत्तर दिया—"राजमहलमें आनेका जितना तुम्हें अधिकार है, उतना मुझे है। इस बातको फिर किसी समय प्रमाणित करूँगा, इस समय जा रहा हूँ। " कहकर किसीके रोकनेसे पहले ही वह वहाँसे चला गया। उसे एकदम ख्याल हो आया कि यदि जयदेव पहचान लेगा,

तो पिताको नुकसान पहुँचे बिना न रहेगा। इस समय पिताने उसे चुप रहनेको कहा था। प्रसन्न और बारहट तो किसी भी प्रकार सब गुप्त रख लेंगे, परन्तु युवराजके साथ वार्त्तालाप करना उसे बड़ा जोखिमका काम मालूम हुआ। वह तेज़ीसे नीचे उतरा, और उस कमरेमें पहुँच गया जिसमें पहले चढ़ा था। उसके तीर-कमान वहीं पड़े थे। उन्हें वहीं छोड़कर वह झरोखेमें पहुँचा। प्रसन्न भी उसके पीछे पीछे दौड़ती हुई आ पहुँची।

" त्रिभुवन, ज़रा ठहरो। इस तरह क्यों जा रहे हो ? "

प्रसन्नको फटकारते हुए त्रिभुवनने कहा, " क्या काम है ? उज्जयिनीकी रानीको मुझसे क्या मतलब ? "

" परन्तु ज़रा सुनोगे भी ? "

" तुम रानी बन जाओ, तब सुनूँगा। " कहकर क्रोधके आवेशमें, बिना विचारे वह नीचे कूद पड़ा और घोड़ेपर बैठकर वहाँसे चल दिया। न जाने कब तक प्रसन्न उसकी ओर देखती रही और बोली, " पिता और पुत्र दोनों कितने उतावले हैं ! "

६—मीनलदेवी

जब मुंजाल आनन्दसूरिको छोड़कर रानीके कमरेमें प्रविष्ट हुआ, तब उसकी गति और स्वरूप कुछ बदल गये। उसका मग़रूर और सत्ता-दर्शक चेहरा कुछ नम्र और स्नेहसिक्त हो गया।

" देवी, आप कहाँ हैं ? "

" कौन, मेहता ! मैं यहाँ हूँ। " अन्दरके कमरेसे आवाज आई। छोटी-सी कोठरीमें लगभग तीस वर्षकी एक स्त्री चौकीपर बैठी माला फेर रही थी। उसके नेत्र ज़रा लाल और मुख म्लान प्रतीत हो रहा था। मुंजाल सामने देहलीपर बैठ गया। स्त्रीने माला अलग रख दी और अपने छोटे, पर तेजस्वी नेत्र मंत्रीपर जमा दिये। उसका रूप सादा और वर्ण श्याम था।

" मुंजाल, क्या खबर है ? "

" बादल घिर रहे हैं। "

" क्यों ? "

" देवप्रसाद यहाँ आ पहुँचा है। "

" ऐं ! क्या कह रहे हो ? बिना आज्ञा लिये ? "

" इसमें आज्ञा किस लिए चाहिए ? चचा मृत्यु-शय्यापर पड़े हों, तब भतीजा क्या देखनेको भी न आए ? "

" और हमारा सब कुछ लूट ले जाए ? इस समय उन्हें तो कुछ ज्ञान है नहीं, कहीं कुछ कह दिया, तो और उत्पात खड़ा हो जायगा ! "

" कुछ न होगा। आप निश्चिन्त रहें। परन्तु इस समय उसे नहीं छेड़ा जा सकता, नहीं तो मैं क्या चूकनेवाला था ? मुझे तो अभी उसके साथ लम्बा हिसाब निबटाना है। "

" मेहता, निबटाते निबटाते तो पन्द्रह वर्ष बीत गये। अभीतक कुछ नहीं हुआ। "

" यह सब आपके लिए। "

" मेरे लिए ? "

" हाँ, आपके जयदेवके लिए पाटन बना रहे, इसलिए मैं अपनी शत्रुता और स्वार्थको भूलकर इस चक्करमें उलझ रहा हूँ। "

मीनलदेवीने कुछ असंतोषके साथ कहा, " उसमें तुमने किया क्या ? अबसे तेरह वर्ष पहले गुजरातमें पैर रखते समय जैसी सत्ता-हीन केवल शोभा-भरकी रानी थी, वैसी ही आज भी हूँ। तुमपर विश्वास करते करते तो मैं अब बूढ़ी हो गई ! "

इस अन्याय-पूर्ण व्यंगकी चोटसे दबे हुए स्वरमें मुंजालने कहा, " देवी, आप ऐसा कह रही हैं ? तेरह वर्ष पहले तो सारा पाटन भी आपका न था। आज बड़ी बड़ी जागीरों और मडलोंको छोड़कर और सब जगह आपकी आन बर्त रही है। चन्द्रावतीने भी हमारे लिए सेना तैयार की है, और यदि इससे अधिक कुछ नहीं हो सका है, तो वह आपके ही कारण। "

" तुम्हारी यह शिकायतें सुनते सुनते तो मैं थक गई। "

" और अभी अधिक थकेंगी। चाहे जिस तरहसे राजसत्ताका स्थापित करना मेरी समझसे बाहरकी बात है। "

" नहीं तो मैं क्या सबकी आश्रिता होकर रहूँ ? भले हैं तुम्हारे अन्नदाता, कि-

सारा जीवन नाम-मात्रका अधिकार भोगकर बिता दिया। परन्तु मुझसे कैसे रहा जा सकता है"

"मैं कब कहता हूँ कि वैसा जीवन बिताइए? पर चाहे जिस तरह एकसे दूसरे पक्षको लड़ाकर सत्ता क्यों जमाई जाय? जागीरदारों और मंडलेश्वरोंकी सत्ताको निर्बल बनानेके लिए राजपूतोंको नीचा दिखाकर श्रावकोंको श्रेष्ठता क्यों दी जाय? क्या इसीसे पाटन सत्तावान् बनेगा? यह तो स्वप्न है देवी!"

"मुझे तो तुम्हारा ही स्वप्न मालूम होता है। जबतक यह दोनों पक्ष एक दूसरेको निर्बल न कर देंगे, तबतक राजाको कौन पूछता है?"

"निर्बलतापर राज्यकी रचना करना तो रॉडोंका खेल है। जानती हैं, इसका क्या परिणाम होगा? हमारे श्रावकोंने पाटनसे ऊबकर चन्द्रावतीकी स्थापना की, और यहाँ भी उनका वश चले तो राजाको अलग करके महाजन-राज्य स्थापित कर दें। अन्तमें वे यही करेंगे; परन्तु आज यह नहीं हो सका तो केवल मेरे ही प्रतापसे।" महामंत्रीने मगरूरीसे कहा।

"तब किस लिए डर रहे हो? यहाँ महाजन-राज्य हो जायगा, तो नगरसेठ तो तुम्हीं होगे? तुम्हारे मौसा विमलमंत्रीने चन्द्रावतीका राज किया। तुम्हारी मौसीका सौभाग्य वहाँ राज कर रहा है, और तुम यहाँ करो।" रानीने जरा कटाक्षसे कहा।

"मैं क्यों नहीं करता, इसके कारण क्या आप नहीं जानती?" कहकर मुंजालने कुछ विचित्र प्रकारसे रानीकी ओर देखा। रानी जरा नीचेकी ओर देखने लगी। कुछ देर दोनों मौन रहे।

"और दूसरा कारण यह है कि,—" मुंजालने इस प्रकार कहा, जैसे पहला कारण बता दिया हो, "जहाँ तहाँ चन्द्रावती बसानेसे क्या लाभ? केवल व्यापारियोंकी सत्ताका क्या प्रभाव? सत्ता सारे देशकी चाहिए। मूलराजदेवकी यही राजनीति थी। सारे गुजरातको एक राज्यके अधीन करके जब सारी प्रजाको सबल बनाया जायगा, तभी हमारे पाटनका डंका देशदेशान्तरोंमें बजेगा। जबसे दूसरे प्रकारके विचार यहाँ प्रविष्ट हुए हैं, तभीसे सब कुछ बिगड़ा है और जो मालवा और कच्छ मूलराजके नामसे काँपते थे, वे आज प्रतिवर्ष हमसे कुछ न कुछ झपट लेते हैं, और विदित नहीं कि किस क्षण वे पाटनपर आक्रमण कर दें।"

"क्यों, मालवराज भी तैयार हो गया है क्या?"

"तैयार कब नहीं था? अवन्तिमें तो यह माना जाता है कि गुजरात मालवेका एक मंडल है।"

"इसीसे तो उससे प्रसन्नको ब्याहना चाहती हूँ!"

"इसका कोई सुफल मुझे नहीं दिखाई पड़ता। मैं तो यही कहूँगा कि तेरह वर्ष विश्वास रखा, तो कुछ समय और रखिए। मुझे अपने ढंगसे काम करने दीजिए। जयदेव समस्त गुजरातका स्वामी बनेगा।"

"परंतु इस मंडलेश्वरका क्या करोगे?"

"वह अपने आप सीधा हो जायगा। कोई तूफ़ान उठ खड़ा हुआ, तो उसका हाथ सबल हो उठेगा। गाँव गाँवके राजपूत उसकी ओर हो जायँगे। इसकी अपेक्षा, उसके बाहुओंको ऐसा निर्बल कर देना चाहता हूँ; उसके पक्षवालोंको ऐसा विश्वास करा देना चाहता हूँ कि उसे छोड़कर सब लोग पाटन-नरेशके सेवक बन जाएँ।"

"जैसा सोचते हो, वैसा सरल नहीं है।"

"बहुत सरल है। यदि हम अपनी राजनीतिको लोगोंके लिए लाभदायक बना दें, तो मालवराजके साथ सहज ही युद्ध ठान सकेंगे और हमारी उत्साहित प्रजाका ध्यान इस ओर गया, तो पाँच वर्षोंमें सारा देश आपका है। हममें उत्साह है, शक्ति है; परन्तु उसे दिखानेका अवसर नहीं उपस्थित होता।"

"मेहता, मुझे तो यह सब स्वप्नके समान प्रतीत होता है।"

"इन स्वप्नोंको कल प्रातःकाल ही सत्य करके दिखा सकता हूँ, यदि आप मेरी एक बात मानें।"

"वह क्या?"

"विमलशाहके पश्चात् हमारे यहाँ कोई दंडनायक नहीं नियत हुआ। देवप्रसाद प्रयत्न करके हार गया; पर अन्नदाताने उसे यह पद नहीं दिया। मुझे दंडनायक बनाइए और फिर देखिए।"

"मुंजाल, यह पदका लोभ तुम्हें कबसे हो गया? तुम्हें कमी किस बातकी है?" मीनलदेवीने उलाहनेके स्वरमें पूछा।

"कमी तो बहुत कुछ है।" कहकर मुंजालने दयनीय दृष्टिसे देखा और फिर कहा—"देवी आपको ज्ञात नहीं, मुझे पदोंकी परवा नहीं है। कमी यही है कि इस राज्यमें एक बेढंगी रीति प्रचलित हो गई है। किसी एकके

हाथमे सत्ता नहीं रहती, और सब मनमाना किये जाते हैं। "

" तुम्हारी क्या कम सत्ता है जो ऐसा कह रहे हो ? "

" हॉं, कम है, क्यों कि आपके राजतन्त्रमें एकतानता नहीं है। देवप्रसाद सेनापति हमारा शत्रु है; शान्तिचन्द्र मंत्री और कोषाध्यक्ष चन्द्रावतीके पक्षके हैं। उदयमतीका भाई मदनपाल कर्णावतीका दुर्गपाल अर्थात् एक तरहसे वहॉंका राजा और मैं पाटनका दुर्गपाल हूँ; अर्थात्—"

" तुम यहॉंके राजा। "

" नहीं, मुझसे कुछ नहीं होता; कारण कि आपका मार्ग दिनो दिन भिन्न होता जा रहा है। शान्तिचन्द्रका तो है ही, अतएव मैं यहॉं केवल शोभाके लिए हूँ। "

" फिर भी तुम्हीं सच्चा राज करते हो ! "

" कारण कि और किसीमें बुद्धि नहीं है। यदि ये सब किसी एकके अधिकारमे रहें, और वह पाटनका दुर्गपाल हो, तो अवश्य आपके राज्यकी सत्ता बढ़ जाय। "

" या घट जाय ? "

मुंजालने ज़रा दुःख-पूर्ण स्वरमें कहा, " यही तो दुःख है। इतने इतने दुःख उठानेपर, इतनी इतनी सेवा करनेपर भी आपको सन्देह है कि मुझे सारा अधिकार सौंप देंगीं, तो मै उसका दुरुपयोग करूँगा। "

" नहीं नहीं मेहता, ऐसा कुछ नहीं है। "

" देखिए, विचार कर देखिए, अभी कुछ समय है। पर अन्नदाताके प्राण निकल गये तो दूसरे ही क्षण आपको कुछ करना होगा। नहीं तो जो कुछ है, उसपर अंधकार छा जायगा और जो कुछ किया-कराया है, सब व्यर्थ हो जायगा। "

" तब, चन्द्रावतीसे जो सेना बुलाई है, उसका सेनापति कौन होगा ? "

" हॉं, यह विचारणीय है। श्रावकके सिवा तो वे किसीको मानेंगे नहीं और हमारी सत्ताकी सारी कुंजी भी वही है। मेरी धारणाके अनुसार यदि शान्तिचन्द्रको नियत किया जाय तो ठीक होगा। "

" क्यों ? "

" कारण कि वहॉंके लोग उसे अपना समझते हैं, और वह वयोवृद्ध है; इसलिए उसका वजन भी पडेगा। सोलंकियोंके प्रति उसकी राज-भक्ति भी अचल है। इसलिए वह आपकी आज्ञाको माने बिना न रहेगा। "

" अच्छा, देखा जायगा। ईश्वर करे वह समय देरसे आये।"

" देवी, सौभाग्य भाईने एक यतिको यहाँ भेजा है और लिखा है कि उन्हें राज-सेवाकी इच्छा है। उनसे अभी मिलेंगीं, या प्रातःकाल ?"

" कुछ पानीदार है ?"

" हाँ, होशियार तो मालूम होता है और सौभाग्य भाई भी बहुत प्रशंसा लिख रहे हैं।"

" अच्छा, तब इसी समय मिलूँगी।"

" एक प्रकार हमारे काम अवश्य आएगा। शान्तिचन्द्र और चन्द्रावतीको उसके कारण हम वशमे रख सकेंगे। परन्तु देखिए, कहीं वह चन्द्रावतीका पैर यहाँ न ला जमाए !"

" मुंजाल, मुझपर विश्वास नहीं है ?"

" नहीं, है; परन्तु आपकी इस परस्पर लड़ा मारनेकी राजनीतिमें मुझे श्रद्धा नहीं है।"

" नहीं नहीं, जाओ, बुलाओ। परन्तु, मुंजाल !" रानीने धीमे स्वरमें कहा, " देवप्रसाद यहीं है, कोई उपद्रव न हो, इसलिए 'उसे' यहाँ लाकर रखा जाय, तो कैसा हो ?"

मुंजालका मुँह उतर गया। उसके कपालपर बल आ गये।

" किसे ?"

" उसे ही," कहकर रानीने खिड़कीकी ओर अँगुलीसे संकेत किया।

मुंजालके नेत्रोंसे ज्वालाएँ निकलने लगीं। "देवी, जो समझमे आए, कीजिए। मुझसे इसमें कुछ भी न पूछिए।"

" इस यतिको सौंप दूँ ? यह अपरिचित है; अतएव बिना सन्देह किये काम करेगा।"

" जो इच्छा हो, कीजिए।" कहकर मुंजाल शीघ्रतासे द्वारके पास गया और उसने आनन्दसूरिको पुकारा। आनन्दसूरि अन्दर आ गया।

७—धर्म और साम्राज्य

आनन्दसूरिने ‘ धर्म-लाभ ’ दिया और मीनलदेवीने प्रणाम किया।

“ देवी, सौभाग्य माईने इन्हीं महात्माको भेजा है। अब मैं जाता हूँ। ज़रा देख आऊँ कि अन्नदाताकी तबीयत कैसी है। ”

“अच्छा, जाओ, मै भी अभी आती हूँ। ”

मुंजाल यतिकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर चले गये।

आनन्दसूरिने कहा, “ देवी, आज मेरा अहोभाग्य है। मै जगह जगह भटकता फिरा; परन्तु आपको देखनेकी इच्छा हृदयमे सदा रही। आज मैं कृतार्थ हो गया। ”

“ आपका नाम ? ”

“ आनन्दसूरि। ”

“ आप यहाँ किसलिए आये हैं ? कोई विशेष कार्य है ? ”

“ महारानीजी, सच कहूँ ? ” यतिकी आँखे चमकने लगीं। मुंजालकी उपस्थितिमें जो क्षोभ था, वह दूर हो गया। धीरे धीरे उसका प्रभाव दिखाई पड़ने लगा, “ अपना जीवन मैंने जिनभगवान्की सेवामे अर्पण कर दिया है। ”

“ तो फिर राज-कार्योंमें क्यो पड़ना चाहते हैं ? ”

“ राजनीति क्या धर्म नहीं है ? धर्म और जीवन अभिन्न हैं देवी, और इस भिन्नताके कारण ही हमारी अवनति हुई है। ”

“ यतिजी, मुझे उपदेश दे रहे हैं ? ” रानीने ज़रा गर्वसे पूछा।

“ हाँ, दे रहा हूँ। क्यों न दूँ ? तुम्हारी अपेक्षा गजनीके यवन अधिक बुद्धिमान् हैं। संसारका गला घोटना भी उनके शास्त्र सिखाते हैं। ”

“ मुंजाल मंत्रीका मत इससे भिन्न है। ”

“ इसीसे वे ख़ता खाते हैं।

मीनलदेवीने आतुरतासे पूछा, “ तब आपकी क्या धारणा है ? ”

“ मंत्रीने चन्द्रावतीकी शासन-पद्धतिके विषयमें अधिक वार्त्तालाप करनेके लिए मना कर दिया है, और तुम इसके लिए चिन्तित हो ! अच्छा, उसके विषयमें फिर कभी बात करेंगे। ”

" नहीं, मैं अभी सुनना चाहती हूँ। पाटनकी हालत इस समय बड़ी बेढंगी हो गई है, आप जैसे विद्वान् अनुभवी व्यक्तिके अभिप्राय मेरे लिए बड़े काम आयेंगे। "

" मुंजाल मंत्रीके अतिरिक्त और किसीका परामर्श काम नहीं आ सकता। " यतिने धीरे धीरे विष फैलाते हुए कहा, " परन्तु मैं मानता हूँ कि एक धर्मके बिना एकता नहीं; एक धर्मके प्रभाव बिना प्रजा नहीं और उसके उत्साहके बिना वीरता नहीं। "

" यदि आप इस समय पाटनके प्रधान हों, तो क्या करें ? "

यतिने कहा, " यदि मेरा वश चले, तो मैं जैनधर्मको अपनी राजनीतिका पहला मन्त्र बनाऊँ, उसके अनुयायियोंमें उसके नामपर उत्साह और एकता प्रेरित करूँ, उसकी रक्षाके लिए लोगोंमें वीरता प्रकट करूँ और उसके प्रचारके लिए देश-देशमें जिनभगवानका गेरुआ झंडा फहराऊँ। " धर्मके जोशसे उसका मुख प्रदीप्त हो उठा।

" आपकी बात यों तो ठीक मालूम होती है; परन्तु फिर राजपूतोंका क्या होगा ? "

" राजपूत लोग सत्ता और शौर्यके सेवक हैं और धर्मको जब वे अपना प्रतिनिधि देखेंगे तो तुरन्त उसके अधीन हो जायँगे। "

" महाराज अपने पिताजीसे सुनी हुई बात कहते थे कि ग़ज़नीके बादशाहने नव-खण्ड जीतकर सारी दुनियामें अपनी आन फैलाई थी। "

" इसका कारण भी वही है। वह केवल राजा ही नहीं, धर्मवीर भी है। मैं उत्तरकी ओर गया था, तब मुझे उसका एक धर्मगुरु मिला था। उसने मुझे उसके कई सिद्धान्त समझाये थे। वे यवन केवल यही सीखे हैं कि ' धर्मके बिना राजा नहीं हो सकता '। "

मीनलदेवीने सिर हिलाते हुए कहा, " आनन्दसूरिजी, आप ज्ञात या अज्ञात रूपसे मेरी आन्तरिक इच्छाके अनुकूल ही कह रहे हैं। परन्तु, श्रावकोंकी सत्ता हो जायगी, तो विमलशाहकी भाँति राजाको तिरस्कृत करके वे महाजनोंकी ही सत्ता स्थापित कर देंगे और पाटन दूसरा चन्द्रावती बन जायगा। "

यतिने कुछ झुककर भयंकर शान्तिसे कहा, " रानीजी, सच बताऊँ ? तुम्हारा यह भय ठीक है। परन्तु, अच्छी वस्तु ग्रहण करके बुरी दूर की जा सकती है। "

" किस रीतिसे ? "

" वह रीति आपको पसन्द न आयेगी । "

" सो मैं देख लूँगी, आप कहिए तो सही।"

" इसे अलग कर दीजिए। "

मीनल देवीने गौरवसे मस्तक ऊँचा किया और आनन्दसूरिपर तीक्ष्ण चुभती हुई दृष्टि डालकर कहा, " किसे ? मुंजालको ? परन्तु आप परदेशी हैं; इसलिए नहीं जानते कि मुंजाल मेरा दाहिना हाथ है। जिस समय मैं चन्द्रपुरमे थी उस समय सबसे पहले गुजरातकी ओर मुझे इसीने आकर्षित किया; महाराजके साथ विवाहका सुभीता कर दिया; और महाराजने मेरे रूपपर अप्रसन्न होकर जब मुझे त्याग दिया, तब इसीने सुलह कराई; और आज तेरह वर्षोंसे यह अचल भक्तिके साथ मेरे पक्षमें खड़ा है। "

" यह उद्गार आपकी महत्ता प्रकट कर रहे हैं। मुंजाल राजभक्त है, होशियार है; परन्तु उसकी राजनीति ओछी बुद्धिकी है। यदि वह मान जाय तब तो बहुत ही उत्तम; पर न माने तो कुछ समयके लिए मुख्य अधिकार आपको अपने हाथमे ले लेना चाहिए। मुंजाल मंत्रीकी दृष्टिसे देखता है, राजाकी दृष्टिसे नहीं।"

" यतिजी, आप बहुत वाचाल हैं। एक परदेशीके साथ निजी बाते मैंने आज ही की हैं। परन्तु आपकी सत्यतापर मैं विश्वास करती हूँ। "

" ज़रा भी भय न कीजिए । मैं आपकी सेवाके लिए आया हूँ और मेरे समान नमकहलाल आपको और नहीं मिल सकता। "

" अच्छा, तब कहूँ ? मुंजाल अडिग है, वह टूट सकता है; पर मुड़ नहीं सकता। "

" मोड़ना आता हो, तो मुड़ सकते हैं। "

" किस प्रकार ? "

" चन्द्रावतीने जो सेना भेजी है उस सेनाका सेनापति मुंजालको बना दीजिए। श्रावक लोग उसे ठिकाने रक्खेंगे। शान्तिचन्द्र कुशल है। उसे पाटनका दुर्गपाल बनाइए और संभव हो तो दंडनायक भी। "

रानी चौंक पड़ी, " क्या ? अच्छा, मैं विचार कर देखूँगी । कल सवेरे शान्तिचन्द्रजीको लेकर मेरे पास आइए। "

" अवश्य। देवीजी, मेरे योग्य और कोई कार्य हो, तो मैं हमेशा हाज़िर हूँ। "

" हाँ, एक काम करेंगे ? "

" क्या ? जो कहोगी, करनेको तैयार हूँ । "

" नगरके बाहर विमलशाहका स्थानक देखा है ? "

" हाँ, आज आते समय मैं वहीं रुका था । "

" वहाँ जाकर आचार्यजीसे अलग बुलाकर कहिएगा कि मीनलदेवी गोर्गी साध्वीको बुला रही हैं । "

" गोर्गी साध्वी ? "

" हाँ, और उसे डोलीमें बिठाकर यहाँ ले आइए । डोलीको गढ़में न लाकर पीछे यह जो जीना है, वहाँ लाकर मेरी दासीको सौंप दीजिए । "

" जो देवीकी इच्छा । "

" यह बात बहुत ही गुप्त रखनेकी है । "

" यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है । " कहकर आनन्दसूरि चला गया ।

मीनल देवी न जाने कब तक चुपचाप खड़ी रही ।

मुंजाल और यतिके वाक्योंकी ध्वनि उनके कानोंमें सुनाई पड़ रही थी ।— " क्या किया जाय ? "

८—कर्ण देव

अभी तक बेचारा मंडलेश्वर वाचस्पतिकी प्रतीक्षा करता हुआ झरोखेमें इधर-उधर टहल रहा था । पहले उसने वाचस्पतिको कोसा, फिर लीलाधर वैद्यको, फिर मुंजालको, फिर मीनलदेवीको और फिर अपने भाग्यको । फिर भी कोई नहीं आया । आखिर जम्हाइयाँ आने लगीं, वह नीचे बैठ गया । तुरन्त ही उसे एक झोंका आया और वह सो गया । सोते सोते उसने अनेक स्वप्न देखे । स्वप्नमें एक सुन्दर मुख बार बार दिखता रहा । मंडलेश्वर अधिक निराश और चिन्तित हो गया । नींदमें भी उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उसका हृदय बैठ गया हो । इस प्रकार बहुत समय बीत गया । मध्यरात्रि भी बीती और पौ फटनेका समय आ गया । न समझा जा सके ऐसा मधुर और मन्द प्रकाश रात्रिके अंधकारमें मिल जाने लगा । जब वाचस्पतिने पीछेसे आकर मंडलेश्वरके कन्धेपर हाथ रखा, तब वह चौंककर जाग पड़ा, खड़ा हो गया और इधर उधर देखने लगा ।

" वाचस्पति, कितनी रात बीत गई ? क्या अरुणोदय हो गया ? "—कहकर मंडलेश्वर झरोखेमेंसे सिर निकाल, पूर्वकी ओर नीचे झुककर देखने लगा।

" हाँ, कुछ अबेर हो गई " वाचस्पतिने कहा; परन्तु मंडलेश्वरने कोई उत्तर नहीं दिया। वह उसी प्रकार झरोखेमें झुका रहा। उसकी पुतलियाँ जैसे आँखोंमेंसे निकली जा रही हों, इस तरह बाहर निकली हुई थीं और वह एकाग्र दृष्टिसे नीचे बागमें कुछ देख रहा था। उसका अंग अंग काँप रहा था, कपालपर पसीनेकी बड़ी बड़ी बूँदें आगई थीं।

" क्या है मंडलेश्वर ? "

उसने वाचस्पतिका हाथ ऐसे ज़ोरसे दबाया जैसे सँडसीने पकड़ लिया हो, " देखो, देखो, वह क्या दिखलाई पड़ रहा है ? "

वाचस्पतिको जब अँधेरेमें कुछ भी दिखाई न दिया तब उसने कहा "मुझे तो कुछ भी नहीं दिखता। "

"वह कोई स्त्री जैसा, देखो, देखो, यह जा रही है। यह गई, यह—यह—"

" नहीं मालिक, मेरी आँखें कुछ निर्बल हैं, इसलिए इस समय कुछ नहीं दिख सकता। "

" आज यह दूसरी बार। ठहरो, मैं ठीक मालूम कर आऊँ। "

" मालूम करने कहाँ जायँगे ? मुरमुरा तो हो आया है और अन्नदाता इस समय ज़रा चेतमें हैं, वे फिर अचेत हो जायँगे। उनसे नहीं मिलेंगे ? "

गहन विचारकी भँवरमें पड़कर मंडलेश्वरने कहा, " वाचस्पति, क्या करूँ ? मेरा मन हिंडोलेमें चक्कर खा रहा है। "

" परन्तु कोई स्त्री गई, इससे आप इतने क्यों डर गये ? "

"पंडित, तुम क्या जानो ? पन्द्रह वर्षोंके बाद आज मैंने दूसरी बार उसे देखा।"

" किसे ? "

मंडलेश्वरने काँपती और बैठी हुई आवाज़से कहा, " अपनी प्रियतमाको, वर्षों पहले मरी हुई, पर न भूली हुई हृदयेश्वरीको। "

" महाराज, यह भ्रम होगा। "

" भ्रम ? नहीं, नहीं, नहीं, अभी मेरे नेत्र निस्तेज नहीं हुए, मेरी बुद्धि बूढ़ी नहीं हो गई है। "

विचारमें पड़े हुए वाचस्पतिने घबराकर पूछा, " तब क्या भूत था ? आप

ऐसा समझते हैं ?—शान्तं पापम्, शान्तं पापम् ! ”

“ पंडित, इसमें ‘ शान्तं पापम् ’ की ज़रूरत नहीं है। मेरे मस्तकपर मृत्यु मँड़रा रही है। गुजरातके श्रेष्ठ योद्धाके दिन पूरे हो गये हैं। एक मनुष्यने आज यह भी भविष्य कहा है कि मैं कुछ दिनोंमें मर जाऊँगा। आज दो बार वह स्वर्गीया स्त्री भी यही चेतावनी दे गई। चिन्ता नहीं। मैं जैसे जीया हूँ वैसे ही मरूँगा। जब मेरे नामसे बावन नगर और बारह मंडल त्रस्त होकर मर मिटेंगे, तब मैं मरूँगा। चलो वाचस्पति, काकाजीके पास ले चलो।” मंडलेश्वरने भयंकर स्वरमें कहा और वाचस्पतिके पीछे-पीछे दृढ़तासे कदम बढ़ाये।

निकट ही एक कमरेमें पाटन-नरेश मृत्यु-शय्यापर पड़े थे। लीलाधर वैद्य और दो एक अन्य पुरुष कोई ओषधि तैयार कर रहे थे। मंडलेश्वरको आते देख लीलाधर उठा और निकट आ गया।

“ मडलेश्वर, कितनी देर लगा दी ! बड़ी कठिनतासे बेहोशीको रोका है, और अब अचेत हो गये, तो फिर सब समाप्त समझिए ! ”

“ अच्छा ! ” कहकर मंडलेश्वर राजाकी शय्याके समीप आये। लीलाधरने संकेतसे और सबको बाहर कर दिया और निश्चल होकर अपने भारी शरीरको दवा घोंटनेके काममें लगा दिया।

“ काकाजी ! काकाजी ! मुझे पहचानते हैं ? ”

मृत्यु-शय्यापर भी सुन्दर दिखते हुए कर्णदेवने ज़रा करवट बदली, और बड़ी कठिनतासे नेत्र खोले। उनका सारा शरीर मृतककी भाँति हो गया था। इस ओषधिके ज़ोरसे कुछ होश आया था।

“ कौन, देवा ? ” बड़ी कठिनतासे कर्णदेवके मुखसे यह शब्द निकले।

“ हाँ, काकाजी, देवा। कुछ कहना चाहते हैं ? जो कुछ कहना हो, कहिए।”

“ उ...प...द्रव मचानेको....” अपनी निस्तेज आँखोंको देवप्रसादपर स्थिर करके राजाने पूछा।

“ नहीं काकाजी, मैंने यदि कोई उपद्रव मचाया भी हो, तो दूसरेके अत्याचारके कारण। मेरा वश चलेगा तो मैं झगड़ा मिटा दूँगा। और कुछ कहना चाहते हैं ? ”—देवप्रसादने कानके पास मुँह ले जाकर ज़ोरसे पूछा।

“ ज...य...दे...व”—कर्णदेवने धीरे-धीरे एक एक अक्षर निकाला।

“काकाजी, आपका पुत्र मेरा भाई है। उसके ज़रा भी आँच न आने दूँगा।”

"व...च...न—"

"हाँ, वचन देता हूँ कि यदि कोई मेरा मान भंग न करना चाहेगा, तो अवश्य ही मैं जयदेवका बाल भी बाँका न होने दूँगा।"

"अँ—अँ ! देवा !"—बड़े प्रयत्नसे चित्त ठिकाने करके कर्णदेवने कहा।

"जी, और कुछ ?"

"समीप आओ।"

देवप्रसाद कुछ समीप आ गया और नीचे झुका।

"हं—हं—सा जीवित है।"

देवप्रसाद चौक पड़ा और "ऐं" कहकर एकदम पीछे हट गया, "क्या ? हाँ ?" उसकी आँखोंके आगे सारा कमरा घूमने लगा।

"वि—वि—वि—" कहते कहते कर्णदेवका गला भरा गया। उनके नेत्र देवप्रसादके पीछे किसी वस्तुपर ठहर गये। देवप्रसादने पीछेकी ओर देखा। तेजस्वी आँखोंकी भयंकर स्थिरतासे मीनलदेवी राजाकी ओर देख रही थी। मरते मरते भी वे भले राजा प्रतापी रानीकी एक ही दृष्टिसे मौन हो गये। शान्तिसे और तिरस्कारसे रानी वहाँ खड़ी रही। राजाकी आँखें फटने लगीं।

"वैद्यराज !" रानीका शान्त स्वर सुनाई पड़ा, देखिए, फिर अचेत हो रहे हैं क्या ?"

देवप्रसादके उबलते हुए स्वभावमें राजाकी हंसाके जीनेकी बातने तेल छोड़ दिया था। उसकी उग्रता बढ़ गई थी। उसकी बहुत वर्षोंसे खोई हुई पत्नी हंसा जीवित है ! वह यह भी न समझ सका कि मैं चेतमें हूँ या अचेत। सामने मीनलदेवीको देखकर वह और भी व्याकुल हो गया। बड़ी कठिनतासे उसने अपने स्वभावको वशमें किया और पूछा, "काकीजी, यह बात सत्य है ?"

"क्या ?"

"मेरी हंसा जीवित है ?

"मैं क्या जानूँ !"

"मैंने आज दो बार उसे देखा है, और अभी काकाजीने भी यही कहा।"

मीनलदेवीने ज़रा व्यंगसे कहा, "काकाजीकी इस समयकी बातोंपर तो तुम ही विश्वास कर सकते हो।—इस विषयकी सब बाते पीछे होंगी, इस समय मेरा चित्त ठिकाने नहीं है।"

देवप्रसादको नहीं सूझ पड़ा कि इस समय क्या कहना चाहिए और वह बोला, "तुम्हारा चित्त यदि ठिकाने नहीं, तो मेरा भी कहाँ है! हँसा तुम्हारे महलमें है।"

" यह किसने कहा ?"

" मैंने अपनी आँखों उसे देखा है और अभी अभी।"

अज्ञात रूपसे रानी चौंक पड़ी।

" भ्रम है, मंडलेश्वर! भ्रम है। इस समय तुम्हें राज्यकी चिन्ता रखनी चाहिए। इस प्रकार व्यर्थकी बातें करना कोई अच्छी बात है ?"

" काकीजी, राज्यकी तो चिन्ता क्या रखूँ ? तुम्हारे सलाहकारोंने तुम्हें भरमा रखा है; अतएव तुम मेरी कहाँ सुननेवाली हो ? काकाजीको मैंने अभी वचन दिया है कि मैं अपने भाईकी सेवा करनेके लिए तैयार हूँ।"

देवप्रसादका भोलापन देखकर रानीकी आँखें जरा हँस पड़ीं।

" परन्तु मैं कब मना करती हूँ ? तुम तो कुछ-न कुछ बहाना खोजा करते हो।" रानीने ऐसा स्वाँग भरकर कहा जैसे वह असहाय हो। देवप्रसादके विचारोंको जाननेका यह उसे अच्छा मौका मिला था।

" मैं बहाना खोजा करता हूँ, या तुम्हारे मंत्री ? काकीजी, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। गई-गुजरी जाने दो। तुम जो कहो, करनेको तैयार हूँ।" भोले मंडलेश्वरने कहा।

" मैं कब मना करती हूँ। केवल तुम्हारी ओरसे विलम्ब है।"

" मेरी ओरसे ? कहो, क्या चाहती हो ?"

" बस इतना ही चाहिए कि मेरा जयदेव एकचक्र राज करे।" मीनलदेवीने मधुरतासे कहा।

" काकीजी, पाटन का स्वामी सदा एकचक्र ही राज करता है।"

" केवल बातोंमें ! सच तो यह है कि पाटनके बाहर एक कुत्ता भी उसकी ओर नहीं देखता।"

" काकीजी, एकचक्र राज करना है ? तो मुझे दण्डनायक बना दो, कल प्रातःकाल ही सारा भारत पाटनके अधीन कर दूँगा।" देवप्रसादने मग़रूरीसे कहा।

" सारा भारत तो दूर रहा, सोरठ और हालारका क्या होगा ? घरमें ही तो संशय है।"

देवप्रसादने जरा मीनलकी चालाकी समझते ही पूछा " अर्थात् ?" उसे

ऐसा प्रतीत हुआ कि मीनलदेवी धूर्ततासे बातें कर रही हैं।

"अर्थात् यह कि जहाँ बारह मंडल और बावन नगर अपना अपना मन चाहा करते हैं, वहाँ पाटनका भाव कौन पूछता है?"

"तुम क्या उन सबको सर करना चाहती हो?" ज़रा मूँछोंपर हाथ रखकर देवप्रसाद बोला। वह मीनलदेवीकी बातको समझ गया।

"हाँ। इसके बिना मेरा लड़का एकचक्र राज कैसे कर सकता है?"

"अर्थात् सब मंडलेश्वर तुम्हारे दास बन जायँ! सिंह मिटकर तुम्हारे घरकी बिल्लियाँ बन जायँ!"

"नहीं, राज्यसे शत्रुता छोड़कर राज्यके स्तंभ बन जायँ।" मीनलने कहा।

"और यह करनेके लिए अपनी देवस्थली तुम्हें सौंप दूँ, अपनी सेना तुम्हें दे दूँ, जिन बहादुर योद्धाओंने मेरे दादाके साथ रहकर यवनोंको गुजरातसे बाहर खदेड़ा, उनकी स्वतन्त्रताके प्रति विद्रोह करूँ!"

मीनलदेवी मौन हो गई। लीलाधर वैद्य चुपचाप राजाका उपचार कर रहा था। कुछ देर सब चुप रहे।

"और इस नीचता और द्रोहका खिरेपाव क्या दोगी?" मंडलेश्वर मज़ाक करते हुए क्रूरतासे हँस पड़ा। मीनलदेवीकी आँखें शान्तिसे उसकी ओर देखती रहीं।

उसने धीरेसे कहा, "दंडनायकका पद छोटा नहीं है। वह तुम जैसे सोलंकी वीरको ही शोभा दे सकता है।"

"तुम्हारे इस पदके लिए अपना देश, अपना अधिकार, अपनी स्वतंत्रता खो दूँ,?" देवप्रसादने खोखली आवाज़में पूछा। उसकी आँखें विकराल हो गईं। उसके मुखपर सिंहका-सा प्रताप आ गया। छाती ठोककर वह बोला, "काकीजी अपनी बुद्धिको अपने पास रखो। जबतक मंडलेश्वरके शरीरमें प्राण हैं, तबतक राजपूत वीरोंको अधीन करनेवाला किसकी माँने जना है, मैं देख लूँगा! जो राजनीति परम्परासे चली आ रही है, मैं देखता हूँ कि उसे कौन बदलता है?"

"मैं भी देखूँगी कि गुजरातमे कितना पानी है।"

"इसम पछताओगी! पदके लोभसे पूर्वजोंकी टेक छोड़नेको यदि कोई तैयार होगा, तो उसको भारी पड़ेगा।"

"मंडलेश्वर, पाटनकी रानी किसीके डराये नहीं डरती।"

"तब देखूँ तो सही कि भीमदेव सोलंकीके पौत्रको पिंजरेमे बन्द करनेवाला

कौन है ? ” कहकर मंडलेश्वरने मूँछोंपर ताव दिया और फिर जरा नरम होकर कहा “ काकाजी, अब भी कुछ भली सलाह लो, और झगड़ेकी जड़को काट दो । ”

“ सलाहके लिए मैं देहस्थली नहीं जाऊँगी, निश्चिन्त रहो । ” कहकर मीनलदेवी वहाँसे राजाकी ओर गई ।

देवप्रसाद भी क्रोधसे आवेशमें उठकर चला गया ।

लीलाधर वैद्यने ओषधि तैयार करते हुए सिर ऊपर उठाया और रानीके मुखकी व्याकुलता देखी ।

“ महारानीजी, इस सिंहको पिंजरेमें बन्द करना सहज नहीं है । ”

“ वैद्यराज, समय आनेपर यह भी किया जायगा । ”

“ जो चाहे कीजिए; पर पाटनके सिंहासनपर कलंक न लगने पाए, यह ध्यान रखिए । ” बूढ़े वैद्यने साहससे कहा ।

मीनलदेवीने कोई उत्तर नहीं दिया ।

९—पिता और पुत्र

देवप्रसाद हृदयको भारी किये घर आया । कुछ देरके लिए वह राज्यके झगड़ोंको भूल गया।’ उसके मस्तिष्कमें यही शब्द टकराते रहे कि ‘ हंसा जीवित है ।’ एक तो गहन विचार करनेकी शक्ति उसमें थी ही नहीं और दूसरे इस समय वह बिलकुल नष्ट हो गई थी। उसे सूझा नहीं कि इस समय क्या किया जाय।’ उसके मनमें अनेक विचार उत्पन्न हुए। कुछ पुरानी आशाएँ और संकल्प फिर प्रकट हुए । पहले तो उसने यह सोचा कि अपनी आँखों और राजाके शब्दोंपर विश्वास किया जाय या नहीं। एक तरहसे राजनीतिके प्रपंचोंके इस ऐन मौकेपर हंसाके हृदय-विदारक विचारोंने उसके साहसको क्षीण कर दिया और बुद्धिकी तेज धार कुछ भौंथली पड़ गई ।

वह पाटनमें गुप्त रूपसे आया था; अतएव चुपचाप अपने पिछले दरवाजेपर गया।

“ जोरावर, त्रिभुवन कहाँ है ? ”

“ ऊपर टहल रहे हैं, महाराज ! ”

"सोया नहीं ? दिन-भरकी दौड़धूपसे थक गया होगा ?"

"जी नहीं, नहीं सोये।"

"अच्छा, किसीसे कहना मत। परन्तु यदि वल्लभ आए, तो ऊपर भेज देना।"

"जो आज्ञा।"

मंडलेश्वर ऊपर गया। उसके हृदयरूपी अरण्यमें त्रिभुवन ही एक विश्राम-स्थान था। उसने देखा कि वह भी उदास दिखलाई पड़ रहा है।

"क्यों बेटा, सोये नहीं ?"

"जी नहीं, नींद नहीं आई।

त्रिभुवनके कन्धेपर हाथ रखकर मंडलेश्वरने स्नेहसे कहा, "बेटा, अभी तुम्हें चिन्तामें पड़नेके लिए बहुत विलम्ब है।"

"पिताजी, यह कुछ अपने हाथकी बात थोड़े ही है। परन्तु इस बातको छोड़ दीजिए। आप वहाँ गये थे, क्या हुआ ?"

एक निःश्वास छोड़कर मंडलेश्वरने कहा, "क्या बतलाऊँ ! दुःखोंकी सीमा नहीं है।—" कहते कहते मंडलेश्वरकी आँखोंमें पानी भर आया।

त्रिभुवनने बड़ी सहानुभूतिके साथ पिताकी ओर देखा।

"पिताजी, आप मुझे बालक समझकर कुछ बतलाते क्यों नहीं ! अक्सर आपके दुःखकी बातें सुनने और सुनकर यथासम्भव सहायता करनेको हृदय तड़पा करता है। परन्तु अभी आपको विश्वास नहीं है।"

"विश्वासकी बात नहीं है बेटा, पर तुम्हारे कोमल हृदयपर कितना भार डालूँ !"

"आपको खबर नहीं है पिताजी, सोलह वर्षका सोलंकी सारी दुनियाके लिए भारी होता है !"

मंडलेश्वरने गर्वसे कहा, "बेटा, मैं जानता हूँ। मेरी आँखोंके आगे तुम बड़े हुए हो और मेरी सारी साधें तुमने पूर्ण की हैं।"

"तब किस कारण आप मुझे अपने दुःखका भागी नहीं बनाते ?"

"बनाऊँ ! बन सकोगे ! क्या लाभ ! अच्छा, तुम इस राज्यके प्रपंचोंको जानते हो ?"

"कुछ जानता हूँ, परन्तु उनके कारण क्या हैं सो समझमें नहीं आते।"

"इनका इतिहास बहुत पुराना है। मैंने अबतक इसलिए नहीं कहा कि तुम्हारा जी न दुखे। परन्तु आज कहता हूँ, सुन लो। भीमदेवके तीन स्त्रियाँ थीं।

पहली स्त्री छोटी अवस्थामें मर गई और उनके पुत्र मूलराजदेवकी मृत्युका हाल तुम्हें मालूम ही है। दूसरी थीं बकुलादेवी,—वणिक-कन्या, पिताजीकी माँ। और तीसरी उदयामती, काकाजीकी माँ।

"हाँ, परन्तु शायद तुम नहीं जानते कि मेरे पिता क्षेमराज, बड़े पुत्र होते हुए भी राज्य छोड़कर दादाजीके साथ वानप्रस्थ क्यों हो गये? वैराग्य-भावकी अपेक्षा उनमें व्यवहार-कुशलता अधिक थी। उन्होंने देखा कि यदि वे गद्दीपर बैठेंगे तो गुजरातके सामन्त परस्पर कट मरेंगे।" *

" सो कैसे ? "

" जब मुसलमान बादशाहने पाटनपर चढ़ाई की और कुछ महीनों अपना अधिकार यहाँ जमाये रक्खा तब देश बरबाद हो गया। सामन्त छिपते फिरते थे, और धनी लोग अपनी दौलत और स्त्रियोंको छुपाये रहते थे। आखिर भीमदेव कंथकोट (कच्छ) से आये। उन्होंने काँपते हुए सामन्तोंको इकट्ठा किया, उन्हें साहस बँधाया। श्रावक भी विदेशियोंके जुल्मसे तंग आकर दादाजीकी ओर झुके। दादाजीकी सेना पाटनकी सीमापर आ पहुँची और बादशाहके सहायक भाग खड़े हुए और पाटनमें फिर सोलंकियोंका डंका बजने लगा। परन्तु अपने दुर्भाग्यसे साँपने छछूँदरको निगल लिया। "

" कैसे ? "

" इस मुंजालके मौसा और पाटनके नगरसेठ विमलशाहका सिर फिर गया। वह अपनेको दादाजीसे भी बड़ा योद्धा समझने लगा। "

" विमल मंत्रीकी वीरताके विषयमे मैंने बहुत कुछ सुना है। चन्द्रावती उन्हींने तो बसाई थी ? "

" हाँ, परन्तु इसका मूल कारण यह था कि स्वार्थी वणिकोको हमारा राज्य अच्छा नहीं लगा। इन्हे तो सब जगह महाजन ही चाहिए। "

" परन्तु दादाजी यह कैसे सहन कर सके ? "

" क्या करते ? राज्यकी दुर्दशा थी, और श्रावकोंके सिवा धन और किसीसे मिल नहीं सकता था। "

" तब सामन्त लोग क्या कर रहे थे ? "

" इसमे दादाजीकी भूल थी। वे सामन्तोंपर अधिकार जमानेका प्रयत्न कर रहे थे; इसलिए वे खीझे रहते थे। उनका बल अधिक था और बड़ी मुश्किलसे वे
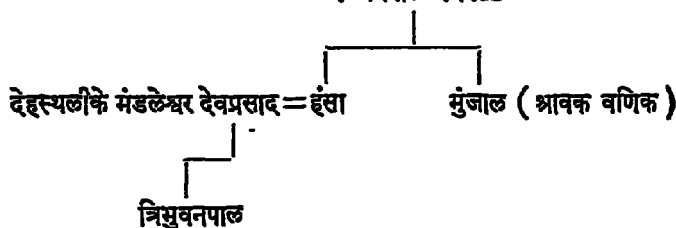
धनिकोंको वशमे रख पाते थे। इससे पिताजीने विचार किया कि यदि वे गद्दीपर बैठेंगे, तो सभी सामन्त काकाजीका पक्ष लेंगे और गुजरातमें उत्पात खड़ा हो जायगा। इसकी अपेक्षा उन्होंने वानप्रस्थ अधिक पसन्द किया। परन्तु काका कर्णदेवजी उनसे भी कमज़ोर निकले। वे श्रावक मंत्रियोंके हाथका खिलौना बन गये। फिर भी, जबतक मीनलदेवीका विवाह काकाजीके साथ नहीं हुआ था, तबतक सब मेरे प्रभावमें रहते थे, और शूर-सामन्त जो चाहते करते थे। परन्तु, पाटनके दुर्भाग्यसे मीनलदेवी आई। नगरसेठ मुंजाल काकाजीका प्रिय-पात्र था और उसपर फिर नई रानीका भी प्रिय बन गया। तब सामन्तोंकी सत्ता तोड़नेके प्रयत्न शुरू हुए। इस समय मैं ही उनमे बाधक हूँ। हमारा मण्डल सबसे बड़ा और स्वतन्त्र है। जबतक वह स्वतन्त्र है, तबतक और किसी मण्डलको कोई नहीं छेड़ सकता। सामन्तोका स्वातंत्र्य आज मेरे ही कारण है। अब यह सब मुझे राज्यका दास बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु, उन सबको ज्ञात नहीं है कि मैं उन्हें विश्वास करा दूँगा कि जबतक मण्डलेश्वर है, तबतक किसीका साहस नहीं कि मेरी देहस्थली, या सामन्तोको ज़रा भी कोई छेडे। जो काम राजा भीमदेवने नहीं किया, उसे करनेवाले ये बनिये कौन होते हैं?"

"तब यह लोग क्या करना चाहते हैं?"

"काकाजी स्वर्गवासी हो जायँ, तब देखेंगे। उसी समय समझमे आयगा कि यह लोग कौन-सी चाल चलते हैं। इतने वर्ष मै अपनी देहस्थलीमें ही पड़ा रहा, इसका भी कारण काकाजी ही हैं। और जबतक वे हैं, तबतक पाटनका पति मेरे लिए परमेश्वर है।"

"परन्तु पिताजी, इसमे दुःखकी कौन-सी बात है? आप देहस्थलीमें वल्लभ-सेनसे कह आये हैं कि हमारी सेनाको वह मेरलकी सीमापर लाकर रक्खे, फिर क्या चिन्ता है? आपके मुखसे एक शब्द निकलते ही गुजरातके वीर उठ खड़े होंगे। तब मीनलदेवी अपने आप सीधी हो जायँगी।"

बोलते बोलते मंडलेश्वरको पसीना आ गया था, उसे पोंछते हुए उन्होंने कहा, "यह तो मैं जानता हूँ, यह हिसाब लगाकर ही मैं आया हूँ। परन्तु, यहाँ एक नये दुःखने बाधा डाल दी है।"

त्रिभुवनने आतुरतासे पूछा, "वह क्या?"

देवप्रसादने भारी हृदयसे कहा, "वह दुःख है भीतरका, जो सेनासे या

बाहुबलसे दूर नहीं हो सकता बेटा।" देवप्रसादने फिरसे अपना हाथ त्रिभुवनके कन्धेपर रख दिया और कहा, "क्या करूँ? तुम्हें खबर तो है कि तुम्हारी माता कौन थीं?"

"जी हाँ, नगरसेठ मुंजालकी बहन।"

"परंतु हमारा विवाह विचित्र प्रकारसे हुआ था। उसका भाई और माँ हमारे विवाहके विरुद्ध थे, बिना किसीकी सम्मतिके मै उसे देहस्थली ले गया और हमारा विवाह हो गया। हमारे सुखकी कोई सीमा न रह गई थी।" वे ऐसे स्वरमे कहने लगे, जैसे उनका हृदय फटा जा रहा हो। त्रिभुवन भी मौन रहा।

"परन्तु मुझपर सभी श्रावक जलते थे। मैंने उन्हें बहुत सताया था। इसका बदला लेनेको वे तड़प रहे थे। एक बार मैं शिकारसे लौटकर आया। घरमे देखा, तो मेरी हंसाका पता नहीं है।'

"ऐं! क्या हुआ?" त्रिभुवनने आकुल नेत्रोंसे पूछा।

"न जाने क्या हुआ! मेरे शत्रु सफल हो गये, मेरी लक्ष्मी लूट ले गये।" मंडलेश्वरने निराशासे, सिर हिलाकर कहा।

"तब आपने खोज क्यो नहीं की? इस प्रकार कहाँ ले जायेंगे?"

'बेटा, मैं यों ही बैठ रहनेवाला नहीं हूँ। काकाजीसे मिला, तुम्हारे मामासे मिला। सब मुकर गये। मैं हाथ-पैर मारता रहा। धीरे धीरे बातें फैलने लगीं कि हंसा मर गई या चाडालोंने मार डाली। मेरी निर्दोष, सुकुमार प्रियतमा उनके द्वेषकी बलि हो गई।"

"परंतु इसमे बुराई क्या हो गई थी? बकुला देवीने भी तो दादाजीसे विवाह किया था?"

"बेटा, उस समय बात और थी। श्रावक सबल नहीं थे। अब वे अभिमानी और सत्तावान् हो गये हैं, और फिर मैं तो उनका कट्टर शत्रु ठहरा।"
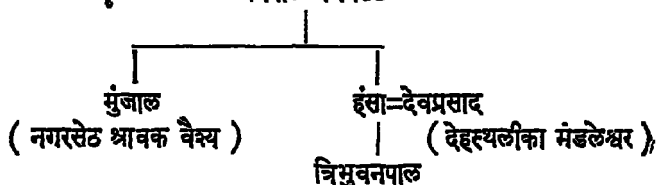
" परन्तु पिताजी, मुझे खबर ही नहीं कि इन लोगोंने ऐसा गजब ढाया है? मैं बचपनमें देखी हुई माताको स्मरण करनेका प्रयत्न किया करता हूँ। मैं तो यही समझता था कि दैव कोपसे ही वे संसारसे उठ गई हैं। "

देवप्रसादने निःश्वास छोड़कर कहा, " नहीं, दैवका अभिनय तो तुम्हारे मामा मुंजालने ही किया था। "

" परन्तु पिताजी, इससे आप निराश क्यों हो रहे हैं? मामाके दैव हम हैं। हमारा कोप उनके लिए भारी पड़ेगा। "

" हाँ बेटा, परन्तु बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती। "

" क्यों? "

देवप्रसादने रोते हुए कण्ठसे कहा, " बेटा, तुम्हारी माता जीवित हैं। "

" ऐं! यह आप क्या कह रहे हैं? " त्रिभुवनने इस प्रकार चौंक कर कहा जैसे बिजली टूट पड़ी हो। दाँत पीसकर, आँखें फाड़कर वह पिताकी ओर देखता रहा। उसके हृदयमें, मृत माताके लिए एकत्र हुई तरंगें उछलने लगीं।

" हाँ, सत्य है। मैंने कल रातको उसे दो बार देखा। एक तो तब जब हम विमलशाहके उपाश्रयके पाससे आ रहे थे—"

" जब घोड़ा भड़का था तब? "

" हाँ। और दूसरी बार अभी, जब मैं राजमहलके झरोखेमें खड़ा था। मैंने क्षण-भर उसकी स्वर्गीय छवि देखी। क्षण ही भरमें वह अन्तर्धान हो गई। " उसने खिड़कीसे बाहर दृष्टि स्थिर करके इस प्रकार कहा, जैसे उसकी छविको दृष्टिमें लानेका प्रयत्न कर रहा हो।

" पिताजी, कुछ भ्रम न हो? "

" विचार करके मैंने भी यही सोचा था। परन्तु काकाजी—"

" काकाजी! "

" उन्होंने मरते मरते मुझसे कहा कि हंसा जीवित है, और पीछेसे काकी न आ गई होतीं, तो कुछ और भी पता लगता। "

" इसका आशय यह कि इतने वर्षोंसे उन्हें कहीं छिपाकर रख छोड़ा है! "

"यही बात है और क्या। यह है मेरा दुःख। तो बेटा, अब क्या किया जाय?"

" क्या किया जाय, यह आप मुझसे पूछते हैं? अब करनेको एक ही बात रह गई है। यदि यह बात सच है, यदि माताजीको जीतेजी इस प्रकार कष्ट दिया

है, तो इसका बदला हम लेंगे। माताजीको छुड़ायेंगे और इन चांडालोंको सिखा देंगे कि उन्हें अँगुलीसे छूना भी कितना भारी होता है?"

"यह ठीक है; पर यह किसे खबर कि वह कहाँ है?"

"या तो विमलशाहके उपाश्रयमें या राजमहलमें। आपने उन्हें वहीं तो देखा था?"

"हाँ, परन्तु राजमहलमें खोज लेना कोई सहज है? मैंने मीनल काकीसे पूछा; परन्तु वे तो एकसे दो नहीं होतीं।"

"क्या कहती हैं?"

"वे तो भ्रम ही बतलाती हैं। परन्तु, संभव है, वे न भी जानती हों।"

"तब कौन जानता है?"

"मुंजाल मीनल काकीके आनेसे पहले ही हंसाको उड़ा ले गये थे। इसलिए संभव है उन्हें ज्ञात न होने दिया हो। परन्तु काकाजी जानें और वे न जानें, यह कैसे सम्भव है?"

"परन्तु काकीको कैसे समझाया जाय पिताजी? एक रास्ता है। आज्ञा हो, तो कर देखूँ। मुंजाल मामासे मैं मिला नहीं हूँ। मैं जाकर उनसे मिलूँ, प्रार्थना करूँ, देखूँ मानते हैं या नहीं।"

"बेटा, तुम उसे नहीं पहचानते। उसे हाथमें करना सहज नहीं है।"

"परन्तु देख तो लूँ, इसमें हानि ही क्या है? अधिकसे अधिक यही कि इनकार कर देंगे।"

"तो जाओ; परन्तु अपनी टेकका ध्यान रखना। अभी काकी मुझे लुभाने आई थीं, उसी प्रकार तुम्हें भी न लुभायें।"

"यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं अभी लौटकर आता हूँ। जोरावर, पिताजी और मेरे लिये जरा हाथ-मुँह धोनेको पानी ले आ।"

नौकर पानी लाया और धीरेसे उसने देवप्रसादसे कहा, "महाराज वल्लभसेनने एक आदमी भेजा है।"

"क्या कहता है?"

कहता है कि वल्लभसेन मेरल आ पहुँचे हैं।"

"झक मारता है। बेटा, यह भी अच्छे समाचार हैं। तुम जा आओ। फिर देखें क्या होता है?"

सेनाके आनेकी बात सुनकर मंडलेश्वरका हृदय निराशासे कुछ मुक्त हो गया।

उनका विचार मुंजालकी सत्ताको निर्बल कर डालनेका था। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि यदि मैं यहाँ रहूँ, पाटनसे कुछ दूरीपर मेरलमे वल्लभसेन सेना लेकर पड़ा रहे, और देहस्थलीकी स्वतन्त्र ध्वजा फरकती रहे, तो विपक्षकी कुछ भी न चलेगी। उन्हें विश्वास था कि इस समय उन्हे तंग करने या छेड़नेका कोई साहस न करेगा। अर्थात्, कर्णदेवकी मृत्युके बादकी धाँधलीसे लाभ उठाकर पाटनमें अपना अधिकार जमानेका विचार उन्होंने कर रखा था।

१०—मामा और भानजा *

मामासे भेट करनेको जाते हुए त्रिभुवन घबराया। उसने जीवन-भर उसे शत्रु समझा था। आजतक उससे एक शब्द भी बोलनेका काम न पड़ा और उसकी ख्याति बड़े-बड़े मुत्सद्दियोंको भी कँपाती थी। फिर भी त्रिभुवनका निश्चय दृढ था। अपनी माँके ऊपर गुजरे हुए जुल्मकी बातसे उसका हृदय घायल था। अत्याचारियोंको उचित दण्ड देनेके लिए उसके हाथ तड़प रहे थे। परन्तु अपने पिताकी अपेक्षा उसमे संसारिक ज्ञान अधिक था। उसने जान-बूझकर मंडलेश्वरको यह दिखलाया था कि वह सब बातोसे अनभिज्ञ है। परन्तु, सामल बारहट और अन्य मनुष्योंसे उसने बहुत-सी बाते सुनी थीं और उनपर अपना मत भी निश्चित कर लिया था। इस समय भी उसने अपने उबलते हृदयको ठंडा किया। उसे विश्वास था कि मुंजाल जैसे राजनीतिज्ञके सामने अपने आपेमे न रहना तिरस्कृत होनेके समान है।

जब वह मुंजालके गुमाश्तोंके बैठनेकी जगह पहुँचा, तब सब खलबला उठे। त्रिभुवनका बचपन, उसके मुखपरकी भव्य सुन्दर रेखाएँ और आँखोंका तेज देखकर
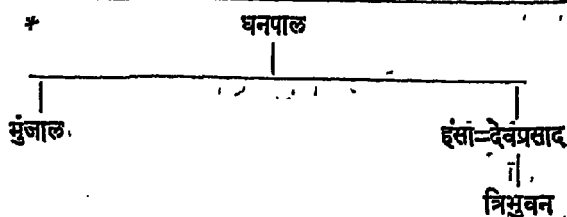
सब विचारमें पड़ गये और पूछने लगे कि यह कौन है ? साधारणतया इस समय मुंजाल किसीसे मिलता नहीं था; परन्तु त्रिभुवनसे इनकार करनेका किसीने साहस नहीं किया।

" आपका नाम ? "

" त्रिभुवनपाल सोलंकी। "

एक मनुष्यने सिर उठाकर ऊपर देखा; चौंका, उसे पहचाना और कहा, " ठहरिए महाराज, मै देख आता हूँ, कदाचित् मंत्रीजी कार्यमें व्यस्त हों। "

" हॉं, कह देना कि जब फ़ुरसत मिले तब बुला लें, तबतक मैं यहीं हूँ। "

गुमाश्ता गया और तुरन्त लौट आया, " पधारिए। "

त्रिभुवन हृदयकी धड़कनको शान्त रखनेका प्रयत्न कर रहा था। वह भीतर गया। वहॉं गद्दीपर रूपवान् और तीक्ष्ण दृष्टिवाला एक मनुष्य बैठा था। त्रिभुवनने उसके मुखकी भव्यता देखी और तुरन्त पहचान लिया। कुछ कॉंपते स्वरमें पूछा, " मामाजी, मुझे पहचानते हैं ? "

मंत्रीके मुखका भाव बदल गया। क्षणभरके लिए घबराहट तथा उछलते स्नेहकी छाया मुखपर आ पडी। उसने हाथ बढ़ा दिये। उसके हाथोंमें न दिखनेवाला कंपन था।

" कौन ? हंसाके त्रिभुवन ? " ज़रा अशान्त-से स्वरमें मंत्रीने पूछा।

त्रिभुवन मामाको प्रणाम करके गद्दीके नीचे बैठ गया।

" ऊपर बैठो भइया, देखूँ, ज़रा इधर देखो,—देखूँ तुम्हारा मुख। ज़रा आगे बढो, यहॉं आओ। "

त्रिभुवनको आश्चर्य हुआ कि क्या यही स्नेहसिक्त और भावुक पुरुष उसका क्रूर समझा जानेवाला मामा है ? कुछ क्षण दोनो मौन रहे।

" बहुत समय बाद मैंने तुम्हे देखा। "

" कदाचित् पहली ही बार। नहीं ? "

त्रिभुवनके शब्दोंने मंत्रीकी बुद्धिको तेज कर दिया। उसने स्वस्थता प्राप्त की। त्रिभुवनको ऐसा प्रतीत हुआ कि ऐसा कटाक्षपूर्ण वाक्य बोलकर उसने भूल की है।

" क्यों बेटा, कैसे आये ? " मंत्रीकी उमंग-भरी आवाज़ भावहीन होने लगी।

त्रिभुवनको सूझा नहीं कि किस प्रकार बात आरंभ की जाय; अतएव उसके

मुखसे निकल गया, " एक भिक्षा माँगने आया हूँ । "

" भिक्षा ! मेरी बहनका पुत्र, मेरे जीते-जी भिक्षा माँगे !" ज़रा हँसते हुए मुंजालने कहा ।

त्रिभुवनने गिड़गिड़ाते हुए कहा, " हाँ मामाजी, भिक्षा कहिए, या जो चाहे कहिए; पर मुझे एक वस्तु दीजिए । "

" कौन सी वस्तु ? "

" मेरी जननी । "

और कोई होता तो चौंक पड़ता, परन्तु मुंजालके मुखपर क्षण-भरके लिए आश्चर्यकी बिजली चमकी और अदृष्ट हो गई ।

" यह क्या कह रहे हो ? "

" सच कह रहा हूँ । सत्रह वर्षोंतक मुझे अपना जीवन नीरस प्रतीत हुआ है । आज मुझे ज्ञात हुआ कि वह क्यों नीरस था । मुझसे अपनी माताके बिना नहीं रहा जाता । वह मुझे लौटा दीजिए । "

" बेटा, तुम पागल हो गये हो ? तुम्हारी माता तो कभीकी स्वर्गवासिनी—"

" मामाजी, आप भी मुझसे छल करेंगे ? मेरी माता जीती हैं । "

" किसने कहा ? " निश्चल दृष्टिसे त्रिभुवनकी ओर देखते हुए मुंजालने पूछा । उसके स्वरमें कृत्रिम, शान्त मधुरता थी, तो भी उसकी आँखें कहे देती थीं कि उसका मस्तिष्क तेज़ीसे काम किये जा रहा है । "

" किसने कहा ? मैं कहता हूँ । देखनेवालेने उन्हें सदेह देखा है, और कहनेवालेने सत्य सत्य कहा है । "

" किसने देखा ? किसने कहा ? "

आर्द्र होकर त्रिभुवनने कहा, " मामाजी, आप मेरे साथ ऐसा व्यवहार करेंगे ? जन्म लेकर मैंने माँकी गोद नहीं देखी· जन्म लेकर स्नेहसे उमड़ते हुए नेत्रोंसे माताके अमूल्य बोल नहीं सुने । आप पाषाण नहीं, मनुष्य हैं । रोते हुए, कलपते हुए और साधसे पागल हुए एक बालकपर आपको दया नहीं आती ? आपके हृदयने उमंग-भरी बहनके लिए ज़रा भी स्थान नहीं है ? किस लिए वे गईं; यह मैं नहीं जानना चाहता । किसने उन्हें सताया, यह भी मैं नहीं सुनना चाहता: परन्तु इस समय वे मुझे देखें, तो आपको कितने आशीष दें ? माता-पिता आपकी शरणमें उन्हें छोड़ गये थे । आज बेचारी उस दीन बहनकी इतनी-सी इच्छा भी पूर्ण न

करेंगे ? उनके छः मासके उमंग-भरे कुमारके निकटसे उन्हें लोग उठा ले गये, और उन्होंने फिर उसे नहीं देखा। आज वह बड़ा हो गया, माताके नेत्रोंको शीतल करनेवाला हो गया। आप अपनी बहन और भानजेकी यह दीन प्रार्थना न सुनेंगे ? मामाजी, दोनोंकी भेंट न करा देंगे ?"

त्रिभुवनका मुख दयनीय था, उसके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। सामने मंत्री स्थिर होकर बैठा हुआ था। उसके मुट्ठी बँधे हुए हाथोंके नाखून मांसमे ज़ोरसे घुसे जा रहे थे। इसके सिवा अनुभूतिके कोई चिह्न उसपर नही थे।

"बेटा, क्यो रो रहे हो ? यह सब मिथ्या है। मै कोई परमेश्वर हूँ कि असंभवको संभव कर सकूँ ?" उसने भाव-हीन स्वरमे कहा।

"नहीं, परन्तु आपका नाम मुंजाल है। आप गुजरातकी दसो दिशाओमे फैली हुई ख्यातिके स्वामी हैं, आपकी शक्ति अपार है। आप जो चाहे, कर सकते हैं।"

"भइया, तुम भूल रहे हो। कई बातोंके समझनेमे अभी तुम्हें बहुत देर लगेगी। विजयी वीरकी सत्ताशाली कीर्तिके पीछे क्या क्या पीडाएँ पड़ी हैं, हँसते हुए मुखकी सुन्दर रेखाएँ कितने आँसुओंको ढके रहती है,—यह सब समझनेमे अभी तुम्हे देर है। यदि मेरे द्वारा मेरी बहन सजीव हो सकती, तो क्या मैं यो बैठा रहता ? मेरी बहन मेरे लिए भी अपने प्राणोके समान थी। वह स्वयं ही मुझे दगा दे गई, मैंने नहीं दिया।"

"तब क्या आप यह कहते हैं कि वे मर गई हैं ? या ऐसे हाथोंमें हैं कि वहाँ आपका ज़ोर नहीं चलता ? आप इस प्रकार आँसू बहायेंगे, तो मेरी क्या दशा होगी ?"

"कुछ नहीं। वह अब कैसे मिल सकती है ?" मुंजालकी आँखोमे भी दुःख झलक आया।

"ऐसे नहीं, यह बताइए कि क्या वे मर गईं ? सचमुच ?"

"तब और क्या ? बहनका जो होना था सो हो गया, पर अब क्या भानजा मेरी बात मानेगा ?" मुंजालने मीठे स्वरमें पूछा।

त्रिभुवन सोच रहा था कि 'अब इनको क्या कहा जाय ? कहीं पिताजी या कर्णदेवका भ्रम ही न हो ?'

"त्रिभुवन मेरे पास रहोगे ?" मुंजालने इस प्रकार कहा, जैसे एकदम

निश्चयपर आ गया हो।

चौंककर त्रिभुवनने कहा "क्यों?"

"देखो, मेरे कोई सन्तान नहीं है। संसारमें मेरे लिए दूसरा कोई उपाय नहीं है। दिन जाते मुझे बुढ़ापा आ घेरेगा। मेरे साथ रहोगे? मेरे हृदयकी आशाओंको पूर्ण करोगे?"

"मामाजी, यह एक ही प्रकारसे हो सकता है। आप मेरे पिताजीसे सन्धि कर लें।"

मुंजालके होठ दब गये। उसके नेत्र अधिक तीक्ष्ण हो गये। वह बोला, "तुम्हें सन्धिके लिए भेजा है?"

त्रिभुवनने गर्वसे मस्तक उठाकर कहा, "मंडलेश्वर सन्धिकी याचना नही करते!"

मुंजालने मधुरतासे कहा, "भइया, यदि तुम इतनी बात मान लो तो ऐसा सुख दूँगा कि अपनी माका भी सुख भूल जाओगे।"

"यह कैसे हो सकता है? उस सुखके लिए अपने पिताजीको अकेला छोड़ दूँ?"

"मडलेश्वर अपने कामको आप सँभाल लेंगे। यहाँ तुम जैसोंके लिए प्रतिष्ठा है, धन है और कीर्ति है।"

"और फिर?"

"फिर क्या? कर्णदेवकी मृत्युके पश्चात् तुम्हारे पिताजीकी जो स्थिति अब है, उससे बुरी हो जायगी। वहाँ तुम्हारा निर्वाह न होगा।"

"मामाजी, उस स्थितिको सुधारना या बिगाड़ना इतना सहज नहीं है। देहस्थलीका दुर्ग ऊँचा है और वहाँके वीरोंने चूड़ियाँ नहीं पहन रखी हैं।"

"वहाँ एक वस्तु नहीं है।"

"वह क्या?"

"मुंजाल मंत्रीकी बुद्धि!"

"मामाजी, बुद्धि परमेश्वरने किसी एकको ही नहीं सौंप दी है।"

"बेटा, व्यर्थकी बातोंके लिए मेरे पास समय नहीं है। मेरा हृदय तुम्हारे लिए तरस रहा है। मेरे स्थानकी पूर्ति तुम न करोगे, तो कौन करेगा?"

"क्या आप कीर्ति और धनका लालच देकर मुझे लुभा रहे हैं? और यदि

आपकी बात सत्य हो, यदि मुंजाल मंत्रीकी बुद्धिसे ही पाटनका अत्याचार मेरे पिताजीपर होनेवाला हो, तो क्या ऐसे समय मैं आपके पास आकर बैठ जाऊँगा ? मुझे आप क्या समझते हैं ? जिस मातृ-हीन बालकको उन्होंने मा जैसे लाड-प्यारसे पाल-पोसकर बड़ा किया, आप जैसे अत्याचारीने उसके लिए राज्य और यश एकत्र कर रखे हैं ? पुत्र क्या ऐसा नीच, कृतघ्न हो जायगा कि वह सिंहके समान अपने पिताका साथ छोडकर ऐसे समयमें आपकी सुकोमल, सुन्दर गोदमें आ छिपेगा ? मामाजी, यहाँ आपका मंत्रित्व काम न देगा । ”

मुंजाल मौन-मुख सुनता रहा । उसका मुख कठोर हो गया, “जैसी तुम्हारी इच्छा । मुझसे तो जो हो सकता था वह कहा । ”

त्रिभुवनने तिरस्कार-पूर्वक कहा और खड़ा हो गया । “ हंसा देवीके घातकसे उसके पुत्रको और क्या आशा हो सकती है ? ”

मुंजालने कुछ फीका-सा हँसकर कहा, “ लड़के, कठोर शब्दोंका व्यवहार करना तुझे खूब आता है । ”

“ शब्द जितने सख्त हैं उतने ही सच्चे भी हैं । मामाजी, आप सुखी नहीं है । आपका हृदय भी न जाने क्यों रो रहा है । इसे आप जानें और आपका हृदय । मैं जाता हूँ । परन्तु इस समय आपने मेरी याचनाको ठुकराया है, इसके लिए आपको पछताना पड़ेगा । ” यह कहकर त्रिभुवन प्रणाम करके चला गया ।

मुंजाल बहुत देरतक द्वारकी ओर देखता रहा और उसने एक निःश्वास छोड दिया । लोग उसे बड़ा मज़बूत और सिर फिरा हुआ समझते थे । कई लोग यह भी नहीं मानते थे कि उसके हृदय है या हो सकता है, फिर भी मुंजालने अपने खेसके छोरसे आँखे पोंछ डालीं और वह वहाँसे उठ खड़ा हुआ । त्रिभुवन जल्दीसे राजमहलकी सीढियाँ उतरा और घर जानेके लिए पालकीमें पैर रखना ही चाहता था कि एक दासीने आकर उसे रोक लिया ।

“ त्रिभुवनपाल, बाणसे बेध तो दिया; पर उसका घाव कब मिटाओगे ? ” दासीने एक बाण भी सामने रख दिया । त्रिभुवनने उसे देखा, और पहचान लिया कि वह उसीका है । उसे याद आ गया कि वह अपना धनुष-बाण प्रसन्नके ही पास छोड आया था । बाणकी नोकपर रक्तकी एक बूँद थी । उसे प्रसन्नका स्मरण हो आया । उसके पास जाकर दुःखित हृदयके दो शब्द कहनेकी इच्छा भी हो आई । परंतु फिर सोचा कि जाने वह कौन है और कैसी होगी । उसने अपने

हृदयको दृढ़ कर लिया।

"दासी, जाकर कह देना कि घायलोंकी दवा जगह जगह मिलती है।" यह कहकर उसने बाणके दो टुकड़े कर दिये और उसे दासीके हाथ लौटा दिया।

वह फिर पालकीपर चढ़ने लगा। इसी समय राजप्रासादमें घोर रुदन आरंभ हो गया। चारों ओर कुहराम मच गया। त्रिभुवन अकुलाता हुआ फिर लौटा। राजा कर्णदेव सोलंकीके प्राण निकल गये थे।

११—कर्णदेवकी मृत्यु

त्रिभुवन वहाँ गया जहाँ कर्णदेवको जमीनपर रख दिया था। सारे महलके लोग दौड़कर आ पहुँचे थे और क्षण क्षणमें मनुष्योंकी भीड़ बढ़ रही थी। रोना-पीटना आरंभ हो गया था। आज कई दिनोंसे साधारण जनताको यह आभास हो रहा था कि पाटनके सिरपर कोई भयंकर संकट आनेवाला है। कर्णदेवकी मृत्युने उस संकटका श्रीगणेश कर दिया। जितने लोग समा सके राजमहलमें घुस आये, बाकी बाहर चौपालमें खड़े हो गये, और जो वहाँ भी न आ सके वे बाहर चौराहेपर एकत्र होने लगे। सभी लोग भिन्न भिन्न प्रकारकी बातें कर रहे थे। 'रानी कैसी मालूम हो रही हैं, मुंजालके मुखपर क्या भाव है, देवप्रसाद पाटनमें आ गया है या नहीं?' इस प्रकारके अनेक प्रश्नोंपर चर्चा होने लगी। न जाने कितने लोगोंकी प्रतिष्ठाकी धज्जियाँ उड़ने लगीं। खबर लगते ही मंडलेश्वर भी आ पहुँचे। उन्हें देखकर लोग घबरा गये। आज न जाने कितने वर्षोंके बाद वे प्रकट रूपसे राजप्रासादमें आये थे।

मंडलेश्वरने कर्णदेवके शवको प्रणाम किया, फिर त्रिभुवनको खोज निकाला और धीरे-से पूछा, "क्यों, कुछ हुआ?"

त्रिभुवनने सिर हिला दिया, "नहीं।"

मंडलेश्वरने पूछा, "परन्तु जीवित है या नहीं, यह कुछ ज्ञात हुआ?"

"कुछ कहा नहीं जा सकता। मुझे तो कोई रहस्य प्रतीत होता है।"

"अच्छा, फिर विचार करेंगे; पर अब आँखों और कानोंको खुला रखना। कल सवेरे उठावनेके पहले कुछ न कुछ होगा।"

" चिन्ता नहीं। "

इसी समय क्रिया-कर्मके लिए राजपुरोहित आ गये और कमरेके लोग इधर उधर हो गये। इतनेमें एक भयंकर राजपूत गलमुच्छोंको चढाता हुआ आ पहुँचा और मंडलेश्वरके पास इस प्रकार खडा हो गया जैसे उसे पहचानता ही न हो। वह वीरपुरका सामन्त था।

उसने धीरे-से मंडलेश्वरसे पूछा, " मण्डलेश्वरजी, तैयार हैं ? "

" किस लिए ? "

" मैंने आपसे कहा न था ? मेरे सैनिक तैयार हैं। कहिए, तो कल सवेरे ही इस स्थानकी पूर्ति आप कर सकते हैं। " यह कहकर उसने राजाके शवकी तरफ़ देखा।

मण्डलेश्वर कुछ मुस्कराया, " विजयमल्लजी, पाटनका राजा अब जयदेव है, और कोई नहीं। "

विजयमल्लने होठ चबा लिये और घूरकर वहाँसे हट गया। कुछ देरमे कर्ण-देवके शवको सब लोग श्मशान ले गये। सारा नगर लोकप्रिय राजाके साथ था। शोभाके लिए, राजा भला था इस लिए तथा भविष्यके भयके कारण बहुत लोगोंने अश्रु बहाये। पाटनके राजा जलकर भस्मीभूत हो गये और साथमें गये लोग लौट आये। सबसे आगे कुमार जयदेवके साथ देवप्रसाद चल रहा था। शत्रु बने हुए इन भाइयो+को साथ देखकर लोगोने भाँति भाँतिके विचार किये। सब लोग राजप्रासादमे पहुँचे। रोये, कलपे, अलग हुए, और हारे-थके सब अपने अपने घर चले गये। मण्डलेश्वर और त्रिभुवन भी घर आये कि कुछ ही देरमे ज़ोरावर आ पहुँचा।

ज़ोरावरने कहा, " महाराज, पिछले दरवाज़ेपर राजा मदनपाल आकर खड़े हैं। वे आपसे एकान्तमे मिलना चाहते हैं। "
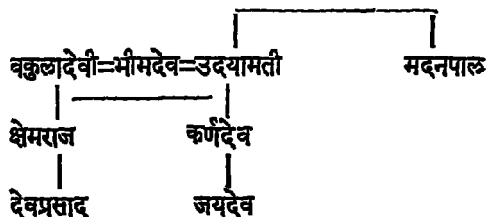
"आज इन सबको हो क्या गया है! सभी षड्यन्त्रकारी बन गये हैं। अच्छा अन्दर बुला लाओ।"

मदनपाल आये। वे साठ वर्षके मज़बूत, जमाना देखे हुए राजपूत योद्धा थे। वे कर्णदेवके मामा होते थे। मुंजालने सत्ता क्षीण करनेके लिए उन्हें कर्णावतीके दुर्गपालका सम्मानित पद दे दिया था। सब जानते थे कि मदनपालके मस्तिष्कसे कैसे कैसे षड्यन्त्रोंकी रचना हुआ करती थी; परन्तु उसकी आकांक्षाको कोई नहीं समझ सका था।

मदनपालने ज़रा हँसते हुए पूछा, "कहिए मण्डलेश्वरजी, क्या नये समाचार हैं?" अपने बूढे पर तीक्ष्ण नेत्रोंसे वह देवप्रसादके हृदयकी बातको जाननेका प्रयत्न कर रहा था।

देवप्रसादने उत्तर दिया, "जो आप बतलाएँ।"

"कहिए, अब कुछ करेंगे? इस प्रकार कबतक बैठे रहेंगे?" गद्दीपर बैठकर हाथमें हुक्का लेते हुए मदनपालने पूछा।

"क्या किया जाय? कल उठावना है। हमारी रीतिके अनुसार नये राजाको जब तिलक किया जायगा, तभी कुछ नया परिवर्त्तन होगा। उस समय देख लिया जायगा कि क्या करना है। इस समय तो हम पाटनमें बैठे हैं।"

कुछ उद्धततासे मदनपालने कहा, "मंडलेश्वर, यह क्या कुछ कम मूर्खता कर रहे हो? सामन्तोंके मुकुट-मणि हो, तुम फिर भी इतनी बेपरवाहीसे बैठे हो? लज्जा नहीं आती?"

मदनपालके हृदयकी बात जाननेके लिए मंडलेश्वरने बनावटी लापरवाहीसे उत्तर दिया, "क्या किया जाय? और कुछ न होगा, तो अपनी देहस्थली तो है ही। वहाँ जाकर चैनसे राज करूँगा।"

"मीनलदेवी जाने देगी? मंडलेश्वर, प्रत्येक क्षण स्वर्णका बीत रहा है।"

"मुझे देहस्थली जानेसे कोई रोक सकता है? कैसी पागलोंकी सी बातें कर रहे हैं!"

"मंडलेश्वर, तुम भले हो और भोले हो। इस रानीके दाव-पेचोंसे तुम पार नहीं पा सकते।"

"तो फिर करूँ क्या?" मंडलेश्वरने इस प्रकार कहा जैसे वह उलझनमें पड़ गया हो।

"मैं वही विचार करने आया हूँ। मेरा मंडल छोटा-सा है, और उन्होंने मुझे कर्णावतीमें सड़नेके लिए भेज दिया है। कल ही मेरे मंडलको सर करनेमें उन्हें क्या देर लगेगी?"

देवप्रसादने देखा कि मदनपाल कोई युक्ति रचकर आया है। उसे जान लेना उन्होंने आवश्यक समझा, "तब आपने क्या रास्ता निकाला है?"

अपनी युक्तिको खोलते हुए बूढा बोला, "यही तो मैं तुमसे पूछने आया हूँ। जबतक मीनलदेवीके हाथमें लगाम है, तबतक मंडल कभी निर्भय नहीं हो सकते।"

"रानी कोई मार्गका कंकड़ तो हैं नहीं कि उठाकर फेंक दी जायगी?"

"नहीं, परन्तु माँ-बेटे तो जुदा किये जा सकते हैं?"

चौंककर देवप्रसादने पूछा, "ऐं! यह तुम क्या कह रहे हो? किस प्रकार?"

"हाँ, तुम्हारी हिम्मत चाहिए। आज रातको यहाँसे कुमार जयदेवको उठा ले जायँ, और परसों कर्णावतीमें तिलक कर दें।"

देवप्रसाद बूढेके साहसपर चकित हो गया। जयदेवको कर्णावतीमें गद्दीपर बिठाया जाय और वहाँसे राज्यका संचालन किया जाय, यह युक्ति बहुत अच्छी थी। देवप्रसादने सोचा कि देखें, राज्यकी चालें क्या क्या कराती हैं!

"परन्तु जयदेवको ले जाना सहज नहीं है।"

"मंडलेश्वर, बिना कोई निश्चय किये मैं कभी कोई बात मुँहसे बाहर नहीं निकालता।"

"परन्तु मदनपालजी, आपने यह कैसे जान लिया कि इस उपद्रवमें मैं योग दूँगा?"

"मंडलेश्वर, मेरी अपेक्षा तुम्हारी स्थिति अधिक बुरी है और होगी।"

"परन्तु मामाजी, कष्टकी अपेक्षा टेक मुझे अधिक प्रिय है।"

"राज्यके झगड़ोंमें टेककी अधिक परवा करोगे तो मारे जाओगे। उधर मीनल और मुंजाल दो कपटी इकट्ठे हो गये हैं। अब तो 'शठं प्रति शाठ्यं कुर्यात्'।"

"इतने वर्षोंमें जिन हाथोंको अनीतिसे दूषित नहीं किया, उन्हें अब कर दूँ? मैं तो राजपूत वीरोंकी शूरताके अतिरिक्त और कोई भी मार्ग नहीं ग्रहण करूँगा।"

मदनपालने समझाते हुए कहा, "परन्तु भइया, यह वह समय नहीं है। अभी और विचार कर लो।"

" इसमे विचार क्या करना है ? एक डाकूकी भाँति चुपचाप रातोंरात पाटनके मालिकको उठा ले जाऊँ, और उसे अपने कब्जेमें रखकर शासन करूँ ! इसकी अपेक्षा, अपनी सेना लाकर पाटनको सर क्यों न कर लूँ ! मर्दानगी तो इसमें है । "

मदनपालने पानका बीड़ा लिया और तब उठते हुए कहा, " मंडलेश्वर, अपनी मर्दानगी तुम अपने तक ही रखना । किसीसे कहना नहीं ।"

" अच्छी बात है । "

" तो वचन दो । "

देवप्रसादने कहा, " हाँ, वचन देता हूँ । क्या करूँ, मेरा हृदय स्वीकार नहीं करता, नहीं तो आपकी योजनामें अवश्य योग देता । "

बहुत राततक मुंजाल राज-तन्त्रको स्थिर रखनेके प्रयत्नमें लगा रहा । अभी तक किये हुए परिश्रमसे यह काम उसे बहुत सरल प्रतीत हुआ । प्रत्येक पक्ष किस किस हलचलमें लगा है, ऐसे कौन-कौनसे मंडलेश्वर हैं जो सामना करेंगे, पाटनमे किस किसके गुप्तचर घूम रहे हैं, यह सब समाचार उसने सुन लिये और इस बातकी भी जाँच कर ली कि सब स्थानोंपर विश्वास-पात्र मनुष्य नियत हैं या नहीं । सारे महलमें कड़े पहरेका भी प्रबध कर दिया । इसके बाद वह रनवासकी तरफ गया ।

दासीने कहा, " महारानीजीके माथेमे इस समय बड़ी पीड़ा हो रही है, सवेरे नहीं मिल सकेंगे ? "

सिर दुखनेके बहानेपर मुंजाल हँस दिया । उसे समाचार मिल गया था कि अब तक मीनलदेवी शान्तिचन्द्र और यतिके साथ सलाह कर रही थीं । उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई नया प्रयोग किया जा रहा है और यह जाननेके लिए ही वह इस समय यहाँ आया था ।

" नहीं, इस समय बहुत आवश्यक कार्य है । "

दासी अन्दर गई और लौट आई, " आइए, महारानीजी बैठी हैं । "

प्रकृतिस्थ होकर मुंजाल भीतर गया । मीनल देवीकी वैधव्य-दशा देखकर उसके हृदयको दुःख हुआ । मीनलदेवी काले वस्त्र पहने थीं और उनकी आँखोंमें आँसू भरे थे । फिर भी उनमें मुंजालको एक अद्भुत मोहकता दिखाई पड़ी । हृदयको दबाकर उसने कर्तव्यको आगे किया ।

दबे हुए स्वरमें मुंजालने कहा, "देवी, इस समय आनेके लिए मुझे क्षमा करे ।

परन्तु कल सवेरे उठावनेके समय कुमारको तिलक करना होगा। उस समय क्या किया जायगा? नये पद भी उसी समय दिये जायँगे।"

मीनलदेवीने ऊबकर ऊपर देखा। मुंजालने समझ लिया कि इस समय वह ढोंग कर रही है।

"इस समय तो कोई बात नहीं हो सकती। मेरा माथा घूम रहा है। अभी तो जैसा चल रहा है, वैसा ही चलने दो।"

"देवी, अभी अभी शान्तिचन्द्र और यतिके साथ बातें करनेमें माथा नहीं घूमा?"

रानीने होठ चबा लिये।

"देखिए, एक कदम भी उलटा रखेंगी, तो किया-कराया सब मिट्टी हो जायगा।"

"यह सब बातें फिर शान्तिसे की जायँगीं"

"मीनलदेवी राज्य-शासनकी बातोंसे ऊब जायँ, यह इतने वर्षोंमे आज ही देखा। ठीक है, मुझे कोई परवाह नहीं। परन्तु इतना स्मरण रखिए कि मुंजालके समान निःस्वार्थ परामर्श कोई नहीं दे सकता।" गर्वसे सिर उठाकर मुजालने कहा।

"क्या इसे मैं नहीं जानती?"

अश्रद्धासे मुंजालने सिर हिलाया, "तो ठीक है।" कहकर वह बाहर निकल गया और विचारोंमे लग्न अपने कमेरकी ओर घूम पड़ा। इसी समय एक गुप्तचर सामने मिल गया। उसने कानमे कुछ कहा।

कमरेमे आनन्दसूरि बैठे हुए राह देख रहे थे।

उन्हें देखकर मुंजालने निराशाको दबाया और सदाका स्वस्थ गांभीर्य और रुआब धारण कर लिया। उसने जरा कठोरतासे पूछा, "कहिए यतिजी, इस समय कैसे?"

"मेहताजी, ज़रा काम है।"

"क्या है, कहिए। परन्तु जो कुछ कहना हो, जल्दी कहिए। आज मैं थक गया हूँ।"

"आप श्रावकश्रेष्ठ हैं, बुद्धिमान् हैं, आपसे एक विनय करने आया हूँ।"

"क्या?" मुंजालने ज़रा भौंहें चढ़ाकर पूछा।

"इस समय पाटनकी स्थिति बहुत ख़राब है। उसे सुधारना आपके ही हाथ है।"

मुंजालने तीक्ष्ण दृष्टिसे यतिकी ओर देखते हुए पूछा, "किस प्रकार ?"

यतिने कहा, "यदि आप दंडनायक बन जायँ, तो वह सुधर सकती है।"

मुंजाल इस प्रकार पकड़में नहीं आ सकता था। उसने ठंडे पेटसे उत्तर दिया, "यह कोई अपने हाथकी बात है ?"

"परंतु क्या महारानीजीसे नहीं कहा जा सकता ?"

मंत्रीने कृत्रिम लापरवाहीसे कहा, "इसकी मुझे कोई परवा नहीं है। करने-धरनेवाली देवी हैं। उनकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।"

"परन्तु आपकी राजनीतिसे वे ऊब गई हैं, थक गई हैं।"

मुंजालने जरा कठोरतासे पूछा, "क्या यह कहनेके लिए ही देवीने आपको इस समय यहाँ भेजा है ?"

यतिने होठ चबा लिये। मुंजालको मात करनेकी आशा उसने छोड़ दी। "देखिए मंत्रिवर, आप जैसे राज्यके मित्रोंको समझ-बूझकर काम करना चाहिए।"

मुंजालने एक तिरस्कार-पूर्ण दृष्टिपात करके उत्तर नहीं दिया।

"आप जैन-सत्ताके प्रतिनिधि बन जायँ तो तुरन्त दंडनायक बन सकते हैं।"

मुंजालने बड़ी शान्तिसे, हृदय-भेदक भावहीनतासे कहा, "यतिजी, इस कालका कोई कैसा ही दिग्गज आये, उससे मुझे यह शिक्षा नहीं लेनी है कि राज्यका संचालन कैसे करना चाहिए। मैं किसीका प्रतिनिधि नहीं, समस्त गुजरातका हूँ। मैं पाटनका चक्र घुमाऊँगा तो वह समस्त प्रजाका होगा, और कुमार जयदेव महाराजा होंगे तो वे सारे देशके होंगे। दलबन्दीके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।"

"परन्तु यह मैं कब कहता हूँ ?"

"कहिए या न कहिए। यतिजी, अभी आप बालक हैं। मुंजाल या तो अपने विचारोंके अनुसार राज्य चलाएगा, नहीं तो अलग जा बैठेगा, समझे ? जिसने आपको भेजा है, उससे कहिए कि मुंजालपर शासन करनेका फिर साहस न करे। जनताके स्नेह और अपनी बुद्धिसे ही मैं अपने पदका भोग कर रहा हूँ। और मैं देखूँगा कि कौन उसे छीन लेनेका साहस करता है। जैसा मैंने सोचा था, आप भी वैसे ही अल्पबुद्धि निकले। चिन्ता नहीं, अब आप जाइए।"

मुंजालके नेत्रोंसे तलवारकी धारके समान तीक्ष्ण तेज निकलने लगा। उसके जुड़े हुए होठोंपर अडिगताकी मोहर लगी थी। यति निराश हो गया, फिर भी

निराशामें भी उसने मंत्रीकी शक्तिकी तारीफ की।

"आपकी मर्ज़ी" कहकर आनन्दसूरि वहाँसे चल दिये।

"देवी, तुम यह क्या करनेको बैठी हों?" मुंजाल बुदबुदाया।

विचारमें मग्न हुआ मुंजाल न जाने कबतक टहलता रहा।

साम्राज्य स्थापित करनेके स्वप्न इस समय उसे समाप्त होते दिखलाई पड़े। बचपनसे ही वह मंत्री विमलशाहकी बुद्धिको औंधी समझता था। मुंजालको सत्तावान् बननेकी हौंस उसकी अपेक्षा अधिक थी। भीमदेवकी अपेक्षा कर्णदेव अधिक अशक्त और प्रभाव-हीन था। दूसरी चन्द्रावती बसाते उसे ज़रा भी देर नहीं लग सकती थी। फिर भी, उसकी दृष्टिसे यह सब ओछी बुद्धिके विचार थे। इसकी अपेक्षा, पाटनकी सत्ताको दृढ करके सारे देशको प्रभावशाली बनानेकी ओर उसकी दृष्टि गई। और जब वह सौभाग्यसे चन्द्रपुर गया, तब मीनलकुमारीकी मैत्री प्राप्त कर सका। बड़े परिश्रमसे उसने उसे पाटनकी रानी बना दिया। अभी तक तो सब कुछ ठीक चलता रहा; पर अब समस्त आशाओंकी अट्टालिका ढहने लगी। मुंजाल अभिमानी था, सत्ताका शौकीन था, फिर भी उसकी आकांक्षा यह थी कि सारे भारतवर्षमें वह गुजरातका डंका बजवाए। परन्तु, जब ये सब आकांक्षाएँ उसे निरर्थक होती दिखीं, तब उसे सख्त चोट लगी। वर्षोंसे स्वीकार की हुई दासता, रानीकी आज्ञासे वर्षोंसे सताई गई बहन, अकारण तिरस्कृत भानजा,—इन सबकी मूर्त्तियाँ मनश्चक्षुके सामने आ खड़ी हुईं। यह सब किस लिए किया? रानीकी ईर्ष्यासे तड़प तड़प कर मरी हुई स्त्री अनेक वर्षों बाद उसे याद आई। प्रभावशाली मनुष्यकी दृढ़तासे उसने इन विचारोंको दूर कर दिया।—अब क्या किया जाय? एक विचार आया, क्या विद्रोह खड़ा करके पाटनको अपने अधीन कर लूँ और रानीको निकम्मी कर दूँ?—नहीं; नहीं, देवीको देवी ही समझना चाहिए। महत्त्वाकांक्षा तो समाप्त हो गई, पर इतने वर्षोंके स्नेहको ठुकराना उसे अच्छा नहीं लगा। चाहे जो हो, पर इस समय तो चुपचाप देखते रहना चाहिए और समय आनेपर ऐसे हाथ दिखलाना चाहिए कि जिससे अपने स्वप्न भी सत्य हो जायँ, और रानीका स्नेह भी बना रहे। वह ठीक ठीक नहीं जानता था कि प्रातःकाल क्या होगा। अतएव, यह निश्चय करके वह सो गया कि जो कुछ होगा देखा जायगा।

१२—उठावना+

पौ फटते ही राजमहलमे लोगोंकी भीड जमा होने लगी। कुछ दूर चौराहेपर नगरकी स्त्रियोंका समूह एकत्र हो गया और उसने रोना आरम्भ कर दिया। प्राचीन कालके राजा सारे नगरके पिता समझे जाते थे और उनपर प्रजा भी पुत्रके समान स्नेह और श्रद्धा रखती थी। राजमहलके बडे से चौकमें सब लोग आ खडे हुए। जागीरदार, सामन्त, मण्डलेश्वर और सेठ-साहूकार सब आस-पास चबूतरेपर बैठ गये। कुछ देरमें देवप्रसाद आया और दरवाजेके पास बैठ गया। फिर मुंजाल आया। सूर्योदय होते-होते कुमार जयदेव, अनन्दसूरि, शान्तिचन्द्र और राजपुरोहित आ गये और सब लोग जल-दर्शनके लिए चले। कान्तिमान् कुमार यति और राजपुरोहितके साथ साथ आगे चल रहा था और दो व्यक्ति पीछे चल रहे थे,—एक सिंहकी-सी भयकर छातीसे सुशोभित देवप्रसाद और दूसरा गंभीर, तेजस्वी सौन्दर्यवान् मुंजाल। समस्त पाटनवासी इन दोनोंकी ओर देखने लगे। मंडलेश्वरसे वे डरते थे और महामंत्रीको पूजते थे। कुछ भी हो, मुंजालपर उनका विश्वास अटल था। जहाँ वह होता, वहाँ उन्हे तनिक भी भय नही रहता था।

सारी मडली जल-दर्शन करके चुपचाप लौट आई और कुमार तथा सामन्त आदि फिर चबूतरेपर आ बैठे। ऐसा लगता था कि ऊपर झरोखेकी खिडकियोंकी जालीसे कुछ स्त्रियाँ देख रही हैं। सब लोग दृष्टि लगाकर यह देखने लगे कि देखें अब क्या होता है। सदासे पाटनके राजाओंका प्रथम पट्टाभिषेक इसी प्रकार होता था। और दूसरा, जो शोभाके लिए किया जाता था कुछ दिनो बाद हुआ करता था। बीचमे चबूतरेपर गद्दी लगाई गई थी। उसपर कुमार जयदेव बैठ गये। पास ही राजपुरोहित खडे हो गये। दूसरी ओर नगरसेठ मुंजाल होठ दबाये सत्ताके अवतारके समान खडा था। उसका मनोहर रूप इस समय और भी अधिक मनोहर प्रतीत हो रहा था। उसके नेत्रोंसे दुर्जेय स्थिर किरणे निकल रही थीं। राज-पुरोहितने कुमारको तिलक किया और उसके पिताकी तलवार उसकी गोदमें रख दी। राज-पुरोहित लौटे और आनन्दसूरि इस तरह

+ शोक प्रदर्शित करनेके लिए मृतकके घर जाकर बैठनेकी क्रियाको 'उठमणुं' या उठावना कहते है। गुजरातमें लोग वहाँसे उठकर किसी जलाशयके पास जाते हैं और थोड़ा-सा जल लेकर आचमन करते हैं। इस क्रियाको जल-दर्शन कहते हैं।

आगे बढे जैसे वे भी तिलक करने जा रहे हों। देवप्रसादने होठ चबा लिये। कारण कि यह नई रीति केवल जैनोंके लिए ही सम्मानपूर्ण थी। लोग चौंक पड़े, कारण कि राजपुरोहितके पश्चात् तिलक करनेका अधिकार नगरसेठका था। परन्तु यतिके पास पहुँचनेसे पहले ही मुंजाल बीचमें आ गये और स्थिरतासे उन्होंने यतिके हाथका चन्दन-पात्र लेकर धीरेसे जयदेवको तिलक कर दिया। घबराये हुए यति होठ चबाकर पीछे हट गये। कई सामन्त खुलकर हँस पडे। मुंजाल तिलक करके पीछे हटे और बोले, "महाराज जयदेवकी जय।" सभी लोगोंने जय-घोष किया।

जय-घोषके शान्त होते ही एक चारणने कवित्त पढ़े। फिर जयदेवने धीरेसे कहा, "मैं कुछ दो-एक परिवर्त्तन करना चाहता हूँ।" सब लोग शान्त हो गये। हरेकके हृदयमे न जाने क्या क्या विचार उत्पन्न हुए। जयदेव घोखी हुई बातें कहने लगा, "मेरे परमपूज्य पिताजीके स्वर्गवाससे राज्य सूना हो गया है। मै अभी बालक हूँ, इसलिए अनेक नये प्रबन्ध करनेकी आवश्यकता है। मै अपने विश्वसनीय और बुद्धिमान् मंत्री मुंजालको अपनी मधुपुरकी छावनी और चन्द्रावतीकी सेनाका सेनापति नियत करता हूँ।"

नासमझ लोग यह सुनकर प्रसन्न हुए। मुजाल इस चालको समझ गया और ज़रा तिरस्कार-पूर्वक हँसता हुआ खड़ा रहा। उसके शत्रु फूल उठे। यतिजी ध्यान-पूर्वक मुंजालकी ओर देखने लगे।

"और अपने पुराने मंत्री शान्तिचन्द्रको इस समय पाटनके दुर्गपालका पद देता हूँ और साथ ही बहुत वर्षोंसे रिक्त पड़ा हुआ दंडनायकका पद भी उन्हे ही सौंपता हूँ।" यह कहकर जयदेवने अपनी तलवार शान्तिचन्द्रके हाथमें दे दी।

मुंजालके अतिरिक्त सभी लोग इस प्रकार चौंक पडे, जैसे बिजली टूट पडी हो। चालीस वर्षोंके बाद दंडनायक, और वह भी लोकप्रिय मुंजाल नहीं, किन्तु श्रावकोंका कट्टर नेता शान्तिचन्द्र! पाटनके लोग चन्द्रावतीसे घृणा करते थे; इसलिए चन्द्रावतीकी ओरके मंत्रीको दंडनायक नियत हुआ देखकर अकुला गये। परन्तु उस समय कोई भी इस बातको सम्पूर्ण रूपसे समझ नही सका। तुरन्त ही वन्दी-जनोंने स्तुति-गान आरंभ कर दिया और घबराई हुई भेड़ोंकी टोलीकी तरह लोग चले गये। सामन्तगण प्रसन्न हुए। कारण कि मुंजालसे वे डरते थे और उसकी सत्ताके चले जानेसे उनकी घबराहट आधी कम हो गई। देवप्रसादके अभिमानका पार न रहा। उसके सिरपर कोई दंडनायक हो, यह उसके गर्वको

भला न लगा। फिर भी शान्तिचन्द्रका नियुक्त होना उसको अच्छा लगा। कारण, उसने समझ लिया कि मुंजालके चले जानेसे अब वह सरलतासे श्रावकोंको अपने हाथ दिखा सकेगा। अपमान मिलनेपर भी, वह बड़ी बड़ी आशाएँ बाँधे अपने महलमें आया।

त्रिभुवन उसकी प्रतीक्षा कर रहा था, "कहिए पिताजी, क्या प्रतीत होता है?"

"कुछ नहीं। अपनी सेनाकी सहायतासे शान्तिचन्द्रको सीधा करना खिलवाड़ है और वह बूढ़ा अब कर भी क्या सकता है? हम लोग यहाँ चैनसे बैठे हैं। अभीतक तो शत्रुओंने ही मुँहकी खाई है।"

"पिताजी, परन्तु एक बात और सुनी?"

"क्या?"

"आज दोपहरको बारह बजे पाटनके दरवाज़े बन्द होनेवाले हैं!"

देवप्रसादने आँखें फाड़कर पूछा, "क्या कह रहे हो? कहाँ सुना?"

"मैं जहाँ खड़ा था, मुंजाल मामा वहाँ आये और उन्होंने मेरे कानमें कहा कि, दोपहरको पाटनके दरवाज़े बन्द करनेकी आज्ञा हुई है।"

मंडलेश्वरने आतुरतासे पूछा, "फिर?"

"और फिर वे चले गये; पर उनकी यह सूचना मुझे विशेष रूपसे आपके लिए प्रतीत हुई।"

"क्या मुझे पकड़नेकी तैयारियाँ हो रही हैं?"

"नहीं, परन्तु यह ज्ञात होता है कि हमारी मेरलवाली सेनासे हमें अलग कर देनेकी तजवीज की जा रही है।"

मंडलेश्वरने त्रिभुवनके कन्धेपर हाथ मारकर कहा, "पाटनके दरवाज़े बन्द करके मुझे यहाँ बन्द कर रखेंगे और मेरी सेनाको बहकाकर अपने अधीन कर लेंगे। परामर्श देनेवाला कोई पक्का आदमी है। इसमें मुंजालका हाथ तो नहीं। हाँ, यह उस यतिका कारस्तान होगा।

"क्या वही यति जो हमे मार्गमें मिला था?"

"हाँ, वही।"

त्रिभुवनने कहा, "तब तो आप जो विचार कर रहे थे, वह नहीं हो सकता। आप तो सेनाको मेरलमें रखकर चैनसे पाटनमें रहनेका विचार कर रहे थे।"

"हाँ, अब वह नहीं हो सकता। काकी तो एक ओरसे मुंजालको और ओरसे मुझे, इस प्रकार दोनोंको पंगु बना देना चाहती हैं। अवश्य ही यह

चंद्रावतीके उस यतिकी है। मैं अपनी सेनासे बिछुड़ जाऊँ और मुंजाल पाटनसे बिछुड़ जाय!"

"मामा कुछ न करेंगे?"

देवप्रसादने कहा, "तुम्हारे मामा तो काकीके दास बने बैठे हैं। परन्तु उन्हें जो कुछ करना हो, वह करें। चलो, हम भोजन करके तैयार हो जायें और दोपहरसे पहले ही पाटनसे बाहर निकल चलें। जब सब ठीकठाक हो जायगा, तब लौट आएँगे।"

"बेटा, समय विकट आ रहा है। तुम्हारी भी अब कसौटी होगी।"

"पिताजी, कसौटीके लिए मैं तैयार हूँ।"

त्रिभुवनके साहसपर प्रसन्न होते हुए मंडलेश्वरने कहा, "देखूँगा। इस समय तो मंडुकेश्वर महादेवकी कृपा चाहिए।"

पिता और पुत्र जानेकी तैयारी करने लगे।

१३—साले-बहनोई

जब साहसी शिकारी जन्तुओंको लड़ानेकी होड़में खड़ा किया जाता है, तभी पता लगता है कि उनमें कितना पानी है। पहले वे शान्त-सीधे दिखलाई पड़ते हैं; पर ज्यों ही मुकाबलेमें आते हैं कि बदल जाते हैं। नेत्रोंसे चिनगारियाँ निकलने लगती हैं, नथुने फूलने लगते हैं और किसी भी प्रकार विजयी होनेकी ओर ही उनकी दृष्टि जा लगती है। मीनलदेवीका ऐसा ही स्वभाव था। होड़ लग गई थी। साहसके साथ वह मुंजाल और मंडलेश्वरसे भिड़ गई थी। उसने वर्षोंसे दबाई हुई शक्तियोंको बाहर निकाला, राज्यकी लगाम अपने हाथमें ली और राजमहलके पहरेदारोंसे लेकर मेरलकी सेनातक सब ओर अपना ध्यान रखने लगी। अनुभवी मुंजालकी सहायताके बिना ही उसने और यतिने सारे राज-काजको अपने हाथमें ले लिया। परन्तु मीनलदेवी आखिर स्त्री थी। इस नई योजनासे उसका आशय यह था कि वह मुंजालको चिढ़ाए और दिखला दे कि मीनलदेवी अकेले हाथों राज्यका संचालन कर सकती है। जिस गुरुकी शिक्षाके अनुसार वह अबतक चलती रही, उसीको पाठ पढ़ानेकी उसे इच्छा उत्पन्न हो गई। साथ साथ कुछ खिन्नता भी आ गई। मुंजालके प्रति किया हुआ अन्याय

उसे खल रहा था और इस अन्यायको वह किस प्रकार स्वीकार करता है, यह देखनेकी उसे बड़ी इच्छा हो रही थी। घड़ी दो घड़ी उसने मुंजालकी प्रतीक्षा की : 'अभी वह फड़फड़ाता आएगा, और अभी क्रोधसे चमकता हुआ उसका कान्तिवान् मुख वह देखेगी।' पर वह नहीं आया। दिन चढ़ने लगा, परन्तु मुंजालका मुख उसे नहीं दिखा। रानीको चिन्ता हो गई।

"दासी, देख तो बाहर कौन है ?"

"जी, देखती हूँ।" दासी बाहर गई और आकर बोली, "बाहर चोबदार समरसेन है, बुलाऊँ ?"

"हाँ बुलाओ।"

समरसेन आया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

"समर, ज़रा देख तो आओ कि मुंजाल मेहता कहाँ हैं। किसीसे कहना मत, तुरन्त लौटकर आना।"

"जो आज्ञा।" कहकर वह चला गया।

समरसेन जबतक लौटकर नहीं आया तबतक बड़े आवेशसे वह झूलेपर झूलती रही। उसकी आतुरता बढ़ती जा रही थी। इसी समय चोबदार लौट आया।

"क्यो समर ?"

"माताजी, मंत्रीमहाराजने अभी अभी हिसाब करके सारी बहियाँ सेठ शान्तिचन्द्रके पास भेजी हैं, और मधुपुर जानेके लिए घोड़ा मँगाया है।"

मीनलदेवी अकुलाई। इस कर्तव्य-परायणताकी अपेक्षा मुंजाल चिढ़ा होता तो अधिक अच्छा था। क्या मुंजाल उसे उसके किये हुए अन्यायका दंड दे रहा है ? क्या अब मुंजालकी स्नेहपूर्ण मुस्कराहट नहीं मिलेगी ? मीनलदेवीका हृदय सदा बुद्धिके कवचके भीतर घूमता था, उसमें मुंजाल ही चोट कर सके, इतनी जगह थी। मुंजालने चोट करना आरम्भ कर दिया था। मीनलदेवीको कल न पड़ी।

उसने कुछ आतुरताके साथ कहा, "समर, मुंजाल मेहतासे कह आओ कि यहाँ होकर जायँ।"

"जी।" कहकर आज्ञाकारी चोबदार फिर गया।

रानीकी अधीरता बढ़ती जा रही थी। वह ज़ोर ज़ोरसे झूलने लगी। समरसेन लौट आया।

"माताजी, मुंजाल मेहता कहते हैं कि समय मिला तो आऊँगा। मधुपुर

जानेको विलम्ब हो रहा है। ”

“ मधुपुर गया भाड़मे ! कहो कि अभी इसी समय बुला रही हैं। ” दाँतो-को ज़ोरसे दबाकर मीनलदेवीने कहा। एक एक क्षण उसे विषके समान प्रतीत हो रहा था। कुछ देरमें पैरोंकी आहट सुनाई पड़ी। उसने पहचान लिया कि मुंजाल आ गया। अपनी प्रकट की हुई सत्ताका स्वाद लेनेके लिए उसने स्वस्थता प्राप्त की। उसे ज़रा अभिमान हुआ कि मैंने मुंजालको भी ठिकाने ला दिया है।

मुंजाल आया। वही रूप, वही गौरवपूर्ण मुख, और वही चाल। फ़र्क केवल इतना ही था कि आँखे भावहीन और सख्त प्रतीत हो रही थीं। आज्ञाके अधीन होनेपर भी वे अपनी शक्तिकी साक्षी दे रही थीं। नीचा मुख किये; हाथसे हाथको थामें वह खड़ा हो गया।

“ क्यों मेहताजी, अभीके अभी जानेकी क्या आवश्यकता है ? ”

मुंजालने मगरूरीसे कहा, “ मुंजाल आज्ञाके अधीन होना सीख रहा है। ”

रानी ज़रा खुश हुई। बहुत दिनोंके बाद, आज मुंजालपर भी शासन करनेका सौभाग्य उसे प्राप्त हुआ था।

उसने पूछा “ क्यों, यह तजवीज तुम्हे अच्छी नहीं लगी ? ”

“ नौकरके लिए अच्छी और बुरी क्या ? जब आज्ञा हुई, तो उसके अधीन होना ही चाहिए। ”

रानीने ज़रा कृत्रिमतासे हँसते हुए पूछा, “ तब इतने कठोर क्यो हो गये हो ? ”

“ मुझे तिरस्कार उत्पन्न हो गया है। ”

“ किसपर ? ”

“ अपने आपपर। मूर्ख मुंजाल बाल्यकालसे अपनेको विमलशाहके समान समझ रहा था। परन्तु अब मुझे विश्वास हो गया कि मैं उनके पैरकी छोटी अँगुलीके समान भी नहीं हूँ। ”

रानीने अपनी सत्ताका प्रदर्शन करनेके लिए पूछा, “ अच्छा, परन्तु मधुपुर जाकर क्या करोगे ? ”

“ जो दंडनायककी आज्ञा होगी ! ”

“ यह क्या कह रहे हो ? ज़रा ठीकसे कहो न। ”

“ क्या कहूँ ? सेवकोंकी भाषा मेरी जिह्वापर चढ़ना इतना सहज नहीं है।

फिर भी यथाशक्ति चढ़ा रहा हूँ।"

"इस समय तुम बिल्कुल निकम्मे हो गये हो।"

मुंजाल मौन हो गया। रानीको भी सूझा नहीं कि क्या बात की जाय।

मुंजालने शान्तिसे पूछा, "तो अब आज्ञा है?"

रानीने ज़रा चिढ़ कर कहा, "हाँ, पधारिए। मेरा दुर्भाग्य कि ऐसे समयमें भी मेरे पास कोई विश्वास-पात्र नहीं है।"

मुंजालने एक भयंकर तीक्ष्ण सार्थक दृष्टि डाली। वह कुछ अधिक सीधा खड़ा हो गया और धीमे स्वरमें बोला, "देवी, आपको विश्वास-पात्र मनुष्योंको रखना नहीं आता। अच्छा, एक बात कहूँ। यदि रातको इस महलमें रहेंगी, तो षड्यन्त्रकारी लोग कुमार जयदेवको उड़ा ले जायँगे।"

रानी इन शब्दोंका अर्थ समझे और इनकी भयंकरताको अवधारण करे, इसके पहले ही मुंजाल वहाँसे चला गया। घबराई हुई रानीको सूझा नहीं कि अब क्या किया जाय। सिरको हाथोंसे थामकर वह बैठ गई। इस समय मुंजाल उपस्थित होता, तो मर्यादा त्याग कर वह रो पड़ती। इस समय अकेली सलाह बगैर उलझनमें पड़ी हुई विचारोंके चक्करमें पड़ गई। झूलेपरसे उठकर उसने खिड़की खोली; कुछ देर वहाँ खड़ी रही। कुछ सैनिकोंके साथ उसने मुंजालको जाते हुए देखा। यह देखकर उसने निःश्वास छोड़ दिया। उसे अपनी बनाई हुई योजना जितनी चाहिए उतनी सहज नहीं मालूम हुई।

तुरन्त उसे एक विचार आया, "अरे हाँ, 'उसे' तो कहीं दूसरी जगह छिपा देना चाहिए। संभव है, मुंजाल भी कहीं विरुद्ध हो जाय। वही तो मेरा ब्रह्मास्त्र है। और अब तो उसकी दूनी ज़रूरत होगी।" सोचकर मीनलदेवी भीतरके कमरेमें चली गई।

मुंजाल तेज़ीसे मोंढेरी दरवाज़ेकी ओर चला। मध्याह्न होनेमें अभी दो-तीन घड़ीकी देर थी। बाज़ारके लोगोंकी 'जयगोपाल' स्वीकार करता हुआ, वह चोहट्टेमेंसे जा रहा था। उसके जानेके निश्चयसे नगरमें भय उत्पन्न हो गया था। जगह जगह लोगोंके टोले खड़े खड़े बातें कर रहे थे और हड़ताल करनेकी सलाह हो रही थी। इसी समय निकटकी एक गलीसे एक दूसरी टुकड़ी निकली। देवप्रसाद और त्रिभुवन भी अपने चार-पाँच आदमियोंके साथ मोंढेरी दरवाज़ेपर जा रहे थे। छोटी-सी गलीमें दो टुकड़ियोंका सामना हो गया, और यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ

कि पहले कौन आगे जाए। प्राचीन कालमे यह प्रश्न ऐसे समय अक्सर उठ खड़ा होता था और मार-काट होकर रक्तपात तक हो जाता था। देवप्रसाद स्वभावका उतावला था, और ऐसी बातोंमे बड़ा हठीला था। उसने मूँछोपर बल दिया, तलवारकी मूठपर हाथ रखा और एड़ लगाकर काठियावाड़ी घोड़ीको आगे बढ़ाया। उसके पीछे तुरन्त त्रिभुवन भी आ गया। मुंजाल पीछे घूमा। उसने भी राजपूतोंके इरादेको परख लिया और अपने पीछे आनेवाले सवारसे तलवार माँग ली। दूकानोंपर लोग तमाशा देखनेको जमा हो गये।

"भीमदेवका पौत्र पहले जायगा!" देवप्रसादने मगरूरीसे कहा और मूँछों-पर ताव दिया। मुंजालके सैनिक भिड़नेको तैयार हो गये। मुंजालने शान्तिसे मडलेश्वरकी ओर देखा और कहा, "पाटनमे, पाटनका नगरसेठ ही पहले जाता है।" पल-भर दोनों एक दूसरेकी ओर देखते रहे। ऐसा मालूम हुआ कि वनराज केसरीने गरुड़राजके तेजस्वी नेत्रोकी ओर अपनी विकराल नज़र डाली है। बच-पनके कट्टर शत्रुओंका आज परस्पर सामना हो गया। शत्रुता, द्वेष, दबी हुई भावनाएँ उछलने लगीं। वर्षोंकी न भूली हुई शत्रुता आज ताजी हो गई।

देवप्रसादने म्यानसे तलवार खींच ली, "देखता हूँ, पहले कौन जाता है?"

मुंजालने धीरेसे पूछा, "मण्डलेश्वर, यह समय इस प्रकार कट मरनेका है?" वह वीर था, साथ ही बुद्धिमान् भी था।

देवप्रसाद ज़रा हँस पड़ा और धीरे धीरे बड़बड़ाया, "वणिक!" मुंजालने यह सुन लिया। उसकी आँखोंका तेज अधिक तीक्ष्ण हो गया।

"सोलंकी, मुंजालके साहसको सारा जगत् जानता है। परन्तु इस समय—"

त्रिभुवन बीचमे आ खड़ा हुआ, "पिताजी, इस बातको बाजूपर रखिए कि सोलंकी आगे जायँ या नगरसेठ।—हाँ, साले-बहनोई साथ-साथ जायँगे।" इस भूले हुए सम्बन्धको अचानक इस प्रकार सुनकर दोनों चौंक पड़े। उनके मुखपर ग्लानि छा गई। दोनो पीछे हट गये। तलवारोंसे हाथ हटा लिये और त्रिभुवनकी ओर देखने लगे। दोनोंको उसके मुखपर उसकी माताकी सुन्दर रेखाये दिख गईं। त्रिभुवन दीन मुखसे देखता रहा। साले-बहनोई पिघल गये।

देवप्रसाद निकट आया और धीरे-से बोला, "मुंजाल, तुम्हारे अत्याचारने मेरे सारे जीवनको जलाकर भस्म कर दिया।" उसने दुःखसे सिर हिलाया। देव-प्रसाद भोला था, इस मौकेपर वह शत्रुताको तुरन्त भूल गया।

खेद-पूर्ण स्वरमे मुंजालने कहा, " मंडलेश्वर, संसारमे भूल कौन नहीं करता ? अब देखता हूँ कि मेरे समान हताश कोई नही है ।" मंत्रीका मोह उतर गया था । धीरे धीरे उसके विचारशील मस्तिष्कमें पिछली भूलें स्पष्ट होने लगी थीं । अपने पापोंका प्रायश्चित्त करना उसने आरंभ कर दिया था । दोनोंके नेत्रोंके आगे एक ही रम्य मूर्ति खडी हो गई ।

देवप्रसादने अपनी घोडी ज़रा आगे बढ़ा ली । मुंजाल भी साथ हो गया। सबसे अलग ज़रा दूर जाकर मंडलेश्वरने धीरे-से कहा, " तब क्या हंसा सचमुच ही गई ? "

मुंजालका मुख अधिक फीका हो गया । क्षण-भरके लिए उसके होठ दुःखसे कॉप उठे । साहसी मुंजालकी ऑखोमें ऑसू आ गये, " एक समय मैंने तुमसे हंसाको ले लिया था, आज उसे फिर लौटाता हूँ,—वह जीवित है । "

मंडलेश्वरने आतुरतासे पूछा " कहॉ है ? " और उसका हृदय धड़क उठा ।

" राजमहलमें, ईशान कोणकी ओर पीछेकी खिडकी है न, उसके सामनेके मंजिलपर । "

" ऐं ! तब मैं वहॉ हो आऊँ ? " देवप्रसादने दृढतासे कहा ।

" तुम्हें मालूम है कि पाटनके दरवाज़े दोपहरको बन्द होते हैं ? "

" हॉ, परन्तु अभी दो घडी बाकी हैं, इतनेमें तो मैं आ जाऊँगा । "

" ठीक, तब मैं तो जाता हूँ । "

" मुंजाल, जिस प्रकार आज हम मिले, उस प्रकार कहीं पहले ही मिल गये होते तो ? "

" गुजरातके भाग्य पलट जाते । परन्तु विधिका लेख ! और क्या कहा जाय ! फिर भी अभी साथ मिलकर बहुत-कुछ किया जा सकता है । "

" हॉ, मुंजाल, मैं तैयार हूँ । तुम्हारी और मेरी दोनोंकी ग्रह-दशा इस समय ठीक नहीं है; पर कहो, कहॉ मिला जाय ? "

" मेरलसे दो कोस दूर बाघेश्वरी माताके मंदिरमें कल सूर्योदयके समय मिलो, तब और बातें होंगी । "

" तब कल सवेरे तकके लिए राम राम ! " देवप्रसादने ज़ोरसे कहा । उसे भान नहीं रहा कि आस-पासके लोग भी सुन रहे हैं ।

मुंजाल वहॉसे तेजीसे अपने सैनिकोंके साथ नगरसे बाहर चला गया ।

अभीतक विनयी त्रिभुवन दूर खड़ा हुआ था। मंडलेश्वर उसकी ओर घूमा।—"बेटा, अभी मध्याह्नको कुछ विलंब है, मैं जरा राजमहलकी ओर हो आऊँ।"

त्रिभुवन कुछ समझा। "पिताजी, कहिए तो मैं भी साथ चलूँ। संभव है, आवश्यकता पड़ जाय।"

"नहीं बेटा, मैं अभी आता हूँ।" कहकर देवप्रसादने घोड़ीको एड़ लगा दी। जब रक्त खौल उठता था, तब उसका साहस सब कुछ करनेको समर्थ हो जाता था। पानीदार घोड़ी भी अपने स्वामीके विचारको समझ गई। वह वायुवेगसे राजमहल जा पहुँची। वहाँ सब ओर श्मशानकी भाँति शून्य मालूम हो रहा था। राजमहलके ईशान कोणकी खिड़की बिलकुल ऊजड़ भागमें थी। देवप्रसादने जंजीर खटखटाई; परन्तु किसीने उत्तर नहीं दिया। अधीर होकर उसने और ज़ोरसे खटखटाई। कवचसे सज्जित एक पहरेदारने आधी खिड़की खोल दी। उसने सिरको खिड़कीसे बाहर निकालते हुए पूछा, "कौन है?"

"क्यों यह राजमहल है, या कैदखाना? खोल।"

"इधरसे किसीको आनेकी आज्ञा नहीं है। क्षमा कीजिए मंडलेश्वर, आना चाहे, तो बड़े दरवाज़ेसे होकर आइए।" कहकर पहरेदार खिड़की बन्द करने लगा। परन्तु मंडलेश्वरको समझाना सहज नहीं था। ज्यों ही खिड़की आधी बन्द हुई कि उसने ज़ोरसे लात मारी। समस्त गुजरातके महाबाहुके अद्वितीय बलने खिड़की खोल डाली। पीछेका पहरेदार धड़ाम से गिर पड़ा और मंडलेश्वर खिड़कीमेंसे घुस गया। वह अन्दरके महलकी ओर दौड़ा। उसे याद आया कि परसों रातको इसी जगह उसने हंसाको अन्तर्धान होते देखा था। क्षण-भरमें वह सीढियोंपर चढ़ गया। पीछे धूल झाड़ता हुआ पहरेदार भी दौड़ आया।

"प्रभु! अन्नदाता! महारानीका सख्त हुकुम—"

"फिर स्वाद चखना चाहते हो?" कहकर देवप्रसादने तरवार खींच ली। वह डरके मारे चुप खड़ा रहा। देवप्रसाद तेज़ीसे सँकरी सीढ़ियाँ चढ़ गया। उसकी भवें चढी हुई थीं, आँखें चमक रही थीं।

"हंसा! हंसा!"—शान्त कमरेसे कोई उत्तर नहीं मिला। कमरेमें एक ही द्वार था, देवप्रसादने उसे हिलाया। किसीने भीतरसे बन्द कर रखा था। देवप्रसादने उसे खटखटाया; परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। तब उसने एक लात

मारी। तीसरी लातसे ज़ंजीर टूट गई और द्वार खुल गया। वह भीतर घुसा। भीतर कोई नहीं था। इधर-उधर दो-एक सफेद वस्त्र और एक माला भूमिपर पड़ी थी। ऐसा ज्ञात हुआ जैसे कोई स्त्री इसमें रहती हो। 'हंसा! हंसा!' उस निर्जन शान्तिमेंसे उठी हुई प्रतिध्वनिने ही केवल उत्तर दिया। वह तेजीसे भीतर-की ओर दौड़ा। सब ओर निर्जनता थी। दो-तीन कमरोंको पार किया; परन्तु किसीका नाम-निशान भी उसे दिखाई नहीं पड़ा! देवप्रसादकी आतुरताका पार न रह गया, क्योंकि उधर क्षण क्षणमें मध्याह्न पास आ रहा था। "हंसा! हंसा" उसने ज़ोरसे पुकारा।

"कौन है?" एक परिचित स्वरने उत्तर दिया। देवप्रसाद चौंककर खड़ा हो गया। दूसरे ही क्षण मीनलदेवी आ खड़ी हुई! मंडलेश्वर लज्जित हो गया!

रानीने ज़रा कठोरतासे पूछा, "कौन, मंडलेश्वर? क्यों क्या हुआ है कि इतने आवेशसे दौड़े आये हो?"

"काकीजी, मेरी हंसा मुझे दे दो।" मंडलेश्वरका श्वास फूल आया था, उसने किसी प्रकार गिड़गिड़ाते हुए कहा।

"अभी तुम्हारा पागलपन दूर नहीं हुआ?"

"पागलपन नहीं है। काकीजी, मुझे क्यों तड़पा, तड़पा कर मार रही हो? मेरी प्रियतमा मुझे दे दो। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। तुम्हें जो चाहिए ले लो, मेरी प्राणेश्वरी मुझे लौट दो।"

"मीनलने शान्तिसे पूछा, "कहीं मृतक भी जीवित हुए हैं? और क्या देनेको तैयार हो?".

"क्या चाहिए?"

मीनलने शान्तिसे कहा, "देहस्थलीका मंडल और मेरलके पास पड़ी हुई सेना, दोनों मेरे अधीन कर दो और अभी महलमें नज़रबन्द रहो।"

देवप्रसादने शर्तें सुनीं। उसके खौलते हुए मस्तिष्कमें अधिक आग लग गई। हंसाको प्राप्त करनेकी उसे प्रबल इच्छा थी। बड़ी कठिनतासे शान्त होकर उसने कहा, "काकीजी, तुम्हारी हठ अभीतक वही बनी है? अच्छा, लो, मंडल देता हूँ, मुझे दंडनायक बना दो। तुम्हारी पहलेवाली शर्तें मुझे स्वीकार है।"

"वह वक्त चला गया। अब अगर स्त्री चाहते हो, तो यही रास्ता है।"

"तब अपनी और हंसाकी प्रतिष्ठा खोनेकी अपेक्षा, यह वियोग ही मुझे अधिक

प्रिय है।" मंडलेश्वरने होठ दबाकर, भयंकर नेत्रोंका प्रकाश मीनलदेवीपर स्थिर करके कहा, "काकी! राक्षसी काकी! अब तुम मेरा भी हाथ देखना। अभी तक मै पाटनके लिए मरनेको तैयार था। अब देखना कि पाटनका दुर्ग कबतक खड़ा रहता है?"

मीनलदेवी चुपचाप खड़ी रही। इतनेमे महलका चौघड़िया बजने लगा। मंडलेश्वरको ध्यान हुआ कि मध्याह्नका समय होने आया है और मध्याह्न होतें ही वह बन्दी हो जायगा।

"काकीजी, अब जाता हूँ। फिर मिलूँगा, यमराजके दरबारमे।" कहकर मंडलेश्वर लौट पड़ा और तेजीसे पिछली सीढ़ियाँ उतरकर राजमहलमे जा निकला। मध्याह्नका चौघड़िया बज रहा था। बिना कुछ उलटा-सीधा देखे देवप्रसादने अपनी घोड़ी एड़ लगाकर दौड़ा दी।

१४—बाज़ी पलटी

मीनलदेवीने मुंजालकी शिक्षाको त्यागकर यतिका दिखाया हुआ मार्ग ग्रहण किया, इसके अनेक कारण थे। एक तो मीनलदेवी प्रतीक्षा कर करके हार गई थी। उसे ज्ञान नहीं था कि राजसत्ताको एकदम जमाना कितना कठिन है। इसके सिवा एक दूसरा भी कारण था जिसे स्पष्ट शब्दोंमें वह स्वयं अपने आपसे भी कहते लज्जित होती। बाल्य-कालसे ही उसे मुंजालके प्रति बहुत स्नेह और सम्मान था। फिर भी उसकी बुद्धिमत्ता, उसकी राजनीति-पटुता, उसकी लोकप्रियता उसे अखरती थी। अभी तक राज्यमे मीनलका अस्तित्व मुंजालके कारण था, इस परतंत्रतासे मुक्त होकर, अपनी होशियारीसे जो काम मुंजालने नहीं किया, कुछ ही दिनोंमे उसे कर दिखलाने और मुंजालपर अपनी महत्ताकी छाप बिठा देनेकी हवस,—यह भी एक कारण था और यतिकी शिक्षा और धार्मिक जोश उसे इतने अच्छे लगे कि उसकी सहायतासे अपना मतलब पूरा करनेके लिए यह मार्ग ग्रहण करना पड़ा।

मुंजाल इस प्रकार मधुपुर भेजे जानेसे खीज जायगा, सामना करेगा और तब वह रिझायगी, मनायेगी,—इस तरहकी भी कुछ आशाएँ उसके हृदयमे थीं।

" हाँ अवश्य; खबर आती ही होगी।"

" क्यों, आपको भय है कि भाग जायगा? इस तरह डरते डरते क्यों कह रहे हैं?"

" नहीं, नहीं, डर काहेका, पर मंडलेश्वर बहुत होशियार है।"

जरा अकुलाकर मीनलने कहा, " यह तो हुआ। आप कुछ कहना चाहते हैं? क्या कहना है, कह डालिए।"

दंडनायकने जरा क्षोभसे कहा, " नहीं नहीं, कोई विशेष बात नहीं है।"

मीनलदेवीने ज़रा भवें तानकर कहा, " जो विशेष न हो, वह भी कहिए"

" जी हाँ, जी हाँ, और कुछ नहीं। केवल यही कि मुंजाल मेहता और देवप्रसाद मोतीचौकमें मिले थे। और तो कुछ नहीं; परन्तु महारानीजी, वहाँ झगडा खड़ा हो गया कि पहले कौन जाय!"

मीनलदेवीने चिन्तातुर होकर पूछा, " फिर क्या हुआ?"

" फिर झगड़ा शान्त हो गया और कल सबेरे मिलनेकी कुछ मसलहत हुई है।"

मीनलदेवी कुछ घबड़ाई और उसकी चिन्ता बढ़ गई।

रानीने अधीरतासे कहा, " तो अबतक कहते क्यों न थे? कहाँ मिलनेवाले हैं? क्या बातचीत हुई? फिर लड़े या नहीं?"

" लड़े तो बिल्कुल नहीं, मेल हो गया। और कुछ नहीं हुआ। फिर तुरन्त ही मंडलेश्वर यहाँ आये।

रानी समझ गई कि मुंजालने ही कहा होगा और इसीसे देवप्रसाद यहाँ आया होगा। वह जल्दी जल्दी चला गया; अतएव उसे यह भी ज्ञात होगा कि दोपहरको दरवाज़े बन्द हो जायँगे। ये सब मुंजालके ही कारस्तान हैं।

" फिर आपने क्या किया?"

" और क्या करता? तीरन्दाज़ोंसे कह आया हूँ कि देवप्रसादको किसी भी प्रकार बाहर न जाने दिया जाय। मंडलेश्वर क्या करता है, इसका समाचार अभी आया जाता है।"

" यह तो ठीक है, वह जायगा कहाँ? परन्तु क्या हमें यहाँ और किसी प्रकारका भय नहीं है?"

" और किसी प्रकारका भय कैसा? महारानीजी, हमारे विश्वस्त सैनिक राजमहलमें आठो पहर पहरा दे रहे हैं।"

" मैंने सुना है कि कोई षड्यन्त्र रचा जा रहा है।"

कुछ घबराते हुए शान्तिचन्द्रने कहा, "नहीं, नहीं, यह किसका सामर्थ्य है!"

बाहरसे एक आवाज आई, "महारानीजी, मैं आऊँ?"

"कौन! वैद्यजी, आइए। कहिए, इस समय कैसे पधारे? इतने हॉफते हुए!"

वैद्यजी आये और दुपट्टेसे मुखका पसीना पोंछने लगे। "महारानीजी, मेरे जामाता वाचस्पति एक बहुत ही आवश्यक समाचार लाये हैं। माननेको जी तो नहीं चाहता; पर आपसे कहनेके लिए आया हूँ।" अपने मोटे शरीरको स्वस्थ करते हुए लीलाधर वैद्यने कहा। ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे इस शान्त ब्राह्मणने कोई बहुत अनोखी बात सुनी है। "सेठजीके रहते कहनेमें कोई हर्ज तो नहीं है?"

"नहीं, कहिए।"

"महारानीजी, कुछ मंडलेश्वर कुमार जयदेवको कर्णावती उठा ले जाना चाहते हैं।"

सेठ शान्तिचन्द्रने घबराकर कहा, "ऐं!"

"हाँ, मैं जानती हूँ।" रानीने शान्तिपूर्वक कहा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस समय साहस छोड़नेमें सार नहीं है। स्वस्थतामें ही सत्ता है।

शान्तिचन्द्रने पूछा, "महारानीजी, आप भी जानती हैं?"

"हाँ, और दंडनायक होकर आप नहीं जानते? परन्तु किस प्रकार, कहाँ, यह भी कोई जानता है?"

लीलाधरने कहा, "नहीं महारानीजी, यह कुछ खबर नहीं। इस समय मुंजाल मेहता होते, तो सब खबर लग जाती।"

रानीको ज़रा क्रोध आ गया। जो उसके हृदयमें था, वही लीलाधरने कह दिया। अपने हृदयकी बात कोई जान जाय, यह किसे अच्छा लगेगा?

"तो सब लोग यहाँ क्या करते रहते हैं?"

"महारानीजी, मैं बूढ़ा हूँ, दवाइयाँ कूटते-पीसते मेरा सारा जीवन बीता है; अतएव मैं क्या जानूँ? परन्तु पट्टनी लोग इतना अवश्य कहते हैं कि मुंजाल मेहताको यहाँसे अलग कर दिया, यह ठीक नहीं हुआ।"

"पट्टनियोंसे कहो कि तुम अपना काम किये जाओ, मुझे क्या करना चाहिए, इसका मुझे ज्ञान है।"

"इसे कौन 'नहीं' कहता है; परन्तु महारानीजी, कोई भयंकर परिस्थिति

उपस्थित हो जायगी, तो ?"

रानीने गर्वसे कहा, "हो जायगी, तो तुम्हारी रानीको तुम्हारी चिन्ता है।"

"महारानीजी, तीन पीढ़ियोंसे सोलकियोंका सेवक हूँ; इसलिए मेरे मुखसे कहीं कुछ अनुचित निकल जाय, तो क्षमा करें। परन्तु इन सब बातोंका परिणाम अच्छा न होगा।" बड़ा साहस करके वैद्यने कहा और वह पसीना पोछने लगा।

"बहुत ठीक! ज़रा देखते तो जाओ, सब अच्छा होगा।"

"महारानीजी, आनन्दसूरि पधारे हैं।" दासीने कहा।

रानीने आतुरतासे कहा, "भेज दे, उन्हींकी आवश्यकता है।"

बख्तर पहने हुए एक आदमी राजपूत वेषमें अन्दर आया। उसका मुख साफेसे इस प्रकार बँधा था कि वह एकाएक पहचाना नहीं गया।

रानीने आश्चर्यसे पूछा, "कौन? आनन्दसूरिजी!"

मुखपरसे साफेका छोर अलग करते हुए आनन्दसूरिने कहा, "जी हाँ माताजी, मैं ही हूँ। कुछ ऐसी ही आवश्यकता आ पड़ी कि मुझे वेष बदलना पड़ा।"

शान्तिचन्द्र और लीलाधर वैद्य यतिको इस वेषमें देखकर कुछ चकित हुए।

यतिने शीघ्रतासे कहना शुरू किया, "परन्तु माताजी, हमारी घड़ी आ पहुँची।"

तीनों बोल उठे, "क्यों, क्या हुआ?"

"मंडलेश्वर जब यहाँ राजमहलमें आये तो तुरन्त मैंने सुना कि उन्होंने और मुंजालने कुछ तजवीज की है; इसलिए मैं यह वेष पहनकर तैयार हुआ और ज्यों ही मंडलेश्वर नीचे उतरे कि मैं उनके पीछे हो गया। उन्होंने घोड़ीको दौड़ा दिया। पीछे मैंने भी अपना घोड़ा लगा दिया। मोंढेरी दरवाजेपर जाते हुए, पहले चाँपानेरी दरवाज़ा आया उसे बंद देखकर मंडलेश्वर चौंक पड़े और मोंढेरी दरवाज़ेपर जानेका विचार बदल दिया। आगे एक टीला-सा था, उसपर पहुँचे और वहाँसे घोड़ीको कुदाकर नगरकोटको लाँघ गये!"

तीनों एक साथ बोल उठे, "क्या! क्या! क्या!"

"क्या, क्या? हम लोग बातचीत करते रहे और मंडलेश्वर निकल गये।"

चारों जनोंने एक दूसरेकी ओर देखा।

रानीने यतिकी ओर देखते हुए कहा, "अब वे और मुंजाल अवश्य मिलेंगे।"

वैद्यने कहा, "मैंने न कहा था महारानीजी!"

"अब कहे हुएकी याद दिलानेकी आवश्यकता नहीं है।"

रानी—अब क्या किया जाय ? कल वे दोनों मिल जायँ, और मेरल और मधुपुरकी सेना एक हो जाय, तो फिर मेरे !

शांतिचंद्र—और त्रिभुवनपालका क्या हुआ ?

यति—वह तो बहुत करके पाटनमें ही है।

शान्तिचन्द्रने कहा—तब उसे हाथमें लेना चाहिए।

सबको ऐसा प्रतीत हुआ कि 'यह उपदेश ठीक था।'

रानी—हाँ, परन्तु किसी भी प्रकार वे दोनों मिलने न पाएँ।

शांतिचन्द्र—यह कैसे हो सकता है ?

यति—एक उपाय है। यदि आप और जयदेव मधुपुर जाएँ, तो मुंजाल रुक जाय।

शान्तिचन्द्र—परन्तु महारानीजीको भरोसा कैसे हो ?

यति—मैं हूँ न, डर क्या है ? चन्द्रावतीकी सेना मेरे साथ है। और फिर अभी तीन दिन हुए, मैंने चन्द्रावती पत्र लिखा है। दूसरी सेना भी तैयार हो रही है, वह हमसे आ मिलेगी।

वैद्य—यह ठीक है; पर पट्टनी जान जायँ तो ? नगरमें तो इस समय भी घबराहट मची हुई है।

शान्ति—यह तो तभी बन सकता है, जब हम आज सन्ध्या होनेके बाद ही रवाना हो जायँ।

रानी—आनन्दसूरिजी, आपकी बात ठीक है। इस समय हमने दो आदमियोंको हाथसे खो दिया। ये दोनों यदि मिल जायँ, तो हमारा सारा खेल खत्म हो जाय; और इसके लिए मार्ग भी एक ही है जो यतिजीने बताया। इससे एक और भी लाभ है।

शान्तिचन्द्र—क्या ?

जैसा कि वैद्यराजने कहा है, यदि वह षड्यन्त्र हो, तो उससे भी बचा जा सकता है। परन्तु पाटनका क्या होगा ?

यति—पाटनमें सेठ शान्तिचन्द्र तो हैं ?

वैद्य—महारानीजी, सावधान रहिए। पट्टनियोंपर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता।

रानीने अपनी विद्युत्-प्रवाही आँखोंसे कहा, " पट्टनी क्या करेंगे ? वैद्यजी,

ऐसा लगता है कि तुम्हें लोगोंका बड़ा भय है ! "

" होगा, परन्तु समझ लीजिए, यदि मंडलेश्वर मंरलकी सेनाको लेकर यहाँ आ पहुँचे तो ? "

यति—तो क्या ? शान्तिचन्द्रजी क्या दो दिन भी पाटनकी रक्षा नहीं कर सकते ?

शान्तिचन्द्र—यह आप भूल रहे हैं यतिजी, यदि सोलंकी चढ आए, तो पट्टनी दो घड़ी भी दरवाज़े बन्द नही रहने देंगे।

" अच्छा, मैं विचार करूँगी। शान्तु मेहता, आप जाकर त्रिभुवनपालको समझाकर ले आइए। "

" जो आज्ञा। "

" वैद्यजी, आप घर न जाइए। संभव है, आपकी भी आवश्यकता पड़ जाय।"

वैद्य—कोई हर्ज नहीं, मै बैठा हूँ।

तीनों व्यक्ति विदा हो गये। रानी अकेली रह गई। उसका मस्तिष्क उलझनमे पड़ गया था। ' क्षण-भरमे चारों ओरसे उपद्रव उठ खड़ा हुआ। इस समय मुंजाल होता, तो कितना अच्छा था ? ' दूसरे ही क्षण विचार आया कि ' क्या मुंजालकी सहायताके बिना काम नहीं चल सकता ?' हथेलीपर सिर टेककर बहुत देरतक मीनलदेवीने विचार किया। अभी तक शान्तिसे सब कुछ काम चल रहा था। चक्रवर्ती बननेके लिए उसीने होली सुलगाई थी। ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे होलीकी आग उसके अपने ही घरमें आ पहुँची है। कहाँ जाए ? किससे पूछे ? धीरे धीरे विचारोंकी उलझनमेसे कारण स्पष्ट हो गया। किसी प्रकार मंडलेश्वरको दो-तीन दिन शान्त रहना चाहिए और किसी प्रकार उसका पाटनकी ओर आना या मुंजालसे मिलना रोकना चाहिए। क्या किया जाय ? अचानक इस प्रकार ध्यान आ गया, जैसे अन्धकारमें बिजली चमक पडी हो, घनघोर घटाओंमे सूर्यकी प्रथम किरणने प्रवेश किया हो। मीनलदेवीके नेत्र चमक उठे, होठ दब गये, मुखपर एक भयंकर क्रूर हास्य खेलने लगा।

" हॉ, मैं अपने ब्रह्मास्त्रको तो भूल ही गई। " कहकर मीनल उठी और भीतर गई। उसके पूजा करनेके कमरेके पीछेकी ओर एक कमरा था। उसके बन्द द्वारको ज़रा खटखटाया। भीतरसे कोई आता हुआ ज्ञात हुआ। उसने कुंडी खोली, मीनलदेवी भीतर घुसा।

१५—शिकारी और शिकार

जिसने कुंडी खोली वह कोई तीस वर्षकी स्त्री थी। उसके वस्त्र सफ़ेद थे। उसका मुख बिल्कुल फीका और शुष्क हो गया था। उसकी बड़ी बड़ी आँखें स्थिर और भावहीन दिखलाई पड रही थीं। वह बिल्कुल शव-सी प्रतीत हो रही थी। फिर भी सफ़ेद वस्त्रोंमे अत्यन्त क्षीणताके कारण बाहरसे दिखती हुई हड्डियोंमें और मुर्देके जैसी भावहीनतामे अद्भुत लालित्य दिखलाई पड़ रहा था। चलनेमे, आँखोंके आकारमे, हाथोंके हिलनेमें कुछ ऐसी अद्भुत छटा और काव्यमयता प्रतीत होती थी कि देखकर आँखोंको आह्लाद होता था। देखनेवालेको ऐसा भास होता था, जैसे यह मानवी छवि दैवी आकाश तत्त्वसे बनी है। यह सन्देह हो जाता था कि यह सजीव है, या प्रेतलोकमें भूलसे जाकर लौट आई कोई देवा-गना है। और तुरन्त यह विचार सामने खड़ा हो जाता कि यदि इस रमणीमे क्षीणता और भावहीनता न होती, तो यह रमणी कैसी लगती? परन्तु दैवकी अकृपासे बहुत ही कम लोग इसे देख पाते।

मीनलदेवीने जरा मधुरतासे हँसते हुए कहा, "क्यों, हंसा?"

हंसाके बडे बड़े नेत्र भावहीन स्थिरतासे मीनलकी ओर देखने लगे। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह पगली हो।

"बोलती क्यो नहीं, क्या मुझपर बहुत क्रोधित है?"

"मेरी क्या आवश्यकता पड़ गई।" यह स्वर किसी समय मधुर रहा होगा; परन्तु इस समय, हमेशा चुप रहनेकी आदतसे कारण, जरा कठिनाईसे बाहर आया।

"आवश्यकता! क्या आवश्यकता होनेपर ही आती?"

"नहीं तो किसलिए कोई मेरे पास आयेगा?" ज़रा कठोरतासे हँसते हुए हंसाने कहा, "कितने वर्ष बीत गये, कभी किसीने मेरी ओर देखा है?"

"हंसा, तुम्हें एक बधाई देने आई हूँ। अब तुम छोड़ दी जाओगी।"

हंसाने तिरस्कारसे कहा, "मेरे हाथों अपना कोई स्वार्थ सिद्ध करना होगा।"

"मुझे तुम इतनी स्वार्थी समझती हो! यह तुम्हारी भूल है।"

"स्वार्थी! क्यो मुझसे कुछ कहलवाती हो? कहनेमें सार नहीं है। परन्तु तुम आती हो, तो किसी दिन मेरे भाईको भी तो साथ ले आती!"

मीनलदेवीने ज़रा कड़वेपनसे कहा, "तुम्हारे भाई चले गये। वे भी मुझसे

रूठ गये।"

हंसाके भावहीन मुखपर भी कुछ अधिक कठोरता दिख पड़ी, "यह कौन नई बात है? मैं पहलेसे ही जानती थी। जबसे तुम आई, मेरा सगा माँ-जना भाई मुंजाल, जो मुझे पल-भरके लिए भी दृष्टिसे दूर नहीं करता था, मुझे यहाँ सड़ते छोड़कर चला गया। तुमने उसे छीन लिया। परन्तु तुम्हारे स्वार्थोंके आगे वह भी हार गया होगा।"

"तुम मुझे बहुत ख़राब समझती हो! अच्छा। मैंने तो उल्टा तुम्हें तुम्हारे भाईसे लेकर मोक्षके मार्गपर लगा दिया, और तुम यह कहती हो?"

हंसा इस प्रकार बोली, जैसे थकी जाती हो। "कैसा मोक्ष? किसका मोक्ष? बरसों-बरस इस प्रकार तड़पते, अकुलाते और कोई रास्ता न होनेके कारण ही प्रभु जिनराजकी भक्ति करनेसे मुझे मोक्ष मिलेगा? एकान्तमे विचार करनेका मुझे बहुत समय मिला है। मीनलदेवी, तुम्हारे स्वार्थके ही कारण आज मैं यहाँ पड़ी सड़ रही हूँ। परमात्मा मौत भी नहीं देता कि छूट जाऊँ।" हंसाके नेत्रोंमें आँसू लानेकी शक्ति भी नहीं प्रतीत होती थी।

"हंसा, यह सब तुम क्या कह रही हो? अभी तो, तुम जैसी परमार्थ-परायणा स्त्रीको न जाने क्या क्या करना है!"

"परमार्थपरायणा! किसने कहा?"

"मैं कहती हूँ।"

हंसा फिर कठोरतासे-कृत्रिमतासे हँसी।

"हम सबकी अपेक्षा तुममे दैवी अंश अधिक है।" मीनलदेवीने मीठे ढंगसे कहा और स्नेहसे हंसाके हाथपर अपना हाथ रख दिया।

हंसा इस प्रकार चौंक पड़ी, जैसे अग्नि-स्पर्श हो गया हो, और अलग जाकर खड़ी हो गई। "रानी, यह खुशामद क्यो कर रही हो? अपना कोई काम सिद्ध करनेके लिए क्यों मेरी व्यर्थ प्रशंसा कर रही हो?"

"व्यर्थ प्रशंसा कर रही हूँ?" मीनलने इस तरह बनकर कहा जैसे उसपर झूठा दोषारोपण किया गया हो। उसका मस्तिष्क इस निराश स्त्रीको वशमें करनेके उपाय सोच रहा था।

"तब और क्या? मैं दैवी अंशकी थी इसीलिए मुझे मेरे भाईने पन्द्रह वर्ष तक जीते जलाया? मुझमे दैवी अंश है; इसीलिए आज पन्द्रह वर्षोंका समय

बीत गया; परन्तु अमृत-भरे स्नेहकी एक बूँद भी प्राप्त करके हृदयको शीतल नहीं कर सकी ?" हंसाने चोट करनेवाली आवाजमें कहना शुरू किया। उसकी आँखोमें तेज आने लगा। खौलते हुए भावोंके वेगसे उसके होठ और हाथ थर थर काँपने लगे।

"इस तरह कलपनेकी क्या जरूरत है ? ज़रा धीरज रखो।" मीनलदेवीने इस प्रकार कहा जैसे आश्वासन दे रही हो।

"धीरज ! धीरज ! कैसी क्रूरतासे कह रही हो ! जरा भी लज्जा नहीं आती ? तुम स्वतंत्र हो, पति था, लड़का है, मेरा भाई जैसा तुम्हारा दास है। तुमने कितना धीरज रखा ? धीरज ! धीरज ! पन्द्रह वर्षकी कोमल अवस्थामे प्रभुके समान पतिको तुमने खोया होता, फूलके समान सुकुमार लाड़ले पुत्रको तड़पते हुए तुम्हारी गोदसे किसीने छीन लिया होता, दिनोंके बाद दिन अकेले, विना किसीके साहस बँधाये, हृदयको चीर डालनेवाला रुदन करते हुए विताये होते, तो तुम्हें खबर पड़ती कि धीरज कैसे रखा जाता है ?" हंसाने काँपते हुए स्वरमें एक एक शब्द निकालते हुए कहा।

रानीने होठ चबा लिये। "बहन, गई-गुजरी भूल जाओ।" रानीके शान्त हृदयमें दूसरोंके लिए कोई अधिक भावनाएँ नहीं थीं। "अब तुम्हारी शरणमें आई हूँ।" ज़रा नम्र होकर उसने कहा।

हंसाने फिर तिरस्कार-पूर्ण स्वरमें कहा, "हाँ, कहो। मैं पहलेसे ही जानती हूँ कि किस लिए तुम पुरानी बातोंपर मुझे ले जा रही हो। बोलो, कहो, क्या आज्ञा है ?"

"बहन, जरा तुम शान्त हो जाओ। देखो, राजा चले गये, जयदेव अभी बालक है, और सोलंकियोंका राज्य जानेकी अनीपर है। उसे बनाये रखना अब तुम्हारे हाथ है।"

"मेरे हाथ कैसे ?"

"तुम्हारा भाई रूठकर मधुपुर चला गया है, और देवप्रसाद—"

हंसा चौंक पड़ी। उसने होठ चबा लिये। उसके मुर्दे जैसे सफेद गालोंकी पतली चमड़ीपर जरा लाली आती दिखलाई पड़ी। उसका शरीर अधिक काँपने लगा।

मीनलने चिन्तातुर स्वरमें कहा, "देवप्रसाद मेरलकी सेना लेकर पाटनको ऊजड़ करने आ रहे हैं। कल सवेरे आ जायँगे। इस राज्यका,—गुजरातका फिर क्या होगा ?"

कठोर स्वरमें हंसाने कहा, "आ रहे हैं? तो आने दो। रानी, तुम्हारे दिन अब पूरे हो चुके हैं।"

"तुम भी यह कहती हो? जिस राज्यके नगरसेठकी तुम बहन हो, जिसकी छत्र-छायामें तुम्हारी अनेक पीढ़ियोंने सुख-चैनसे जीवन बिताया, उस राज्यके लिए ऐसा कहती हो?"

"जिस राज्यने मेरे मंडलेश्वरको इतना कष्ट दिया, जिस राज्यने उनकी स्त्रीको क़ैद किया, पुत्रको तड़पा मारा, उस राज्यके लिए इससे अधिक और अच्छा क्या हो सकता है? मैं उनके साथ होऊँ, तो फिर तुम्हें ख़बर पड़े। सौ दिन सासके तो एक दिन बहूका भी आता है।"

"हंसा! बहन! जिसने तुम्हें इतने दिनो तक सड़ने दिया, जिसने तुम्हारी ज़रा भी खोज नहीं की और जो आज अनेक स्त्रियोंके साथ आनन्द-विलास कर रहा है, उसके लिए भी अब तक तुम्हारा यह प्रेम अटल है?"

हंसा गर्वसे कठोर होकर सीधी खड़ी हो गई। उसकी तेज होती हुई बुझी आँखे ज़रा फैल गईं। "रानी, सतीके एक ही स्वामी होता है और वह एक जन्ममें नहीं, चौरासी लाख जन्म लेनेपर भी। तुमने कैसे जाना कि उन्होंने मुझे यहाँ सड़ने दिया? कैसे जाना कि उन्होने खोज नहीं की? और यदि यह सत्य हो, तो भी क्या हुआ? वे स्वामी हैं, मैं उनके चारणोकी रज हूँ।"

"हाँ, परन्तु सेना लेकर वे यहाँ आ रहे हैं।" मीनलदेवीने जब देख लिया कि ऐसी बातोंसे कुछ बनेगा नहीं, तो उसने बातको बदल दिया।

हंसाने उपेक्षासे कहा। "भले आएँ! इसमें मै क्या करूँ?"

"तुम जाओ, और किसी प्रकार उन्हें इधर आनेसे रोको।"

भौंहे भयंकर करके हंसाने पूछा, "क्यों रोकूँ? मुझे क्या पड़ी है? जिसे पड़ी हो, वह भोगे।"

"तुम्हें क्या पड़ी है? हंसा तुम जैसी ही जब यों पूछोगी, तब क्या होगा? राज्यके लिए इतनी सी सेवा न करोगी?"

"अब और क्यों कहलवाना चाहती हो? राज्यने मेरे लिए क्या किया है? पतिके पापसे मुझे उड़ा लिया, बिना अपराध मुझे बन्दी कर रखा, अब मुझसे तुम्हारे राज्यका क्या सम्बन्ध?"

"प्रत्येक मनुष्य यदि कहने लगे, तो राज्यकी क्या दशा हो?"

" जहाँ थोडेसे लोगोंके मौज- शोकके लिए ही राज्य चल रहा हो, वहाँ मुझे आर क्या करना है ?"

" नगरसेठ धनपालकी पुत्रीके मुखसे यह शोभा नहीं देता !"

" तुमने न जाने अपने किस मतलबसे मुझे इस समय खोज निकाला है। यह तुम्हें शोभा देता है ? जाओ, इस समय अपने खुशामदियोंके पास, खिला पिलाकर जिनकी पीठ सहलाई हो, उनके पास। मैं अपने मडलेश्वरकी हूँ, और उनकी इच्छा मेरे लिए ब्रह्मवाक्य है। समझीं ?"

" हसा, तुम इतना काम न करोगी ?" मीनलने दयनीय मुखसे कहा। अन्दर ही अन्दर वह हंसापर जली जा रही थी। उसका ब्रह्मास्त्र इस समय व्यर्थ सिद्ध हो रहा था। " देखो यदि इतना काम कर दोगी, तो कितना आशीर्वाद पाओगी ! पाटनके लोग तुम्हें देवी समझेंगे, तुम्हारी कीर्ति अमर हो जायगी, तुम सारे गुजरातकी माता बन जाओगी।"

" हंसाने कठोरतासे हँसते हुए कहा, " हाः ! हाः ! हाः ! रानी, हंसाने एकान्तमें बहुत-कुछ सीखा है। वह अब तुमसे ठगी जानेवाली नहीं। मेरे मंडले-श्वर यदि यहाँ आवेंगे, तो इसमें लोगोंकी क्या हानि है ? तुम्हारी जगह उन्हें तो एक प्रेम-पूर्ण हृदयका वीर नर मिलेगा, पाटनके लोग पुष्पमालाएँ लेकर उनका स्वागत करनेको पहुँचेंगे। यह कहो कि तुम्हारी सत्ता,—केवल तुम्हारा आनन्द-विलास छूट जायगा।"

रानीने होठ चबा लिये। " तुम्हें पता नहीं कि मैं गुजरातके लिए अपना देश छोड़कर यहाँ आई और महाराजके साथ ब्याही गई ?"

" यह क्यों नहीं कहतीं कि चन्द्रपुरमें किसी साधारण सामन्तसे ब्याही जातीं, उसकी अपेक्षा गुर्जर देशकी स्वामिनी बनकर एकचक्र राज कर रही हो।"

" हसा, तुम बहुत बोल रही हो ?" ज़रा भवें तानकर रानीने कहा। उसे यह बहुत अखर रहा था कि उसे हंसाकी खुशामद करनी पड रही है।

" मुझे किसकी परवाह है ? तुमसे जो हो सका, तुमने कर लिया, तब मैं क्यों न बोलूँ ? मेरे पूर्वजोंकी,—बाप-दादोंकी मेहनतसे यह तुम्हारा राज्य खडा हुआ है। मेरे पतिके बाहुबलसे आज तुम्हारी आन बरत रही है। मेरे भाईकी बुद्धिसे तुम्हारी सत्ता स्थिर है, तब मैं क्यों न बोलूँ ? मुफ़्तमें इन सबकी मेहनतके फल चखनेवाली तुम, उलटे किस मुँहसे मुझसे यह कह रही हो ?"

मीनलकी आँखोंके आगे अँधेरा छा गया। कई ऐसी बातें, जिन्हें कहनेका किसीमें सामर्थ्य नहीं था और जो शायद ही उसके स्वार्थी हृदयमें स्फुरित होतीं, आज हंसाने भयंकर शब्दोंमें स्पष्ट कह दी थीं। उसकी स्वार्थपरता उसकी दृष्टिके सामने खड़ी थी; इस कुटुंबको उपकारके बदलेमें उसने क्या-क्या दुःख दिये थे, इसका ख्याल आया। साथ ही उसे ज्ञात हो गया कि हंसा उसकी बात न मानेगी। दूसरा कोई मार्ग उसे दिखलाई नहीं पड़ा। तब क्या किया जाय? उधर मंडलेश्वर मेरलकी ओर बराबर बढता जा रहा होगा। बड़े प्रयत्नसे उसने इन दुःखके विचारोंको दूर किया। वह इसी ओर दृष्टि लगाये रही कि इस संकटमें कैसे बचा जाय।

" हंसा, अपने मण्डलेश्वरके साथ फिरसे रहनेकी इच्छा भी तुम्हे नहीं होती?" लालच देते हुए रानीने कहा।

" होती है, क्यों न होगी? इस भवमे नहीं तो दूसरे भवमें। परन्तु, इस समय कौन-सा काम निकालनेके लिए तुम मुझे भेज रही हो, यह मेरी समझमे नहीं आता। जबतक मेरी समझमें न आ जायगा, तबतक मैं कुछ भी न करूँगी। तुम्हारी भलमनसाहतके बहुत फल चख चुकी हूँ।" कहते कहते हंसाकी साँस फूल आई। आँखोंमें अँधेरा छा गया। उसने अपने हाथ कनपटीसे लगा लिये। इतना बोलनेसे भी उसके अशक्त शरीरको बड़ा कष्ट हुआ।

इसी समय नीचे राजमहलके पिछले चौकमें एकाएक बड़ा भारी कोलाहल सुन पड़ा। मीनलको वह अपरिचित जान पड़ा। जिस कमरेमें वह खड़ी थी, उसकी सब खिड़कियाँ बन्द थीं। केवल लकड़ीकी दो जालियाँ चौककी ओर पड़ती थीं। मीनल एक जालीके पास गई। नीचे चौकके पास चबूतरेपर जयदेव खुले सिर खड़ा था। उसके हाथसे रुधिर बह रहा था। एक सैनिक उसपर पट्टी बाँधनेकी तैयारी कर रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि जयदेवके हाथपर एक तीरका घाव लगा है। उसकी छोटी-सी तलवार उसके पैरोंके पास पडी हुई थी। सामने चौकमे दानेश्वर कर्णका भव्य सौंदर्य और वीरत्व प्रदर्शित करता हुआ एक नवयुवक हाथमे नंगी तलवार लिये खडा था। उसकी आँखोंमें उन्माद था। उसके सीनेपर सत्ता थी। दस-बारह सैनिक उसकी ओर बढ़नेका प्रयत्न कर रहे थे। अपने अकेले हाथों अभिमन्युकी याद दिलाता हुआ वह सबको भयभीत कर रहा था। रानीने उसे तुरन्त पहचान लिया। हंसाके मुखकी एक एक रेखा उस नवयुवकपर

भली भाँति चित्रित थी। वह त्रिभुवनपाल था।

त्रिभुवनको देखकर रानीकी भवें तन गईं। तुरन्त एक विचार आया। चिंतातुर हृदयमें हर्षके अंकुर फूट आये और इस समयकी भयंकर विडम्बनासे मुक्त होनेको तत्पर हुई उसकी स्वार्थ-बुद्धिने मार्ग खोज लिया। सारी अनुभूतियोंको उसने दबा दिया; राक्षसी हृदयकी शक्ति उसकी सहायताको आ पहुँची। वह हंसाकी ओर लौटी।

१६—तुम कौन हो ?

अब यह देखना चाहिए कि रानीने जो देखा, वह कैसे घटित हुआ।

त्रिभुवनपाल मोंढेरी दरवाज़ेके मार्गपर अपने रिसालेके साथ मंडलेश्वरकी प्रतीक्षामें खड़ा रहा। यह जाननेके लिए वह उत्कंठित हो रहा था कि मंडलेश्वर राजप्रासादमें फिर क्यों गये और मुंजालसे उन्होंने क्या क्या बातचीत की। परन्तु बाल्य-कालसे ही उसे आज्ञा-पालन करनेकी बान-पड़ी हुई थी; अतएव दरवाज़े बन्द होने तक वह वहीं खडा रहा, फिर धीरे धीरे राजप्रासादकी ओर जाने लगा। चौहट्टेमें धमाचौकडी मची हुई थी। दूकानदार लोग एकत्र होकर विचार कर रहे थे कि दूकानें बन्द की जायँ, या नहीं। कई लोग राज्यकी परिस्थितिपर ज़ोर ज़ोरसे वार्तालाप कर रहे थे। त्रिभुवनपालने अपने दो-एक आदमियोंसे पता लगवाया, तो ज्ञात हुआ कि मंडलेश्वर राजमहलसे लौट कर, घोडीको कोट कुदाकर बाहर निकल गये हैं। वह घोडेको दौडाकर तुरन्त वहाँ पहुँचा। वहाँपर दो-चार सौ मनुष्य एकत्र होकर वार्तालाप कर रहे थे और किस स्थानसे देवप्रसादने घोडीको कुदाया था, यह एक दूसरेको दिखा रहे थे। त्रिभुवनको देखकर अधिकांश लोग शान्त हो गये, और, अँगुलीके संकेतसे उसका परिचय देने लगे। त्रिभुवन चाँपानेरी दरवाज़ेपर पहुँचा और दरबानसे उसे खोल देनेको कहा। द्वारपालने इन्कार कर दिया। निराश होकर त्रिभुवनने कोटकी ऊँचाई देखी। अपने घोड़ेकी ओर देखा। और, निश्वास छोडा। पाटनके कोटको उसका पिता ही कुदा सकता था। वहाँसे वेगपूर्वक वह राजप्रासादमें पहुँचा और पिछला रास्ता खुला देख, भीतर जा पहुँचा। पहरेदारोंने उसे रोक दिया।

" मैं महारानीजीसे मिलना चाहता हूँ। मुझे नहीं पहचानते ? मैं मंडलेश्वरका पुत्र त्रिभुवनपाल हूँ। जाओ, मैं खड़ा हूँ। जाकर कोई कह आओ।"

एक पहरेदार मीनलदेवीसे सन्देश कहनेको गया। त्रिभुवन घोड़ेपरसे उतरकर खड़ा हो गया। 'बाहर निकलकर अपने पितासे मिलना चाहिए,' यह एक ही वस्तु इस समय उसकी दृष्टिमें थी। यह कार्य बलसे तो नहीं हो सकता था; अतएव उसने कलसे करनेका निश्चय किया।

आनन्दसूरि नीचे उतरा, " महारानीजी नहीं मिल सकतीं। क्या काम है ?"

" इससे आपको प्रयोजन ? मिलेंगी क्यों नहीं ? मुझे बहुत आवश्यक कार्य है। मैं ठहर नहीं सकता।" त्रिभुवनने उतावले होकर कहा।

" मिलना है, तो ठहरना होगा।" कहकर यति चला गया। अधीरतासे अकुलाता हुआ त्रिभुवन खड़ा रहा। उसे ऊपर जानेकी इच्छा हुई। प्रत्येक क्षण बड़ा मूल्यवान् बीत रहा था।

इसी समय सामनेके चबूतरेपर उसने जयदेवको जाते देखा। त्रिभुवन एकदम उस ओर दौड़ा।

" काकाजी—कुमार जयदेव—महाराज !"

गुजरातका बाल-राजा गौरवके साथ जा रहा था, वह खड़ा हो गया। ज़रा भवें तानकर उसने त्रिभुवनकी ओर देखा।

" काकाजी, मुझे पाटनसे बाहर जानेकी आज्ञा दीजिए। दरवाज़े बन्द हो गये हैं. और महारानीजी किसी काममें हैं, किसीसे मिलती नहीं हैं।"

त्रिभुवनने इतने वर्ष पाटनसे बाहर विताये थे, इसलिए जयदेव त्रिभुवनके संसर्गमें बहुत ही कम आये थे। उसके विषयमें जयदेवको ज्ञान भी बहुत कम था। हाँ, परसों रात्रिके समय बारहटके यहाँ इस लड़केको यह कहते ज़रूर सुना था कि मीनलदेवीकी क्या मक़दूर है ? इसके सिवा उसे पक्का पता नहीं था कि वह कौन है और काका कहनेका साहस क्यों कर रहा है ?

" तुम कौन हो ?" इस उमरमें भी सत्ता-प्रदर्शक स्वरमें जयदेवने पूछा।

" मुझे पहचानते नहीं हैं ? इसे भाग्य-लीलाकी खूबी ही कहना चाहिए। मैं मंडलेश्वरका पुत्र त्रिभुवनपाल हूँ। जयदेव, मुझे अपने पिताजीके साथ जाना है। आज्ञा कर दो कि मुझे दरवाज़ेसे बाहर जाने दें।"

जयदेवने अपनी मातासे तालीम पाई थी; पर मीनलदेवी जितनी साहसी थी,

जयदेव अन्दरसे उतना ही डरपोक था। उसने त्रिभुवनके रूपको और उसकी शौर्य-प्रदर्शक छटाको देखा तो उसके हृदयमें कुछ द्वेष उत्पन्न हो गया। देवप्रसादके प्रति जो विष मीनलके हृदयमे था, वह कुछ इसमें भी आ गया। सामल बारहटके यहाँ कहे हुए शब्द उसे याद आये। वह लाड-प्यारसे उद्दंड हो गया था, लोगोंकी खुशामदने उसे सत्ताका शौकीन बना दिया था।

"तुम परसों कह रहे थे कि मीनलदेवीकी क्या मक़दूर है ! अब चखते जाओ उसका मज़ा।" जयदेवने तिरस्कारसे कहा।

"जयदेव, यह आपको शोभा देता है ! मैं भी भीमदेवका वंशज हूँ और भिक्षा माँग रहा हूँ।" त्रिभुवनने समझानेका प्रयत्न करते हुए कहा।

गुजरातके बाल राजाने मजाक़ करते हुए कहा, 'तुम्हारा बाप तो अपनेको बड़ा भारी बलवान् कहलवाता है और तुम भिक्षा माँगते हो !"

त्रिभुवनने बड़े प्रयत्नसे अपने मिज़ाजको शान्त किया। उसके नेत्र कुछ सख्त हो गये।

"महाराज, बड़ोंकी बात बड़े जानें, मैं केवल पाटनसे बाहर जाना चाहता हूँ।"

अविचारी कुमारने ज़रा हँसते हुए पूछा, "क्यों, क्या बहारवटिया बनना है ?"

"महाराज जयदेव, सोलंकियोंको बहारवटिया बननेमें अभी देर है। मैं प्रार्थना करता हूँ, कारण कि आप राजा हैं और मैं सामन्त। पर ऐसा नहीं समझ लेना कि यहाँ तुम्हारे ताने बर्दाश्त करने आया हूँ।"

"यह प्रार्थना करने आये हो ! अच्छा, ठहरो। माताजी क्या कहेंगी यह पीछे देखा जायगा; कल्याणमल्ल, इसे अभी पकड़ लो।"

त्रिभुवनकी आँखें चमक उठीं। उसका सौन्दर्य ज्वलन्त हो गया। उसने कठोरतासे कहा, "देखता हूँ कि मुझे जीवित पकड़नेका कौन साहस करता है!" और तलवारकी मूठपर हाथ रखा तथा इस प्रतीक्षामें खड़ा हो गया कि कौन आगे बढ़ता है। वह जान-बूझकर शान्त रहा। उसे विश्वास था कि राजाके सामने तलवार खींचनेसे उसका कार्य न होगा।

कल्याणमल्ल कुछ दूरीपर स-सम्मान खड़ा रहा। जो सैनिक थे वे भी आ पहुँचे। भीमदेवके प्रपौत्रको पकड़नेका किसीने साहस नहीं किया।

"अच्छा ! इतनी डींग मार रहे हो ! ठहरो, मैं ही पकड़ता हूँ।" कहकर जयदेवने अपनी तलवार खींच ली। वह अभिमानी था। खुशामदी सामन्तोंके

कथनानुसार वह अपनेको महारथी समझने लगा था। अपने कट्टर शत्रुके पुत्रको अपने हाथों बन्दी करना, उसे बड़ा सन्तोषदायक प्रतीत हुआ। एक पग आगे बढ़कर उसने तलवार तान ली।

"कल्याणमल्ल!" परन्तु मुखसे पूरा शब्द निकलनेके पहले ही ऊपरसे, बिल्कुल अज्ञात रूपसे, एक तीर आया और वह जयदेवके दाहिने हाथमे बिंध गया। किसीने भी अच्छी तरहसे नहीं देख पाया कि यह तीर कहाँसे आया है। सबने पीछेकी ओर देखा। त्रिभुवन भी पीछे देखने लगा। जयदेवके हाथसे तलवार गिर पड़ी। हाथसे रक्तकी धारा बह निकली। राजाका क्रोध बढ़ गया। इधर उधर देखे बिना वह चिल्लाया। "इस हरामखोरको पकड़ते हो या नहीं? पकड़ो, मारो!"

सैनिक खड़े खड़े अभीतक देख रहे थे; पर अब उन्हे भी मीनलदेवीका भय लगा। अपने राजाको उन्होने घायल हो जाने दिया! वे आगे बढ़े। त्रिभुवनने देखा कि बाज़ी पलट गई। उसने तुरन्त तलवार खींच ली, और घिरे हुए सिंहकी भाँति चारों ओर देखने लगा। एक सैनिक जयदेवके हाथपर पट्टी बाँधने लगा।

कल्याणमल्लने त्रिभुवनसे कहा, "भैया, इस समय अधीन हो जाइए। महारानीजीको फिर समझा लिया जायगा।"

"अधीन हो जाऊँ? मल्लराज, सोलंकी अधीन नहीं होते, दूसरोंको पटखनी देते हैं। देखता हूँ मुझे कौन पकड़ने आता है।"

घावसे पीड़ित जयदेव फिर चिल्लाया "पकड़ो! पकड़ो! देख क्या रहे हो?" सैनिक अधिक देर न ठहर सके। वे आगे बढ़े।

इसी समय मीनलने ऊपरसे यह दृश्य देखा और उसे पिछले परिच्छेदमें बतलाई हुई दैवी या राक्षसी प्रेरणा हुई।

"हंसा, यहाँ आओ, कुछ दिखलाऊँ।" रानीके स्वरमें विजयका कम्पन था, "इधर आओ।"

हंसा जालीके पास आ गई। "क्या देखूँ?"

"देखो, देखो, उस लड़केको पहचानती हो? यह नहीं वह, जो हाथमे तलवार लेकर खड़ा है, जिसे सैनिक पकड़नेको बढ़ रहे हैं।"

हंसाने कुछ क्षण देखा। निद्रासे जागी हुई-सी दशामे उसने पूछा, "कौन है? उससे मतलब?" हंसाने उपेक्षासे पूछा।

" क्या, क्या ? तुम नहीं पहचानतीं ?"

" नहीं कौन है वह ? " हंसाने लालच-भरी निगाहसे ताक कर कहा।

" कौन क्या, तुम्हारा लड़का । "

" हैं ! " आँखे फाड़कर पागलोंकी भाँति हंसाने कहा, " मेरा त्रिभुवन ! तुम तो कहती थीं कि वह बचपनमें ही मर गया ? वह घबरा-सी गई, उसकी समझमे कुछ भी नहीं आया।

" नहीं मरा, वह जीवित है। तुम्हारे पतिके साथ था। देखो, वह सैनिकोंके साथ लड़ रहा है। हंसा, अपने पुत्रको जीवित रखना चाहती हो ? अभी वे सैनिक उसे मार डालेंगे। देखो, दो-एक घाव भी लग चुके हैं। अभी मर जायगा। बचाना चाहती हो, तो वचन दो। मंडलेश्वरके पास तुम जाओ और उन्हें पाटनकी ओर आनेसे रोको। सिर्फ़ दो दिन ही रोक रखो। क्यों ? क्या कहती हो ? "

हंसाकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। वह उलझनमें पड़ गई। " मेरा बेटा ! देव जैसा मेरा त्रिभुवन ! पन्द्रह वर्षोंपर मिला और मरता देखनेके लिए ! मीनलदेवी, उसे बचाओ, यहींसे पुकार कर रोक दो। "

रानीने क्रूरतासे कहा, " किसलिए ? पहले वचन दो। समय नहीं है, अभी समाप्त हो जायगा। "

छातीको हाथोंसे दबाते हुए हंसाने कहा। " कैसा सिंहके समान लड़ रहा है ! मेरा त्रिभुवन ! "

" देखो, वह गया तुम्हारा त्रिभुवन। अभी कुछ ही क्षणोमे वह भूमिपर गिर जायगा। देखो, और भी सैनिक आ गये। मान जाओ, वचन दे दो। "

हंसाने पागलोंकी भाँति इधर उधर देखा। उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे, उछलती हुई छातीको उसने हाथोंसे दबा लिया और त्रिभुवनकी ओर देखा। उसका दैवी मुखारविन्द वीरताकी सुनहली किरणोंसे छाता हुआ दिखा। वह सिंहकी भाँति सैनिकोंपर टूटता था और तब सैनिकोंको भी अपने बचावके लिए शस्त्रोंका उपयोग किये बिना निस्तार नहीं था।

" बोलो, कहो, हंसा ! दो-चार क्षण भी अब वह जीवित न रहेगा। "

" राक्षसी ! चाडालिनी ! ले, मेरे प्राण ले ले और मेरे पुत्रको बचा। मेरे वंशको नष्ट करने बैठी है ! "

" वचन दे रही हो ? अपने पतिकी शपथ खाओ। "

हंसा चिल्ला उठी, " हॉ, हॉ, अरेरे ! देखो, बेचारेको हाय ! हाय ! रानी ! उसे बचाओ। "

रानीने वचन ले लिया और दौड़ती हुई अगले कमरेमें आई। वहॉकी खिड़कियॉ खुली हुई थीं, एक खिड़कीसे उसने नीचे देखा और पुकार कर कहा— " कल्याण ! कल्याण ! ठहरो, खड़े रहो, रुक जाओ। " मीनलदेवीकी आवाज गॅूज उठी। उस शोरगुलमें भी वह आवाज़ सुन ली गई। रानीको सबने देखा और वे रुक गये। त्रिभुवन घायल हो गया था, उसकी शक्ति क्षीण होती जा रही थी, ऑखोंमें ॲधेरा आने लगा था, वह केवल जोशसे लड़ रहा था। इसी समय सब रुक गये। सबने ऊपरकी ओर देखा। उसने भी तलवार रोक ली और कुछ क्षणके लिए खड़ा रह गया।

उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उसकी ऑखोंके आगे परदा पड़ गया हो। अचानक एक स्त्री आई, उसने उसे कुछ पहचाना। " मीनल काकी ! " उसने पुकारनेकी चेष्टा की; पर गला सूख गया था।

पीछे दूसरी स्त्री आई। त्रिभुवनने उसे कभी नहीं देखा था, फिर भी वह परिचित-सी प्रतीत हुई। वह इतनी अधिक सूखी हुई क्यों है ? वह जीवित है या मृत ? वह इसपर विचार करने जा रहा था, पर उसे चारों ओरकी भूमि घूमती-सी मालूम हुई। वह स्त्री निकट आई और एकदम त्रिभुवनसे लिपट गई।

त्रिभुवनका जोश उतरने लगा। अंग अंग टूटने लगा। यह स्त्री कौन है ? उसे कुछ शांतिका अनुभव हुआ। इस नई स्त्रीने उसका चुम्बन किया, उसके बाल हटा दिये।

त्रिभुवनको हॅसी आ गई। उसे तो अभी लड़ना है, फिर यह दुलार किसलिए ? इतनेमें एक लड़की आई। यह कौन ? पहचानता है, कहीं देखी है। दूसरी स्त्रीकी ओर वह घूमा। वह उसका हाथ अपने कंधेपर रखकर चला रही थी। त्रिभुवनपाल सोलंकीको स्त्रीकी सहायताकी आवश्यकता पड़े ? त्रिभुवन हॅस पड़ा। यह सब घूम क्यों रहे हैं ? अन्धकार-सा क्यों प्रतीत हो रहा है ? यह स्त्री क्या कह रही है, " मेरे बेटे ! "

त्रिभुवन ज़रा फिर हॅसा। मेरी मॉ तो मर गई थी। मुंजाल मामाने मार डाली थी। " तुम कौन हो ? " त्रिभुवनने पूछनेका प्रयत्न किया।

" मैं—हंसा— " ऐसा कुछ सुनाई पड़ा। त्रिभुवनके मस्तिष्कमें अन्धकार

चढने लगा। इतना अधिक अन्धकार क्यों है ? उसने नई स्त्रीके कन्धेपर हाथ टेक दिये। उसे ऐसा मालूम हुआ कि ज़मीन खिसक रही है, खिसक गई, अन्धकार हो गया।

* * *

त्रिभुवनने जब आँखें खोलकर देखा, तब उसे एक कमरा-सा मालूम हुआ। वह बिछौनेपर सोया हुआ था। उसके पीडित हृदयपर हाथ रखकर वह नई पर परिचिता-सी प्रतीत होनेवाली स्त्री बैठी थी। त्रिभुवनको ऐसा ज्ञान प्राप्त हुआ कि इस स्त्रीको उसने पहले स्वप्नमें देखा था। धीरे-से त्रिभुवनने कहा, "माँ!" स्त्री चौंक पड़ी, उसने त्रिभुवनकी ओर देखा। उसकी आँखोंसे सतत अश्रु-धाराएँ बह रही थीं। वह त्रिभुवनसे लिपट गई। त्रिभुवन फिर अचेत हो गया।

पीछे मीनलदेवी आकर खड़ी हो गई और निश्चल स्वरमें बोली, "हंसा, इस प्रकार तो तुम यहीं पड़ी रहोगी। समय जा रहा है। अब तुम जाओ।"

हंसाने अकुलाकर कहा, "पासमें बेशुमार दौलत है, फिर भी मुझ गरीबिनीकी कौड़ी भी थोड़ी देर नहीं रहने देतीं!"

कठोर शान्तिसे मीनलदेवी देखती रही, "यह कैसे होगा? मंडलेश्वर मेरल पहुँच भी गये होंगे। सब तैयारी करानी है। यति आनन्दसूरि तुम्हारे साथ जायँगे। चलो, उठो!"

"पल-भर, रानी, पल-भर।" यह कहकर हंसाने रानीकी ओर ऐसी दयनीय दृष्टिसे देखा कि उससे उसका हृदय भी पिघल गया।

"अच्छा, मैं पालकी तैयार कराती हूँ, तुम तैयार हो जाओ।" कहकर ईश्वरीय सत्ताकी अचल भाव-हीनतासे मीनलदेवी चली गई।

हंसाके मस्तिष्ककी स्थिति कल्पनासे बाहर थी। पन्द्रह वर्ष हो गये, उसके जीवनका एक एक झरना शुष्क हो गया था। पति और पुत्रसे बिछुडकर कोमल-हृदया हंसाने अपने महँगे मनोरथोंपर एकान्तमें आँसुओंकी तिलाजलि अर्पित की थी। जो सदा बाहर घूमते-फिरते हैं, जो अपने स्नेही संबन्धियोंके साथ रहते हैं, वे शायद ही समझें कि कारागारका एकान्तवास कितना भयंकर होता है। दिनपर-दिन बीतते चले जाते हैं; पर वही एकान्त, वही अकेलापन, उन्हीं विचारोंका कष्टदायक साथ। बाहरी जगत् किसी दूसरे ग्रहके समान दूर और संसारके अनुभव किसी दूसरे जन्मके समान अस्पर्श्य रहते हैं। इसी दुःख और वियोगमें हंसाने

इतने वर्ष बिताये। मनकी अनुभूतियोंको मारकर आशाओंका संहार कर दिया। आज पल-भरमे ही पतिसे मिलनेकी आशा आकर सामने खड़ी हो गई। मरे हुए मनने उसे स्वीकार नहीं किया। दूसरे ही क्षण जिस पुत्रको मरा हुआ समझ रखा था, उसे देखा; उसे बचानेके लिए अस्वीकार की हुई पतिसे मिलनेकी बातको फिर स्वीकार कर लिया। हंसामें विचार करनेकी शक्ति नहीं रह गई थी, वह अनुभूतिकी एक एक लहरके वश होकर सब कुछ कर रही थी। उसने पुत्रको देखा और उसके रूप और शौर्यको देखकर हृदय शीतल किया। उसे भी छोड़ देना उसे हृदयविदारक प्रतीत हुआ। मीनलदेवी भाग्यके समान निश्चल थी, और हंसा बाल्यकालसे ही कोमल और दूसरोंकी इच्छाके अधीन हो जानेवाली थी। ज़रा कठोर अवसर आते ही वह कोमल लताकी भाँति माथा झुकाकर झोंके सहन कर लेती थी। फिर भी इस समय अधीन हो जाना कठिन प्रतीत हुआ। त्रिभुवन अचेत होकर पड़ा हुआ था, उसका कोमल मुख मुरझा गया था। उसे छोड़ जाय ! बार-बार उसने उसका मुख चूमा।

पीछेकी ओर एक परछाई दिखलाइ पड़ी। हंसाने चौंककर देखा। पन्द्रह-सोलह वर्षकी एक लड़की सामने खड़ी है।

" आप त्रिभुवनपालकी माता हैं ? "

" हाँ बेटी, तुम कौन हो ? "

" मैं मीनलदेवीकी भतीजी हूँ। "

"अच्छा ! "कहकर हसा ज़रा काँप उठी और त्रिभुवनकी ओर देखने लगी।

" आप ज़रा भी न घबराइए, बुआजीकी अपेक्षा त्रिभुवनपालकी मैं अधिक अपनी हूँ। "

हंसाने सिर उठाकर ऊपर देखा। लड़कीके मुखपर निर्दोषिता स्पष्ट दिखलाई पड़ रही थी।

" तुम्हारा नाम ? "

" प्रसन्न। "

" बेटी, मुझपर तो दैवका कोप है, मैं जा रही हूँ; पर इसे यहाँ कौन देखे-सँभालेगा ? "

" आप तनिक भी न घबराइए। जबतक मैं हूँ, तब तक त्रिभुवनपालपर ज़रा भी आँच न आने दूँगी। "

"हंसाकी आखोंमे अधिक ऑसू आ गये। अच्छा, मैं कुछ निश्चिन्त रहूँगी। वेमॉके बच्चेकी इच्छाएँ पूर्ण करना बेटी!"

प्रसन्नने ऑचलसे ऑसू पोछ लिये, "आपका आशीर्वाद चाहिए।"

"बेटी, जितना मुझे दुःख मिला है, उतना ही तुम्हें सुख मिले।" कहकर हंसाने बलैयॉ ले ली और फिरसे त्रिभुवनको चूम लिया।

बाहरसे मीनलदेवीकी आवाज़ आई, "हंसा, चलती है कि नहीं?"

"हॉ, आ रही हूँ।" कहकर फिर हृदयको दबाकर, निराशाके अवतारकी भॉति हंसा वहॉसे चली गई। उसका मृत हृदय फिरसे सजीव होकर अग्नि-दाहकी-सी भयंकर वेदनाका अनुभव कर रहा था।

१७—प्रसन्नका दुःख

मीनलदेवीने कहा, "देखो हसा, यह आनन्दसूरिजी आधी दूर तक तुम्हारे साथ जायेंगे। परन्तु देखो, तुम अपना वचन पालना।"

"रानी, हंसाने अभी वचन नहीं तोड़ा है, घबराओ मत। अपने वंशका अपने हाथों ही नाश करनेके लिए मैं उत्पन्न हुई हूँ।" कहकर हंसा आगे बढ़ गई। यति पीछे रह गया। उसने साधुका वेष त्यागकर राजपूतका वेप धारण कर रखा था।

"देखिए यतिजी, सन्ध्या-समय तक लौट आइए और चॉपानेरी दरवाजेके बाहर रहिए, मैं वहीं मिलूँगी।"

"निश्चिन्त रहिए, मैं अभी आया।" यतिने उत्तर दिया और वहॉसे चला गया।

हारा हुआ जुआरी दूने आवेशसे खेलता है। रानीकी भी ऐसी ही दशा हो गई थी। वह इसी प्रयत्नमें थी कि किसी प्रकार मुंजाल और मंडलेश्वर न मिलने पाएँ। घड़ी-भरके लिए वह और सब बाते भूल गई। इसी समय उसे त्रिभुवनकी याद हो आई और जहॉ वह सो रहा था, उस कमरेकी ओर वह घूम पड़ी। भीतर गई तो उसका मिज़ाज बिगड़ गया। पलंगकी बग़लमे जमीनपर प्रसन्न बैठी थी। सोये हुए त्रिभुवनका एक हाथ उसके हाथमें था और वह बार बार उसे अपनी छातीसे लगा रही थी।

"प्रसन्न, क्या कर रही है?"

प्रसन्नने देखा, लज्जित हुई और तुरन्त खड़ी हो गई। " कुछ तो नहीं। "

" तू भी अब बेहाथ हुई जा रही है! चल, अब तैयार हो जा। संभव है, आज रातको तुझे यात्रा करनी पड़े। "

जरा घबराकर प्रसन्नने पूछा, " मुझे! मैं कहाँ जाऊँगी? "

" तुझे इससे मतलब? तेरा धर्म है मेरी आज्ञाओंका पालन करना। "

त्रिभुवनकी ओर संकेत करके प्रसन्नने कहा, " परन्तु बुआजी, मेरा धर्म इनके पास रहना है। इनकी माँ इन्हें मुझे सौंप गई हैं। "

मीनलदेवीने सख्तीसे कहा, " यह नहीं हो सकता। तेरा तो अभी बहुत काम है। कुछ दिनों पहले मैंने तुझसे क्या कहा था? "

प्रसन्नने ज़रा साहससे सिर उठाकर कहा, " वह मुझे नहीं चाहिए। भाड़में जाय अवन्ती। "

मीनलने भवें तानकर कहा, " तू तो बहुत बढ़ बढ कर बातें करने लगी है! "

" नहीं, जब तक ये अच्छे नहीं हो जाते, तबतक मै यहीं रहूँगी। " प्रसन्नने देखा कि अब दृढ़ता दिखाये बिना निस्तार नहीं है।

सच्ची बातकी कुछ शंका होनेपर मीनलने पूछा, " परन्तु इससे तेरा क्या संबंध? "

प्रसन्नने साहसके साथ कहा, " इनके साथ सब कुछ है, यह तो मेरे माथेके मुकुट हैं! "

" ऐसा! मालवा अच्छा नहीं लगा कि इसपर मोहित हो गई? "

" बुआजी, क्यों अधिक कहलवाती हैं? मुझे आपका मालवा नहीं चाहिए। "

"इसका अर्थ यह कि मेरी सारी योजनाएँ मिट्टीमे मिल जायँ, क्यों? लड़की, तुझ जैसीको ठीक करनेमें मुझे ज़रा भी देर नहीं लगेगी, समझी? सन्ध्या होनेसे पहले तैयार हो जा, न होगी तो ज़ोर-जुल्मसे काम लिया जायगा। चाहे इस कानसे सुन चाहे उससे। "

कहकर क्रोधमें भरी मीनलदेवी वहाँसे चली गई।

प्रसन्नपर मीनलदेवीकी बहुत धाक थी। उसे सूझा नहीं कि क्या करे। उसने त्रिभुवनकी ओर देखा। इन्हें इस दशामें छोड़कर कैसे जा सकती हूँ? परन्तु बुआजीने निश्चय कर लिया हो, तो वे बलपूर्वक भी भेज देंगी, यह उसे विश्वास था। वह उठी, उतावलीसे ऊपर गई और सामल बारहटसे मिली। बारहटसे उसने सब बातें कह दीं और नीचे आकर त्रिभुवनके पास बैठनेका आग्रह किया। बूढ़ेने स्वीकार कर लिया

" परन्तु बेटी, बिना आँखोंके मैं क्या करूँगा ? किसीको मेरे साथ रख दे।"

" किसे बुलाऊँ ? हाँ, मात्राके पतिको बुला दूँ ? "

" कौन ? वाचस्पति ? हाँ, है तो वह ठीक, तब चल, मुझे पहुँचा आ और पंडितजीसे भी कह आ। "

" बारहटजी, मुझे चाहे जो हो जाय, परन्तु देखिए, त्रिभुवनकी सेवा-शुश्रूषा भली भाँति हो। " प्रसन्नने ज़रा काँपते स्वरमें कहा।

" अकुला क्यों रही है बिटिया ? कल ही त्रिभुवन अच्छा हो जायगा। मैं भी ज़रा वैद्य हूँ। घावोंपर लीलाधर वैद्य कुछ नहीं कर सकता। देख, उस भंडरियामें एक डिब्बा है, उसे उठा ला। "

प्रसन्नने डिब्बा लाकर दे दिया। उसे अपने हाथमें लेकर सामल बारहट नीचे उतरा। प्रसन्न वाचस्पतिको बुलाने चली गई।

वाचस्पति खाली बैठे हुए किसी संस्कृत पुस्तकको पढ़ रहे थे। प्रसन्नने उन्हें वहाँसे उठाकर त्रिभुवनका उपचार-कार्य सौंप दिया। पंडितजी दौड़ते हुए त्रिभुवनके पास पहुँचे और बारहटके कथनानुसार उपचार करने लगे।

सायंकाल होने तक प्रसन्नकी खबर किसीने नहीं पूछी। सन्ध्या होनेपर एक नौकर उसे भोजनके लिए बुलाने आया। मीनलदेवीके कमरेमें तीन जनोंके लिए जल्दीसे भोजन तैयार किया गया था। जयदेव एक थालीपर बैठा था और दाहिना हाथ घायल होनेके कारण मुँह बिगाड़े बायें हाथसे खा रहा था। रानी दूसरी थालीपर बैठनेकी तैयारी कर रही थी। क्रोधमें भरी हुई मीनलने तीसरी थाली प्रसन्नको दिखलाई, " खा ले। "

इस साधारण-सी बातमें किसीको न चिढ़ानेके विचारसे प्रसन्नने स्वीकार कर लिया और खाया। आज इतनी जल्दी भोजन क्यों किया जा रहा था, कुछ समझमें न आया। प्रसन्नने थोड़ा ही भोजन किया; परन्तु वह बहुत भारी मालूम हुआ। प्यास भी अधिक मालूम हुई। खाकर वह उठी और त्रिभुवनके पास हो आई। परन्तु कुछ बेचैनी-सी मालूम होने लगी। आँखमें नशा आने लगा। बहुत देर तक उसने यही समझा कि ' थकावटसे नींद आ रही होगी।' वह झूलेपर बैठी, फिर लेट गई; अर्द्धनिद्रित अवस्थामें उसे ध्यान आया कि ' उसे कोई नशा तो नहीं चढ़ रहा है ?' परन्तु इस प्रश्नका निराकरण होनेसे पहले ही उसकी आँखें मुँद गई। वह खर्राटे भरने लगी।

१८–राजमहलमें रात

ने साथी

रात पड़ी। राजप्रासाद सब ओरसे शान्त हो गया। नगरमें अभी अधिक शान्ति नहीं फैली थी, क्यो कि चन्द्रमाके प्रकाशमे किसी किसी चबूतरेपर लोग टोलियाँ बनाकर गप्पें लड़ा रहे थे। सबको ऐसा ज्ञात होता था, जैसे सारे वातावरणमें कोई भय समाया हुआ हो। किस बातका भय था, यह कोई मुखसे नहीं निकालता था; परन्तु सब लोग अपने अपने गहने और रुपयोंको यथास्थान छिपाकर घरके शस्त्रोंको तेज़ करनेमें लग गये थे।

जब आधीरात हुई तब राजमहलके पीछेकी ओर तीन ऊँचे आदमी मज़बूत ढाटे बाँधे हुए चुपचाप खड़े थे। कुछ दूरीपर चार मज़बूत घोड़े एक वृक्षसे बँधे हुए थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे तीनो व्यक्ति किसीकी राह देख रहे हों। कुछ देरमे एक चौथा आदमी घोड़ेपर बैठकर आ पहुँचा। वह शस्त्रोंसे सज्जित था, और दो नेत्रोंके अतिरिक्त उसका सारा मुख ढका हुआ था। वह घोड़ेसे उतरकर तीनों व्यक्तियोंके निकट आ गया। उन्होने उसकी ओर आतुरतासे देखा। नवागन्तुक कुछ हँस पड़ा।

"हो गया। ज्यो ही हम पहुँचेंगे त्यों ही वह खिड़की खोल देगा।"

"तब चलिए महाराज, व्यर्थ किस लिए देर की जाय?" एक व्यक्तिने कहा।

"किसलिए? रायमल्लजी, आप घोड़ोके पास रहें, हम तीनो जायेंगे।" नवागन्तुकने कहा।

"अच्छी बात है। परन्तु मुझे भी ले चलते, तो अच्छा था।" पीछे रह जानेसे अकुलाकर रायमल्लने कहा।

"चिन्ताकी कोई बात नहीं, अभी बहुत समय है।" यह कहकर नया व्यक्ति वृक्षकी छायामें होकर महलकी दीवारके पास और निकटकी एक छोटी-सी खिड़कीको खोलनेका प्रयत्न करने लगा। परन्तु, खिड़की न खुली।

"रत्नसिंह, कोई गड़बड़ी मालूम होती है।" बूढ़ेने कहा।

"क्यों?"

"इस खिड़कीको खुली रखनेके लिए कहा था, फिर भी यह बन्द है। अब क्या किया जाय?" निराश स्वरमें दाँत पीसकर बूढ़ेने कहा।

"चलो, तो लौट चलें।"

"पूरा विकराल होकर उसकी ओर घूमा, "किसलिए लौट चले? तुझे अपने "प्यारे हों, तो चला जा। या तो हम लोग अपनी चाही चीज़ उठा ले जायेंगे या मर मिटेंगे।—इतना नामर्द है? साहसके काम इस तरह होते होंगे?" बूढ़ेने सर्पकी भाँति फुफकार मारते हुए कहा। गरीब बेचारा रत्नसिंह लज्जित होकर पीछे हट गया।

तीसरेने पूछा, "तब क्या किया जाय?"

"इतना बड़ा महल है, कहींसे तो कोई द्वार-खिड़की खुली होगी।" कहकर दृष्टि ऊपर किये बूढ़ा कोटके आसपास घूमने लगा। बहुत देरतक कोई खिड़की या द्वार खुला हुआ नहीं दिखलाई पड़ा। कई जगह झरोखे बाहर निकले दिखलाई पड़ रहे थे, पर उनपर चढ़ना नामुमकिन था और खिड़कियाँ बन्द थीं। परन्तु बूढ़ा दृढ़तासे आगे बढ़ा। कुछ दूर जानेपर रत्नसिंहने बूढ़ेका हाथ खींचा और एक झरोखेमें लटकती हुई रस्सी दिखाई। तीन दिन पहले जिस रस्सीसे त्रिभुवन ऊपर चढ़ा था, राजाके मर जानेकी गड़बड़ीमें प्रसन्न उसे खोलना भूल गई थी। बूढ़ेके नेत्रोंमें हर्ष छा गया। उसने ऊपर देखा, सिरके साफ़ेको भली भाँति दबाया और छलाँग मारकर रस्सी पकड़ ली। सरसराता हुआ वह ऊपर झरोखेमे जा खड़ा हुआ। पीछे उसके दोनों साथी भी चढ़ गये। उनके पास सेंध मारनेके सब औज़ार थे, जिनसे उन्होंने जल्दी जल्दी किवाड़में छिद्र करके अन्दरकी कुण्डी खोलकर द्वार खोल लिया। चुपचाप तीनों तेज़ीसे अन्दर गये और जिस ओर मीनलदेवीका कमरा था, उस ओर चले। ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे सारे महलके लोग चैनसे सो रहे हैं।

बूढ़ा सबसे आगे इस प्रकार चल रहा था, जैसे उसे सब बातोंका ज्ञान हो। कुछ देरमें वे लोग वहाँ जा पहुँचे जहाँ रानीका शयनागार था। बाहर एक दासी बिछौनेपर पड़ी सो रही थी। द्वार आधा खुला हुआ था। बूढ़ेने उसे धकेला। हर्षके आवेशसे उसका हृदय उछल रहा था। कमरेमें घुसते ही पहला पलंग कुमार जयदेवका था, वह उसी ओर बढ़ा। मशहरी अलग की और वह चौंक पड़ा। पलंगपर कोई नहीं था। अँधेरेमें उसकी आँखोंसे चिंगारियाँ निकलने लगीं। उसने आस-पास देखा; पर सब कुछ बिल्कुल शान्त था। कुछ देर वह खड़ा रहा। उसे कमरेमें अद्भुत शान्ति मालूम हुई। धीमे पैरों वह दूसरे कोनेकी ओर गया। दूसरे पलंगके पास जाकर खड़ा रहा, कान लगाये, नीचे झुककर देखा

और मशहरी उठाई। उसमें भी कोई नहीं था। बूढ़ा लौट पड़ा। दोनों साथी पीछेकी ओर खड़े थे।

" रतन, दोनों भाग गये!"

" एँ!"

उसने धीरेसे कहा, " हाँ, हमारी बात प्रकट हो गई। अब यहाँसे भाग निकलनेके सिवा कोई चारा नहीं, चलो।" यह कहकर उसने दोनो साथियोको द्वारकी ओर धकेला। वे द्वारके पास पहुँचे, तो किवाड़ बन्द थे। ज़रा ज़ोर लगानेपर बाहरसे बन्द मालूम हुए। बूढा बड़बड़ाया " मारे गये!' वह कुछ देर सोचता खड़ा रहा। उसे पीछेके दोनों साथियोंके हृदयकी धड़कन सुनाई पड़ रही थी। वह पीछे लौटा और तेज़ीसे दूसरे द्वारकी ओर गया और उसे धकेला। वह भी बाहरसे बन्द था।

" बेटा रतन, फँस गये।"

" खिड़कीसे होकर भी नहीं निकला जा सकता?"

" जिसने द्वार बन्द किये, उसने खिडकी खुली होगी?"

बूढ़ा खिड़कीकी ओर गया। कोटके बाहर पड़नेवाली खिड़कियाँ इतनी ऊँची थीं कि वहाँसे किसी भी प्रकार बाहर होना असंभव था। दूसरी ओरकी खिड़कियाँ अन्दरके चौकमें पड़ती थीं। नीचे पाँच-सात सिपाही नंगी तलवारोंसे पहरा दे रहे थे। एकके हाथमें धनुष-बाण भी थे।

" सब ओरसे फँस गये महाराज! अब क्या होगा?"

कृत्रिम साहससे बूढ़ेने कहा, " देखना चाहिए, सारी रात विचार करनेको पड़ी है, कोई तो रास्ता मिलेगा। रतन, जाओ, इन सब दरवाज़ोको अन्दरसे भी बन्द कर लो।"

रत्नसिंहने दरवाज़ोंको अन्दरसे बन्द कर लिया। कुछ देर सब मौन रहे।

" देखो, एक रास्ता है। इस झूलेकी छड़ें छततक गई हैं; इनपर चढ़कर कुछ पट्टियाँ तोड़ डाली जायँ, तो ऊपर जानेका मार्ग अवश्य मिल सकता है।" कह-कर बूढ़ा उठा परन्तु झूलेके पास जानेसे पहले ज़रा ठहर गया। उसे इस तरहकी स्पष्ट आवाज़ सुनाई पड़ी जैसे छतपर कुछ आदमी चल-फिर रहे हो।

बूढ़ेने कहा, " चलो, यह भी निबट गया।"

दोनों साथी सामने आ गये। रत्नसिंहने पूछा, " तो मदनपालजी, अब क्या

किया जायगा ? "

बाहरकी चाँदनीके आभासमें भयानक दिखते हुए मदनपालने कहा, " मैं भी यही विचार कर रहा हूँ । देखो, अगर पकड़े गये, तो मीनलदेवी हाथीके पैरोंतले कुचलवा देंगी । बचनेके नहीं तो दो ही मार्ग हैं । "

दूसरे दोनो बोल उठे, " कौन-से ? "

" एक तो यह कि इस खिड़कीसे कूद पड़ें और नीचेवालोंको छकाकर उस खिड़कीतक जा पहुँचे, और या सवेरे जो लोग कैद करने आयें, उनके साथ लड़कर मार्ग निकालें । "

" परन्तु काकाजी, यह तो दोनो मृत्युके मार्ग हैं। इसकी अपेक्षा तो मैं एक अच्छा मार्ग बताऊँ । कल सवेरे जब वे लोग हमें पकड़नेको आयें, तब मीनलदेवीके पैर पकड़कर क्षमा माँग ले, संभव है इससे बच भी जायँ । भले ही हमारी जागीर ज़ब्त हो जाय, पर अगर हम नत हो जायँगे, तो प्राण अवश्य बच जायँगे ।"

" लड़के, मदनपाल चावड़ा झुक जायगा ? तू पागल हुआ है ? "

" तो महाराज हम इस कच्ची उमरमें इस तरह मर जायँ ? आपका तो तीसरापन चल रहा है । " ऊबकर दाँत किटकिटाते हुए मदनपालने कहा, " अब बक बक न करो " तुम्हारा मार्ग मुझे नहीं चाहिए । अब तो केसरिया ही करेंगे । ज़रा भी डिगे, तो पहले मैं तुम्हे ही ख़त्म करूँगा । याद रखना । "

दोनों युवक जरा चौंके । बूढ़ेकी आँखोमे भयंकर दृढ़ता दिखलाई पड़ रही थी । इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं मालूम हुआ कि बूढ़ा उन्हें मार डालेगा । अतः वे चुप हो गये ।

खोखली आवाज़से मदनपाल बड़बड़ाया, " मैं मीनलदेवीसे क्षमा माँगूँ ? मै, मैं, महाराज भीमदेवका साला ! वह है कौन ? ठीक, अब यही मार्ग है । लड़को, अब कल अपने हाथ दिखलाऊँगा और रानीसे भी कहूँगा कि देख
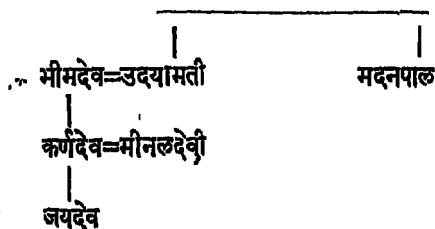
ले।" कहकर मदनपाल घूम पड़ा और घूमते ही उसने देखा, तो मालूम हुआ कि दोनो सो गये हैं। असलमें दोनों ढोंग करके पड़े हुए थे, क्यो कि नहीं कहा जा सकता था कि मदनपाल ऐसी दशामे क्या कर डालेगा। सारी रात वे इसी विचारमे जागते हुए-से पड़े रहे कि देखे सवेरे क्या होता है और सारी रात मदनपाल इधरसे उधर और उधरसे इधर घूमकर न जाने क्या क्या बक-झक करता रहा। अरुणोदय हुआ और बाहरके कमरेमें कुछ खड़बड़ाहट-सी मालूम हुई। मदनपालने आकर दोनो युवकोको एक एक ठोकर जमाई।

"उठो रे लड़को, सोते लज्जा नहीं आती? अब सच्चा क्षत्रियत्व दिखलानेका समय आ गया है।"

दोनों युवक उठ खड़े हुए।

भतीजेने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "काका, अब भी मान जाओ। हमे क्षमा मिल जायगी। ऐसी मूर्खता न करो।"

"चांडाल! कुत्ते! तेरी माँने तेरी अपेक्षा पत्थर जना होता तो अच्छा था। चल उठ, नहीं तो अभी पहले तुझे यमराजके घर पहुँचाता हूँ।" कहकर बूढ़ेने तलवार खींच ली। काँपते हाथों दोनो युवकोंने भी तलवारे निकाल लीं और काँपते हुए हृदयसे दरवाज़ेके पास खड़े हो गये। मदनपाल विकराल दृढताकी परिसीमापर पहुँच गया था। आवेशसे उसका शरीर काँप रहा था। बाघ जैसी एकाग्रतासे वह द्वार खुलते ही टूट पड़नेको तैयार खड़ा था।

बाहरसे कुंडी खुली, किसीने दरवाज़ेको हिलाया, अन्दरसे बन्द देखकर बाहरसे किवाड़ उतारनेकी तजवीज होने लगी। मदनपालकी अधीरता बढ़ गई। वह मरने-मारनेको तड़प रहा था। उसने कुंडी एकदम खोल दी। बाहरके दवावसे दरवाज़ा एकदम खुल गया। मदनपाल यह देखनेके लिए भी न ठहरा कि बाहर कौन हैं, कितने आदमी हैं? उसने कुछ मशालें देखीं, कुछ तलवारें देखीं और वह बाघकी भाँति टूट पड़ा। 'जय सोमनाथ!' कहकर वह चिल्ला उठा।

बीस-पचीस सैनिकोंकी नंगी तलवारोके सामने मदनपाल अकेले हाथो घूमता रहा। दोनों युवक कायरोंकी भाँति पीछे खड़े थे। मदनपालमें राक्षसी जोश था, उसे रोकना या घायल करना असंभव था। वह तलवारसे रास्ता बनाता गया। उसके शरीरसे रक्तकी धाराएँ बह चलीं। उसकी आँखोंमें अँधेरा छाने लगा। वह जीनेतक पहुँचा। जीनेसे उतरा। नीचे और भी सैनिक उसका स्वागत

करने लगे। विष्णुके सुदर्शनकी त्वरासे उसकी तलवार उसके सिरके चारों ओर घूम रही थी। कोलाहल सुनकर अधिक लोग जमा हो गये। चारो ओर मशाले जल उठीं। मदनपाल खिड़कीकी ओर दौड़ा, दौड़ने गया कि दैवयोगसे पैर फिसल गया। वह गिर पड़ा। पन्द्रह तलवारोंकी नोकोंने उसके शरीरको बेध डाला। वह समाप्त हो गया।

सब लोग घबरा गये—रानी क्या कहेंगी? चबूतरेपर शान्तिचन्द्र हाथमे तलवार लिये खड़ा था। बाज़ारमें बाते होने लगीं कि मीनलदेवी और कुमार जयदेव रातको पाटन छोड़ गये। सैनिकोंमें घबराहट बढ गई। चुपचाप सब कॉपने लगे। अब क्या होगा?

शान्तिचन्द्रने राजमहलके दरवाज़ोपर फिरसे कड़ा पहरा बैठा दिया।

१६—मुरारपाल

प्रसन्नको ऑखे खोलनेमें बड़ी कठिनाई हुई। सिरमे पीड़ा-सी मालूम हुई। यह भी आभास हुआ जैसे वह किसी झूलते हुए बिछौनेपर सो रही हो। उसने ऑखे खोलीं, सब ओर अन्धकार दिखलाई पड़ा। धीरे धीरे उसे ज्ञात हुआ कि उसे एक बन्द पालकीमें अकेले सुलाया गया है। वह समझ गई कि मीनलदेवीने उसे कोई मादक वस्तु खिलाकर और अचेत करके कहीं भेज दिया है। कहॉ? मालवराजके पास तो नहीं? कान लगाकर सुननेपर उसे यह भी ज्ञात हुआ कि उसके आस-पास कुछ घोड़े भी चल रहे हैं। उसने करवट लेकर पालकीका पर्दा उठानेका प्रयत्न किया; पर फिर डर कर लेट रही कि कहीं पालकी उठानेवाले न जान जायॅ।

इतनेमे सब रुक गये। प्रसन्नकी पालकी भूमिपर रख दी गई। अब क्या होता है, इस प्रतीक्षामें वह पड़ी रही। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि एक मशालको साथ लिये कोई उसकी ओर आ रहा है। कौन आ रहा है? क्या बात है? यह जाननेके लिए वह इस प्रकार पड़ रही जैसे सो रही हो। कोई आया, परदा उठाया और नीचे झुककर प्रसन्नकी ओर देखने लगा। प्रसन्नने अधखुली ऑखों देखा। वह एकदम ऑखें खोल देना चाहती थी कि रुक गई। 'कौन? बुआजी!

इस समय ! ऐसे समय ! शोक या मर्यादाका विचार न करके गुजरातकी
रानी यहाँ ! प्रसन्न ज़रा भी न हिली-डुली । परदा डालकर मीनलदेवी चली
गईं और सब ओर फिर अँधेरा हो गया । अब उसने आँखें खोलीं और विचार
करने लगी, 'पाटनसे बाहर कहीं भागे जा रहे हैं,—कहाँ ? ' तुरन्त त्रिभुवनका
स्मरण हो आया । त्रिभुवन वहीं पड़ा होगा, तड़पता होगा, या बुआ उसे अपने
साथ ले जा रही हैं, अब क्या किया जाय ? उसके हृदयमें केवल एक ही वि
आया, 'लौटकर पाटन किस प्रकार पहुँचा जाय ? ' इस समय वह वशमें
कितनी दूर आ पड़ी है, इसका भी उसे पता न था । साहस करके उसने ला उठी ।
ज़रा हटाकर बाहरकी ओर देखा । पालकी उठानेवाले कहार कुछ ली कैसे ?"
हुए पान खा रहे थे और बातें कर रहे थे । वह उठी और बाहर ए । चलिए,
एक वृक्षकी आड़में खड़ी हो गई । उसने इसका विचार भी न आपके साथ बात
अब क्या होगा ? ।"

इसी समय उसने दूरसे मीनलदेवी
सामन्त मुरारपाल थे । वे लोग सैनि
प्रसन्नकी ओर बढ़े । उसे बड़ा म खलाई पड़ रहा है ।"
गई, तो क्या होगा ? ' परन्तु वे "
थे, इसलिए किसीने इधर उधर्दा, "जबतक मुझपर विश्वास करके सब हाल न
मुरारपाल कह रहा था, " न करूँगा । अभी घोड़ेपर बिठाऊँ और तुम उसे लेकर
रहेगा । ज्यों ही आपके नि कटमें पड़ जाऊँगा ।"
कुछ कर गुजरेंगे ।" लाको देखकर उसका मन लुभा गया था । एकान्त स्थान,
मीनलने क्रोधसे कह आह्लादजनक नशा, प्रसन्नके तेजस्वी मुखका आकर्षण,—
और तुम भी यही कह मुरारपाल साधु बन जानेवाला विरागी नहीं था ।
क्या रानी ज़रा परको मैं इस समय अकेली चलनेके लिए राज़ी हूँ, क्या यह
"महारानीजी ! "
महाराज कर्णदेवके मज़ाकमें कहा, "नहीं तो क्या करोगी ? मेरे साथ चले बिना कोई
नामसे भी करनेकोएव यह कहना व्यर्थ है । अच्छी बात है, न कहना हो तो न
गौरवपर आघात व पाटनमें जाना कहाँ है ? "
रानीने कठोरता न मानें, समय आनेपर सब बतला दूँगी । इस समय पाटन ले
"क्षमा करें, अभी मेहरबानी ।"

घोड़ेकी तंग खींचते हुए मुरारपालने कहा, "अच्छी बात है तो आओ, बिठा दूँ।" प्रसन्नको उठानेका अवसर आता देख, मुरारपालका हृदय धड़क उठा।

"इसकी आवश्यकता नहीं है, मुझे बैठना आता है।" कहकर प्रसन्न घोड़ेपर चढ़ गई। बादमें मुरारपाल भी आगे जा बैठा और घोड़ेको पाटनकी ओर दौड़ा दिया।

मुरारपालने पूछा, "तुम क्षत्रिय हो?"

"जी हाँ, क्यों?"

"ब्याही हो?"

"जी नहीं।" कहकर प्रसन्न खिलखिला पड़ी।

२०—जो कुछ होना हो, सो हो।

देवप्रसाद जब उठा तो उसमें एक छोटे बालकके जैसा उत्साह और प्रसन्नता आ गई थी। जब तक केवल राजनीतिक दाव-पेचोंकी बातें उसके सामने थीं, जब तक मुंजालकी अस्पर्द्ध्य राजनीति उसे सब ओरसे जकड़ रही थी, तबतक उसे मार्ग खुला हुआ नहीं दिखलाई पड़ता था। परन्तु अब रणसिंगा बज उठा था, आमने-सामने लड़नेका मौका आ गया था और यह देवप्रसादको बहुत रुचा। उसके हाथोंमें हज़ार गुना बल आ गया। अपने दुःखों और अपनेपर किये गये अत्याचारोंको वह भूल गया।

वह अँधेरे अँधेरे उठा। मंडुकेश्वरके रुद्रमहालय (मंदिर) मे वह ठहरा हुआ था; अतएव महादेवजीके पास जाकर उसने बिल्व-पत्र चढाये, पूजा की और शस्त्रोंसे सजकर तैयार हो गया। सूर्योदयके समय वह मुंजालसे बातचीत करनेके लिए जानेवाला था, और इसके लिए सब तरह तैयार था। नीचे घोड़ोंकी हिनहिनाहट सुनाई पड़ने लगी और साथ जानेवाले सामन्त भी घोड़ोंपर सवार होकर नीचे जमा होने लगे।

देवप्रसाद चाहते थे कि मुंजालके साथ सलाह करके, संभव हो तो, दोनों सेनाओं-को मिलाकर पाटनके पास पड़ाव डाल दिया जाय। जबतक चन्द्रावतीकी सेना डेरा डाले पड़ी हुई थी, तबतक सुलह-शान्तिसे काम हो सकता था। उसकी धारणा थी

कि मुंजालकी सहायतासे या तो चन्द्रावतीकी सेना उसके साथ हो जायगी या लौट जायगी; फिर पाटनके निकट जाकर डेरा डालना सरल हो जायगा; और मीनलदेवी तंग आकर,—थककर कोई समाधान कर लेगी। इस तरह बिना रक्तपातके उसकी इच्छित आकांक्षा पूर्ण हो जायगी। मुंजाल अब उसके पक्षमें हो गया था, इससे वह कुछ निश्चिन्त था। मुंजाल सब कुछ करता रहेगा और उसे कोई कष्ट न उठाना पड़ेगा।

मंडलेश्वर तैयार होकर नीचे आया। द्वारके पास दस-बारह सामन्त अपने रिसालोंके साथ उसकी राह देख रहे थे।

मूँछोंपर हाथ फेरते हुए मंडलेश्वरने पूछा, "गंभीरमल्लजी, कहिए, पाटनकी ओर कूच कब होगा?" गंभीरमल्ल देवप्रसादका सहायक सामन्त था।

"महाराज, वल्लभसेन मेरलसे रवाना होनेकी तैयारी कर रहे हैं। आप जाकर मुंजालसे मिल लीजिए, तो कल सवेरे कूच कर दिया जाय।"

"परन्तु देखिए, कहीं वल्लभसेन चन्द्रावतीकी सेनासे लड़ न मरे।"

"नहीं जी, लीजिए आपकी घोड़ी आ गई। उजेला होने लगा है, चलिए, नहीं तो पिछड़ जायँगे।"

देवप्रसादकी घोड़ी सामने आ गई और मालिकको देखकर हिनहिनाई। वह सफेद रंगकी बहुत सुंदर घोड़ी थी।

"क्यों बेटी रूपा!" कहकर हर्षके आवेशमें देवप्रसादने पास जाकर उसे थपथपाया। दुलारसे स्वामिभक्त घोड़ी कुछ नाच उठी। देवप्रसाद उसकी अयालमें अँगुलियाँ डालकर फिराने लगा। बैठनेके लिए उसने घोड़ीकी गरदनपर हाथ रखा। पौ फट रही थी कि सामनेसे पाँच-सात सवार मशालोंके साथ आते दिखाई दिये। उनके साथ एक पालकी थी। सामन्तोंके घोड़े हिनहिना उठे। देवप्रसाद आश्चर्यसे घोड़ीके पाससे हट गये। उनमेंसे एक आगे आया। देवप्रसाद भी जरा आगे बढ़े।

"कौन हो? कौन? वस्तुचन्द?" ज़रा कठोरतासे मंडलेश्वरने पूछा, "क्यों क्या बात है?"

"प्रभु, महारानीजीने आशीर्वाद कहलाया है?"

"बहुत अच्छा, और?" देवप्रसादने अधीरतासे पूछा।

"साथमें यह भेंट भेजी है।"

"क्या ?" देवप्रसाद पालकीकी ओर देखता रह गया और यह जाननेके लिए आतुर हो गया कि मीनलदेवीने क्या मज़ाक किया है। पालकी सामने आई। इन्तज़ार करनेवाले सामन्तोंके व्यूहने उसे घेर लिया। मशालची निकट आ गये। एक शान्त, भयंकर क्षण व्यतीत हो गया। वस्तुचन्द्रने पालकीका पर्दा हटा दिया। उसमेंसे हंसा निकलकर बाहर आ खड़ी हुई। देवप्रसादने उसे देखा। इतने शूरवीरोंके विकराल मुखोंके सामने मुर्झाई हुई रमणीका अविस्मृत मुख देखा। उसके शरीरमें कँपकँपी आ गई, सिर घूमने लगा। भावके आवेगमें उसने आँखें मूँद लीं, और अपने हाथोंको छातीसे लगा लिया।

उसने फिर ऊपर देखा। थोड़े ही कदमोंकी दूरीपर उसकी प्रियतमा खड़ी थी। पन्द्रह वर्षोंके बाद उसने उसे देखा। वह अपने कंठसे एक भी शब्द बाहर न निकाल सका।

हंसा मानों पन्द्रह वर्षोंकी मुग्धा ही हो, इस तरह पैरके नखोंको देखने लगी। शरीर थरथर काँप रहा था। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी। आसपास खड़े लोग दिङ्मूढ़ होकर देख रहे थे। अन्तमें मण्डलेश्वरको वाचा आई, "कौन ? हंसा !"

हंसाने ऊपर देखा। उसके बड़े बड़े नेत्रोंसे कल्पनातीत प्रेमका तेज फूट पड़ा। उसने बोलना चाहा, अचानक उसके हाथ ऊपर उठ गये। वह अचेत हो गई और गिर पड़ी। मण्डलेश्वरने दौड़कर उसे उठा लिया, अपने भूखे हाथोंमें उसे दबा लिया और चबूतरेपर खड़े पुजारीसे पुकारकर कहा, "महाराज, जाओ, अपनी पत्नीको बुला लाओ, जल्दी।"

मण्डलेश्वरने कहा और वह उसे उठाकर अन्दर ले गया। रुद्रमन्दिरमें हलचल मच गई। कौन है, क्या है, इसका किसीने विचार नहीं किया। सब दौड़ने लगे। देवप्रसाद चिल्लाने लगा, और बहुतसे लोग हंसाको चेतमें लानेका प्रयत्न करने लगे।

उगते हुए सूर्यनारायणकी किरणें आकाशमें फैल गईं। गम्भीरमल्ल ऊपर आ गया और मण्डलेश्वरसे बोला, "महाराज, समय जा रहा है।"

"कैसा समय ?"

"मुंजाल राह देख रहे होंगे ! सूर्योदय हो गया।"

अकुलाकर मण्डलेश्वरने कहा, "हो जाने दो, क्या किया जाय ?" उसके

प्राण अचेत हंसामें थे।

" परन्तु महाराज, आपकी और मुंजालकी भेटपर ही तो हम सबका भविष्य निर्भर है। हंसादेवी अभी चेतमे आ जायँगी। आप चलिए।"

देवप्रसादने क्रोधसे पैर पटककर कहा, " गंभीर, हम सबका भाग्य भले ही फूट जाय, तुम्हारा राज पाट मुझे नहीं चाहिए। मेरी हंसा ही मेरे लिए बहुत है। जाए, जिसे जहाँ जाना हो।"

" महाराज, इतनी अधीरतासे कैसे काम होगा? मंत्री मुंजालसे कह आऊँ, कि वे यहाँ आ जायँ?"

" वे आना चाहें तो उनका घर है।" कहकर देवप्रसाद उसे छोड़कर चला गया।

गंभीरमल्लने देखा कि बाज़ी बिगड़ गई है। मंडलेश्वर अब यहाँसे खिसकनेवाला नहीं। नीचे खड़े सामन्त खीज उठेंगे और मेरलकी सेना बिना सेनापतिके निर्वीर्य हो जायगी। मन मार कर नीचे उतरा और खड़े हुए सामन्तोंसे बोला, " देवप्रसादजीने मुंजालको बुला लानेके लिए कहा है।"

गंभीरकी जो धारणा थी, वही हुआ। सब निराश हो गये।

इतने अधिक लोगोंका हंसाकी परिचर्या करना मंडलेश्वरको भला न लगा। उसने सबको विदा कर दिया। अगले कमरेका द्वार बन्द करके हंसाके पास वह अकेला रह गया और उसका उपचार करने लगा।

धीरे धीरे हंसाको चेत आया। उसने आँखें खोलीं। अपरिचित कमरेमे वह पड़ी थी, अपरिचित मस्तक खटियाके पैंताने टिकाकर नीचे एक मनुष्य बैठा हुआ था। उसे सब कुछ याद आ गया। अपरिचित मस्तककी एक एक रेखा हृदयके पुराने पटोंपर अंकित मिली। वह मन्द स्वरमे बोली, " नाथ!"

मंडलेश्वर उछलकर निकट आ गया। हंसासे लिपट गया। चुम्बनोंसे हंसाको व्याकुल कर दिया, " हंसा! मेरी हंसा! प्रिये!" सुखमें क्षणभरके लिए सब कुछ भूलकर निर्बलताकी असहाय अवस्थामें हंसा मंडलेश्वरके सिंहके समान मस्तकपर हाथ फेरने लगी। घड़ीभर प्रेमकी प्यास छिपाते हुए दोनोंमेंसे कोई कुछ भी न बोला। फिर देवप्रसादको स्मरण आया, " तुम्हें मीनलकाकीने भेजा है? सचमुच? ओह, इतना उपकार! आख़िर काकी इतनी भली तो निकलीं!"

" महाराज, यह तो कहिए ही नहीं। न जाने कौन-सा प्रपंच रचनेके लिए

उसने मुझे यहाँ भेजा है।"

"क्यों, प्रपंच कैसा ?"

"नाथ, इस समय आप क्या करते थे ? मेरे भोले राजा, अब भी आप ज्योंके त्यों बने हुए हैं ?" कहकर हंसा मंडलेश्वरके गालोंपर हाथ फेरने लगी।

"मैं ? मैं तुम्हारे भाईसे मिलने जा रहा था।"

"हाय हाय !"

"क्यों ?"

"अवश्य उसने कोई षड्यन्त्र रचा होगा। मुझसे उसने कहा था कि तुम्हारा भाई तो मुझसे रूठा हुआ है। अब मैं समझी, आप दोनो मिल न पाये, इसीलिए उसने मुझे भेजा है। अब मीनलकी चढ़ बनेगी।"

देवप्रसाद भी कुछ समझे, "पर करेगी क्या ? अधिकसे अधिक दो दिनोंका विलंब हो जायगा, और क्या ? मैंने गंभीरमल्लको भेजा है, वह अभी मुंजालको लेकर आयेगा। तुम तो सदा डरती ही रहीं।"

"क्या करूँ ? आपकी छत्रछायामें रात-दिन रहती, तो साहस रखती। परन्तु यह ध्यान रखना कि मेरे लिए अपनी टेक न छोड़ना, मेरे लिए कुछ गँवाना नहीं।"

"पागल हुई हो ! अब तुम्हें छोड़ सकता हूँ ? हंसा, इस छोटे-से जीवनमें हम-तुम बहुत बिछुड़े रहे हैं। अब जिसका जो होना हो, हो जाय। हम तो साथ ही जियेंगे, और साथ ही मरेंगे।" देवप्रसादने हंसाका हाथ दबाते हुए कहा।

"परन्तु हमारा बच्चा, हमारी देहस्थली,—मुझे तो कुछ भी पता नहीं है। मेरे लिए कुछ बुरा न हो। उस राक्षसीका मुझे बड़ा भय है।"

"हंसा, घबरा क्यों रही हो ? सबको ठिकाने ले आऊँगा। हमारा त्रिभुवन भी सिंहका बच्चा है।"

"मैंने अपनी आँखों उसे लड़ते हुए देखा है। नाथ, हुबहू आप जैसी सूरत है।"

"कहाँ देखा ? प्रसन्न तो है ?"

हंसाने त्रिभुवनके घायल होनेकी सारी कथा कह सुनाई।

"पर्वा नहीं। भले ही अपने बलपर वह वहाँ चैनसे रहे। और यह लड़की कौन है ? मुझे ऐसा लगता तो था कि त्रिभुवन नित्य चुपचाप पाटन जाया करता है, इसका कोई कारण अवश्य होगा। हो ! बाप भी कहाँ भला था ?" देव-

प्रसाद हँस दिया।

" आपको याद है, हम दोनों पहले पहल भीमनाथ महादेवके मन्दिरमें मिले थे ? "

" क्यों नहीं ? " कहकर मंडलेश्वरने नीचे झुक कर हंसाको चूम लिया।

" हंसा तेरे पुत्रके घर भी पुत्र देखनेका समय आयेगा। "

" जिनभगवानकी इच्छा ! परन्तु आप इसी प्रकार बैठे रहेंगे तो कुछ उलट पलट हो जायगा। "

" प्रिये, जिसका जो होना हो, होने दो। "

" तो कैसे चलेगा ? "

" अवश्य चलेगा। पाटनका, गुजरातका,—मेरी अपनी टेकका चाहे जो हो जाय, तुम कह चुकीं ? पन्द्रह वर्षोंसे तुम्हारे लिए तरस रहा था, अब मुझे किसीकी परवाह नहीं है। "

" नाथ, ये बाते आपको शोभा देती हैं ? दुनिया क्या कहेगी ? "

" हंसा, इस बातको छोड़ दो। दुनियाकी मुझे क्या दरकार है ? तुम्हारी गोद ही मेरी दुनिया है। " कहकर देवप्रसादने हंसाकी गोदमे अपना सिर रख दिया।

सुखके सागरमे डूबते हुए हंसाने हृदयकी भयंकर चेतावनीको अलग कर दिया। उसने अश्रुप्लावित नेत्रोंसे मंडलेश्वरकी ओर देखा। उसकी सुन्दर आँखोंमें इतने वर्षोंसे दबा हुआ प्रेम दिखलाई पड़ रहा था। दोनों बालप्रेमी उमंगसे एक दूसरेसे लिपट गये।

कठोर सूयनारायण आगे बढ़े। सृष्टिक्रमकी नियमितता तेज़ीसे चलती रही। युगल प्रणयी एक दूसरेकी बाँहोंमें लिपटे पड़े रहे।

× × ×

रात्रि हुई। चन्द्रमा धीरे धीरे आकाशमें आया और दो पागल प्रेमियोंको देखकर कुछ हँस पड़ा। अपनी अमृतमयी ज्योत्स्नाके भीतर ज्वाला भरकर उसने उन्हें और भी अधिक पागल बना दिया।

" नाथ, सारा दिन बीत गया, परन्तु भैया नहीं आये, सेनाका क्या होगा ? "

" जिसका जो होना हो सो हो। प्रिये, हमारा प्रेम अमर रहे ! "

अत्याचारी चन्द्रमा सृष्टिमें अपने साम्राज्यकी अचलता देखकर फिर हँसा।

२१—सत्ताका मद

यतिकी होशियारी अब सोलहों कलाओंमें प्रकट होने लगी। चन्द्रावतीकी नई सेनाकी कई टुकड़ियाँ जगह जगह मिलती गईं, और रानीको ऐसा प्रतीत हुआ कि अब वह वास्तवमें सत्तावान् बन गई। आनन्दसूरि जो जो तजवीजें करता, जब तब रानीसे आकर कहता रहता था। मधुपुरकी सेनाको कुछ सन्देश भेज दिया गया था, नई सेनाका कुछ भाग कुछ दूरीपर आकर पड़ा हुआ था और मुंजालपर भी पहरा बिठा दिया था। दूत लोग थोड़ी थोड़ी देरमें आकर सब समाचार दे जाते थे।

ब्राह्ममुहूर्त्त होते ही पहली टुकड़ी मिली, उसने उसे सब समाचार दिये। सारी सेना यतिकी प्रतीक्षा कर रही थी। और जो मुंजालके पक्षमें थे, उनपर कड़ा, परन्तु गुप्त पहरा रखा गया था। रानीकी आतुरता मुंजालकी हलचलें जाननेके लिए थी। इसी समय खबर मिली कि सवेरे ही मुंजाल कुछ सैनिकोंको साथ लेकर बाघेश्वरी माताके मंदिरकी ओर जानेवाला है। वहाँ वह देवप्रसादसे अवश्य मिलेगा, ऐसा जान पड़ा। रानीके हृदयपर आघात हुआ। उसका मुंजाल यों बिफर जाय? इतने वर्ष उसकी गुलामी की, फिर भी आखिरमें वह शत्रुसे जा मिला?—अपने किये हुए अन्यायको मीनलदेवी भूल गई।

‘ क्या किया जाय? इस छोटीसी टुकड़ीको लेकर बाघेश्वरीके मार्गसे मधुपुर जाना और हो सके, तो मार्गमें मुंजालको रोकूं। मुंजाल कैसा दिखता होगा? इस प्रकार पकड़ा जायगा तो क्या कहेगा?’ रानीको फिर अधिकारका,—सत्ताका गर्व आ गया। ‘उसे पकड़कर अपने अधीन कर लूँ और उसे भी दिखा दूँ कि मीनलदेवी अपने अकेले हाथों सत्ता प्राप्त कर सकती है।’

“ यतिजी, बाघेश्वरीके मार्गसे मधुपुर चलें, तो कैसा रहे?”

“ महारानीजी, उस मार्गसे बहुत विलम्ब होगा।”

“ पर्वा नहीं।”

यति समझ गया। धर्म-युद्धमें लोग अपनी व्यक्तिगत इच्छाओंको क्यों ले आते हैं, यह देखकर उसके हृदयमें तिरस्कार उत्पन्न हुआ। उसने समझ लिया कि इस विषयमें रानीसे वादविवाद नहीं किया जा सकता। उसने स्वीकार कर लिया और कहा, “ परन्तु अब कुमार जयदेवको पालकीसे निकालकर घोड़ेपर

बिठाना चाहिए। इसके बिना लोगोंमें जोश नहीं आनेका।"

"ठीक है।" कहकर रानीने जयदेवको उठाया और घोड़ेपर बैठा दिया। जयदेवको सेनाके साथ चलना बहुत पसन्द था; इसलिए वह भी प्रसन्नतासे आगे हो गया। डंके और झंडेकी शोभाके साथ वे आगे चले।

अरुणोदय हुआ। कुछ कुछ उजेला होने लगा और मधुपुर बिल्कुल समीप आ गया। इसी समय दूरसे दौड़ते हुए घोड़ोंकी टापें सुनाई पड़ीं। रानीका हृदय धड़क उठा। वह होठ दबाये पालखीमें बैठी रही; कुछ देरमें यतिको बुलाया।

"यतिजी, यह किसके घोड़ेकी टापें सुनाई पड़ रही हैं?"

"मंत्री मुंजाल मंडलेश्वरसे मिलने जा रहे होंगे। क्या किया जाय?"

"यहींपर रोक दो, और क्या किया जाय?"

"अच्छी बात है।"

सत्तावाही स्वरमें रानीने कहा, "परन्तु देखिए, मुंजालका बाल बाँका न हो!"

अदृष्ट तिरस्कारके स्वरमें यतिने कहा, "जैसी आज्ञा।"

सामनेसे आते हुए घोड़े कुछ कुछ दिखाई पड़ने लगे। उनकी तीव्र गतिके कारण धूलके बादल उड़ रहे थे। प्रातःकालके उजालेमें मन्द पड़ रही मशालोंका प्रकाश धूलके बादलोंमेंसे दिखलाई पड़ रहा था। वह प्रकाश निकट आ गया। रानीने सबसे आगे सफ़ेद घोड़ेपर बैठे और चमकते हुए कवचसे सुशोभित मुंजालको देखा। वह काँप उठी, उसका यह विजयी मुंजाल आज उसके विरुद्ध!

यतिने अपने सैनिकोंको सारे रास्तेपर फैला दिया था। मुंजालने यह देखकर घोड़ा रोक लिया और कठोर स्वरमें कहा, "रास्ता दो, रास्ता रोककर क्यों खड़े हो?"

एक नायकने उत्तर दिया, "यहाँसे कोई भी नहीं जा सकता!"

मुंजालने तीक्ष्ण दृष्टिसे अपनी ओर आगे खड़े सैनिकोंकी शक्तिका माप किया। उसके पास लगभग बीस सैनिक थे और सामने पचास-साठ। उसने तिरस्कारसे नायककी ओर देखा, "क्यों नहीं जा सकते? तुम कौन हो?"

"मैं चन्द्रावतीका नायक हूँ।"

"तुम मुझे पहचानते हो?"

"नहीं।"

" मैं चन्द्रावतीकी सेनाका सेनापति हूँ। हटो, मार्ग छोड़ दो। "

नायक हँस पड़ा और उसने अपने हाथकी नंगी तलवार हिलाई। मुंजालके नेत्रोंसे अग्नि निकल पड़ी। उसने अपने हाथका भाला तानकर विद्युत्गतिसे नायककी छातीको वेध डाला, पीछे घूमकर अपने सैनिकोंकी ओर देखा और वह उच्च स्वरसे चिल्ला उठा, " जय! जय सोमनाथ!"

जवाबमें उसके सैनिकोंने भाले हाथमें ले लिये और सामनेकी टुकड़ीपर हमला करनेकी तैयारी की। यति यह खेल देख रहा था। उसे इस समय धर्मके जोशने अन्धा कर दिया था। उसकी दृष्टिमें धर्मकी विजयके दो विरोधी दिखलाई पड़े। मुंजाल और देवप्रसाद। उसका वश होता, तो वह अभी मुंजालको एक ही बाणसे समाप्त कर देता। परन्तु, वह रानीको पहचान गया था। उसे विश्वास था कि मुंजालको कुछ हो गया तो रानी इस समय सब कुछ छोड़कर उसपर क्रोधित हो जायगी और यह सब खेल समाप्त हो जायगा। अतएव ज्यों ही मुंजाल आक्रमणकी तैयारी करने लगा, त्यों ही जयदेवको साथ लेकर वह आगे आ गया। ' जयदेव महाराजकी जय!' यति चिल्लाया और सैनिकोंने उसका साथ दिया।

मुंजालने यतिको देखा, जयदेवको पहचाना और आगेवाले सैनिक कौन थे, उनपर कुछ सन्देह किया। तुरन्त उसने घोड़ा रोक लिया और भालेकी नोकको नीचे झुका दिया। उसके सब सैनिकोंने भी उसका अनुसरण किया।

कुमार जयदेव छोटा था पर समय पड़नेपर समयके अनुसार काम करनेमें चतुर था। वह तुरन्त आगे बढ़ा और बोला, " कौन? मुंजाल मेहता! मेरा सामना कर रहे हो?"

" कुमार, क्षमा करो। मैंने पहचाना नहीं। आप यहाँ कैसे? मुझे समाचार तो दिया होता?" कहकर मुंजालने सशंक होकर राजपूत बने हुए यतिकी ओर देखा।

यतिने जरा मज़ाकमें कहा, " इतनी जल्दी कहाँ जा रहे हैं?"

मुंजालने तिरस्कारसे कहा, " इससे आपको मतलब? आपने अपना जप-तप छोड़कर यह वेष कबसे धारण कर लिया?...परन्तु महाराज, मुझे क्षमा कीजिए। आप इस मार्गसे मधुपुर जाइए। मैं अभी दो घड़ीमें लौट आता हूँ, मुझे बहुत ही आवश्यक कार्य है।" यह कहकर और जयदेवको नमस्कार करके मुंजालने घोड़ेका मुँह फेर दिया।

जयदेव मुंजालसे डरता था, फिर भी उसके प्रति उसके हृदयमें बड़ा सम्मान

था। परन्तु इसका भी उसे अधिक ज्ञान था कि क्या क्या दाव-पेच चले जा रहे हैं, अतएव, उसे सूझा नहीं कि वह अब क्या करे? परन्तु, यति बहुत काबिल था।

"मंत्री महाराज, महारानीजी भी साथ हैं, बिना उनसे मिले कहाँ जाते हैं?"

मुंजालने होठ चबा लिये, "मैं फिर मिलूँगा, अभी तो जाता हूँ।"

जयदेवने कहा, "नहीं, नहीं, माताजीसे मिल लीजिए।"

"फिर,—फिर—"

इसी समय पीछेके सैनिकोंकी कतार टूट गई और मीनलदेवीकी पालकी आगे निकल आई। मुंजाल आ गया है, कुछ लड़ाई-सी हो गई है, जयदेव आगे चला गया है: यह सब जानकर रानीकी उत्कंठा बहुत बढ गई कि देखे वहाँ क्या हो रहा है। उसने पालकीवालोंको आगे ले चलनेकी आज्ञा दी। रानीको आते देखकर बड़ी कठिनतासे मुंजालने अपने क्रोधको दबाया। मुंजालको योद्धाके वेषमे देखकर रानीका हृदय भर आया; परन्तु तुरन्त ही उसने अपने हृदयको वशमें कर लिया। उसे देखकर उसके विषयकी चिन्ता दूर हो गई और उसे अधीन करनेका आवेश बढ़ गया। वह हँसती हुई आगे आई।

"कौन? मन्त्री मुंजाल, तुम इस समय कहाँसे? इधर आओ।"

मुंजाल स्वस्थ होकर अपने घोड़ेको पालकीके पास ले गया। और सब लोग सम्मानके साथ दूर खड़े रहे।

रानीने सत्ता-प्रदर्शक परन्तु धीमें स्वरमे कहा, "मुंजाल, मैने यह नहीं सोचा था कि आखिर तुम ऐसे निकलोगे। इस समय कहाँ जा रहे हो? यहाँ तुम मेरे हितकी रक्षाके लिए आये हो, या शत्रुता बढानेके लिए? मुंजाल, तुम किस मुखसे मेरी ओर देख रहे हो?"

मुंजाल गभीर मुखसे देखता रहा। उसे अबतक आशा थी कि किसी भी प्रकार वह रानीको सीधे मार्गपर ले आयगा; परन्तु इस समय रानी अविचार-पूर्वक ऐसा काम कर रही थी कि जिसका परिणाम भयंकर युद्ध हुए बिना नहीं रह सकता था। अकेला पाटन, उसकी अनुपस्थितिसे क्रोधित देवप्रसाद, शोकको त्यागकर बाहर निकली हुई रानीके प्रति जनताका तिरस्कार: उसके हृदयमें ये सब विचार उत्पन्न हुए। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि विनाशकाल आ गया है और सोलंकियोकी अवनतिका आरंभ हो गया है। यह सब विचार कर बोला, "देवी, आपको

था। परन्तु इसका भी उसे अधिक ज्ञान था कि क्या क्या दाव-पेच चले जा रहे हैं, अतएव, उसे सूझा नहीं कि वह अब क्या करे? परन्तु, यति बहुत काबिल था।

"मंत्री महाराज, महारानीजी भी साथ हैं, बिना उनसे मिले कहाँ जाते हैं?"

मुंजालने होठ चबा लिये, "मैं फिर मिलूँगा, अभी तो जाता हूँ।"

जयदेवने कहा, "नही, नहीं, माताजीसे मिल लीजिए।"

"फिर,—फिर—"

इसी समय पीछेके सैनिकोंकी कतार टूट गई और मीनलदेवीकी पालकी आगे निकल आई। मुंजाल आ गया है, कुछ लड़ाई-सी हो गई है, जयदेव आगे चला गया है: यह सब जानकर रानीकी उत्कंठा बहुत बढ गई कि देखें वहाँ क्या हो रहा है। उसने पालकीवालोंको आगे ले चलनेकी आज्ञा दी। रानीको आते देखकर बड़ी कठिनतासे मुंजालने अपने क्रोधको दबाया। मुंजालको योद्धाके वेषमे देखकर रानीका हृदय भर आया; परन्तु तुरन्त ही उसने अपने हृदयको वशमें कर लिया। उसे देखकर उसके विषयकी चिन्ता दूर हो गई और उसे अधीन करनेका आवेश बढ़ गया। वह हँसती हुई आगे आई।

"कौन? मन्त्री मुंजाल, तुम इस समय कहाँसे? इधर आओ।"

मुंजाल स्वस्थ होकर अपने घोड़ेको पालकीके पास ले गया। और सब लोग सम्मानके साथ दूर खड़े रहे।

रानीने सत्ता-प्रदर्शक परन्तु धीमें स्वरमे कहा, "मुंजाल, मैने यह नहीं सोचा था कि आखिर तुम ऐसे निकलोगे। इस समय कहाँ जा रहे हो? यहाँ तुम मेरे हितकी रक्षाके लिए आये हो, या शत्रुता बढानेके लिए? मुंजाल, तुम किस मुखसे मेरी ओर देख रहे हो?"

मुंजाल गभीर मुखसे देखता रहा। उसे अबतक आशा थी कि किसी भी प्रकार वह रानीको सीधे मार्गपर ले आयगा; परन्तु इस समय रानी अविचार-पूर्वक ऐसा काम कर रही थी कि जिसका परिणाम भयंकर युद्ध हुए बिना नहीं रह सकता था। अकेला पाटन, उसकी अनुपस्थितिसे क्रोधित देवप्रसाद, शोकको त्यागकर बाहर निकली हुई रानीके प्रति जनताका तिरस्कार: उसके हृदयमें ये सब विचार उत्पन्न हुए। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि विनाशकाल आ गया है और सोलंकियोकी अवनतिका आरंभ हो गया है। यह सब विचार कर बोला, "देवी, आपको

ख्याल नहीं है कि इस समय आप क्या कर रही हैं। यदि अब भी मुझपर थोड़ा-सा विश्वास हो, तो मुझे इस समय जाने दीजिए। मैं मध्याह्नसे पहले लौट आऊँगा।"

रानीने पूछा, "कहाँ? मेरे भतीजेसे मिलनेके लिए? मुंजाल, तुम मेरे वंशको नष्ट करना चाहते हो? और अपने बहनोईको पाटनके सिंहासनपर बिठाना चाहते हो? क्यों?"

मुंजालने बिल्कुल धीरे से कहा, "देवी, पाटनके सिंहासनपर या तो जयदेव बैठेंगे, या पाटनका पतन हो जायगा। इसके अतिरिक्त अपने जीते जी और कुछ नहीं होने दूँगा। परन्तु आपकी मति विपरीत हो गई है।"

रानीने अभिमानसे सिर उठाकर ऊपर देखा। उसे इस मनुष्यपर क्रोधोन्माद हो आया। अपने गौरवको अडिग रखनेके लिए उसने क्रोधको दबा लिया था; पर इस समय वह ऐसा न कर सकी। वह सब कुछ भूल गई। अधिकारके नशेमें उसे केवल यही याद रह गया कि वह रानी है। उसके नेत्रोंमें घातकता आ गई, वह बोली, "मुंजाल, तुम अपनी वणिक जातिपर ही उतर आये! क्यों मेरे साथ ऐसा व्यवहार कर रहे हो? इतने दिनों इतना अधिक स्वातंत्र्य दे रखा था, इसलिए? तुम जानते हो, मैं कौन हूँ?"

मुंजाल भयंकर रूपसे हँस पड़ा। वह स्वस्थ और शान्त था, "आप? आप राजमाता हैं। क्षमा कीजिए, मुझे भूलनेकी टेव नहीं है। आप मेरे सामने बड़ी हुईं, मेरे परिश्रमसे चतुर बनीं, चन्द्रपुरकी कुमारी हैं; अपनी युक्तिसे जिन्हें मैं लाया और अपनी बुद्धिसे जिन्हें मानिनी बनाया, आप वही पाटनकी रानी हैं! और इस समय,—इस समय कहूँ तो," नीचे झुककर मुंजालने मीनलके कानमें कहा, "सोलकियोंके राज्यको भस्मीभूत करनेके लिए उत्पन्न हुई योगमाया हैं! मेरी समझमें कृतघ्न, अविश्वस्त, भावहीन और स्नेह-रहित..." मुंजाल अन्तिम शब्द खा गया, "अब और कुछ कहना है?"

दो तीन क्षण मीनलदेवी इस प्रकार देखती रही जैसे उसके सिरपर कठोर आघात हुआ हो। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि कहीं उसका क्रोध उसके सिरको न फाड़ डाले। उसने एक ही विचार किया कि मुंजालको किसी भी प्रकार दबा दिया जाय। उसने आस-पास देखा। यति और अन्य सैनिक शस्त्र-सज्जित खड़े थे। मुंजाल सावधान हो गया। वह किसी भी प्रकार इस संकटसे

मुक्त होना चाहता था, कारण बिगड़ी बाज़ी अब उसके सुधारे नहीं सुधर सकती थी। उसने अपने हाथके भाले और कंधेपर लटक रहे धनुष्यको पृथ्वीपर पटक दिया और कुमार जयदेवकी ओर घूमा, " महाराज, ये मेरे शस्त्र लो। इनका सदुपयोग करोगे तो संसारमें अमर हो जाओगे। मुझे अब इनकी आवश्यकता नहीं है। आनन्दसूरिजी, मुझे कैद कर लो। "

सब लोग देखते रहे। किसीको नहीं सूझा कि क्या किया जाय।

मीनलदेवी बोल उठी, " हाँ, आनन्दसूरिजी, मुंजालको पकड़ लो। इन सब राजद्रोहियोंको मैं पूरी सज़ा दूँगी। "

यति कुछ देर खड़ा रहा, फिर आगे बढ़ा और मुंजालकी छोड़ी हुई घोड़ेकी लगाम हाथमें ले ली।

रानीने कहा, " चलो, अब जल्दीसे मधुपुरकी ओर। सूर्य कितना चढ़ गया है! "

धीरे धीरे सब लोग चलने लगे। कुछ देरमें रानीने यतिको बुलाया, "यतिजी, यह काम तो पूरा हो गया, अब दूसरा रहा। आप कुछ सैनिक लेकर मंडुकेश्वरके मार्गपर रहिए। अब किसी न किसी तरह मंडलेश्वरको वहीं बन्द कर रखना चाहिए कि वह वल्लभसेनसे कुछ कहला न सके। तब वह भी हारकर चुप जायगा। "

" ठीक है, तो मैं पचीस-तीस सैनिक लिये जाता हूँ। "

" हो सके तो मंडलेश्वरको दो-एक दिन बाहर न निकलने देना। इतनेमें, मैं यहाँसे पाटनकी ओर प्रयाण शुरू करूँगी। "

" ठीक है। हमारा सेनापति मधुपुरकी सीमापर आपकी राह देख रहा है। उससे कहोगे, तो वह सब कुछ करेगा। पड़ाव तो विखराटके पास ही डालोगे न? "

"हाँ, उस स्थानपर सेना रहेगी तो पाटनसे निकट भी पड़ेगी और दूर भी। और इसी बीच यदि वल्लभसेन आ गया, तो फिर कोई चिन्ता नहीं। तो अब जाओ, शीघ्रता करो। " कहकर रानी मधुपुरकी ओर चली।

यति तेजीके साथ मंडुकेश्वरकी ओर रवाना हो गया।

२२—उदा मारवाड़ी

उदा मारवाड़का रहनेवाला था। वह सारी रात अपने घरके छज्जेपर बैठा रहा। उसने गहराईके साथ सोचा कि कल बहुत रात गये उसके घरके सामनेवाले चॉपानेरी दरवाज़ेसे दो-एक पालकियाँ गई हैं। ऐसे भयंकर समयमें, जब पाटनके दरवाज़ेसे चिड़िया भी बाहर नहीं जा सकती, तब यह कौन गया होगा? उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि पाटनके इतिहासमें यह एक स्वर्ण अवसर आ गया है और यदि उससे लाभ उठाया जा सके तो भाग्य खुल सकता है। न जाने कितने वर्षोंसे वह अपने भाग्योदयकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसे चिन्ता हो गई कि कहीं असावधानीसे यह अवसर हाथसे निकल न जाय।

उसे अपनेपर अटल श्रद्धा थी। सत्रह वर्षकी उम्रमें दिनोका मारा बिना माँ-बापका उदा मारवाड़के एक ऊजड़ गाँवसे कंधेपर लोटा-डोर टाँगकर निकला था। पहने हुए कपड़ोंके अतिरिक्त उसके पास केवल एक धोती थी। फिर भी उसमें बड़ा साहस था। उसके मस्तिष्कमें तरह तरहके विचार आया करते। वह सोचता, सारी दुनियामे अक्लका टोटा है; कोई परमार्थमें, कोई अभिमानमे और कोई उदारतामे अपनी ज़िन्दगी बरबाद कर रहा है। किस लिए कीमती जिन्दगी बरबाद की जाय? इसकी अपेक्षा खालिस वैराग्यसे ही अगर स्वार्थ सेया जाय, तो मनुष्य संसारके शिखरपर पहुँचे बिना न रहे। परन्तु इस तत्त्वज्ञानका प्रयोग करनेके मौके भूखे-प्यासे उदाको नहीं मिले।

भटकते-भटकाते आखिर उदा एक दिन नई बसी हुई कर्णावतीकी सीमापर आ पहुँचा। तीन दिन हो गये थे, उसने अन्नका एक दाना भी दाँतोंसे नहीं लगाया था। उसे चक्कर आया और बेहोश हो गया। जब चेत हुआ तब वह एक भले घरमें सो रहा था। एक उदार धर्मनिष्ठ जैन विधवा लाछी उसे अपने घर ले आई थी। पास बैठा हुआ एक यति उसकी नाड़ी देख रहा था। उदाका भाग्य पलटा। विधवा लाछीने उसे अपना बेटा बनाकर रख लिया। उसने देखा कि अब अनेक वर्षोंके विचारोंको अनुभव-सिद्ध करनेका वक्त आ पहुँचा है। वह नम्रताकी मूर्ति था, स्वभावका सीधा सादा और निःस्वार्थ प्रतीत होता था। परन्तु अक्लमें तेज था; इसलिए वह अपनी परिस्थितिसे उचित लाभ उठाने लगा। उसके लिए भविष्यवेत्ताओंने बड़ा ऊँचा मत दिया था और

लाखीका सारा धन उसके हाथमे था, अत एव उसे कोई अप्रसन्न करनेका साहस नहीं करता था।

लाखी मर गई; तब उदाने कर्णावतीमे रहना उचित न समझा। उसें यह नही दिखलाई पड़ा कि नये नगरमे, मदनपाल जैसे व्यक्तिके शासनमे, उसके भाग्यके पॉसे सीधे पड़ जायँगे। उसने कर्णावतीके मकानोंको बेच डाला और पाटनमें एक छोटा-सा घर लेकर व्यवसाय आरंभ कर दिया। उदा धनका अधिक लोभी नहीं था, वह सत्ता चाहता था और अकसर नगरशेठ मुंजाल या शान्तिचन्द्रके समान प्रतिष्ठित, धनी और सत्तावान् श्रावकोंको देखकर उसका जी जलकर खाक हो जाता था। पाटनमें उसे आत्मज्ञान हुआ। उसकी बुद्धिका निर्मल स्वार्थ भी ऐसा नहीं था कि अधिक काम आये। पाटनके जन-समाजकी प्रणालिकाएँ और राज्य-कारभार ऐसा स्थिर था कि उससे अल्पवित्त पनपते हुए और आश्रय-हीन मनुष्योंको अचानक कोई लाभ पहुँचना असंभव था। इस प्रकार चिन्ताओंमें उदा अपने दिन और रात बिताने लगा।

बड़े कुटुम्बोंमें भी पैर फैलाना कठिन मालूम हुआ। अतएव, उसने बहुत धीरे धीरे अपना कार्य आरम्भ किया। वह बड़ा धैर्यवान् था। उसने देखा कि इन दिनों पाटनमे उपद्रव तो होगा ही, और तब नये आदमियोको अवश्य लाभ होगा। उस अवसरके लिए उदा तैयारी करने लगा। वह गरीब, परन्तु समयपर काम आनेवाले राजपूतों और राजसेवकोंको थोड़ा-बहुत ऋण देने लगा। प्रत्येक बड़े व्यक्तिका अथसे इति तक इतिहास पूछताछकर संग्रह करने लगा और बन सका उतने महान् पुरुषोंको प्रसन्न करनेके लिए उसने छोटे-मोटे प्रयत्न भी शुरू कर दिये। राजमहलमे उसके मित्र थे, यतियोंकी उसपर कृपा थी, ब्राह्मण भी मिष्टभाषी श्रावकोंपर प्रसन्न रहते थे। राजपूत लोग भी उसकी खुशामदसे प्रसन्न रहा करते। शान्तिचन्द्र, मुंजाल, मीनलदेवी और कर्णदेव तक धीरे धीरे यह समझने लगे कि वह अच्छा और विश्वास-पात्र गरीब व्यापारी है। परन्तु किसीको पता नहीं था कि उसके मस्तिष्कमें कौन कौन विचार चक्कर काट रहे हैं।

कर्णदेवकी मृत्यु हो गई; अतएव उदाने कान फड़फड़ाये। घरमे रखा हुआ चॉदी-सोना पृथ्वीमें गाड़ दिया और बुद्धि तीव्र करके तैयार हो बैठा। मुंजाल मधुपुर चला गया और देवप्रसाद घोडीको कोट कुदाकर भाग गया; अतएव उसे विश्वास हो गया कि उसका अवसर आ गया है। रातको उसने दो पालकियॉ

जाते देखीं, अतएव विचार करने लगा कि यह कौन गया है। इसी सोचमें उसकी सारी रात बीत गई। प्रातःकाल होनेवाला था कि चाँपानेरी दरवाज़ेकी खिड़की खुली, बाहरसे किसीने बात की और दो व्यक्ति अन्दर आयेः एक स्त्री और एक पुरुष। अस्तंगत चन्द्रमाके मन्द प्रकाशमें वह भली भाँति पहचान न सका कि ये लोग कौन हैं ? उसने कानटोपी लगाई, बंडीकी तनियोंको खींचकर बाँधा, द्वारपर ताला लगाया और नीचे उतरकर उनके पीछे पीछे जाने लगा।

उसने पुरुषको यह पूछते हुए सुना, "तुम मेरे यहाँ चलोगी ?"

"नहीं," शान्तिसे मधुर-सा हँसते हुए वह लड़की बोली।

लड़कीका स्वर उदाको परिचित-सा प्रतीत हुआ।—यह कहाँ सुना होगा ?

दबायी हुई भावनाओंसे काँपते स्वरमें पुरुषने पूछा, "तब इस समय अकेली कहाँ जाओगी ?"

"पाटन तो मेरा घर है, यहाँ अकेली कैसे ? आप राजमहलतक पहुँचा आइए, फिर मैं अपने आप चली जाऊँगी।—"

"फिर कहाँ जायेंगी ?"

"यह नहीं कहा जा सकता। जब इतना विश्वास किया है, तो तनिक और नहीं कर सकते ?" कहकर वह मस्तीसे हँस पड़ी।

उदा चौंक पड़ा। उसने स्वरको पहचान लिया। मीनलदेवीकी यह भतीजी इस समय यहाँ ! उसने अधिक एकाग्रतासे कान लगा दिये।

"तुम तो विश्वास नहीं करती हो और मुझसे विश्वास करनेको कह रही हो, अच्छा, एक वचन दोगी ? फिर मिलोगी ?"

"ओहो ! बस यही ? स्वीकार है, और कुछ ?"

"और बहुत कुछ कहना है, पर फिर किसी दिन कहूँगा।"

प्रसन्न हँस पड़ी। न जाने कब तक वे चुपचाप चलते रहे। पीछे पीछे उदा भी विचार करता हुआ चलने लगा कि क्या किया जाय ? अन्तमें राजमहलका चौक आ गया।

"मुरारपालजी, अब आप पधारिए।"

"परन्तु, यदि गढ़ बन्द हुआ तो ?"

"भले ही बन्द हो, आप अपने वचन पालिए, वचन ! अधिक न लुभाइए।" कहकर प्रसन्न राजमहलके पीछेकी ओर अकेली जाने लगी।

मुरारपाल न जाने कब तक उसकी ओर देखता रहा; और प्रातःकाल हो रहा था अतएव निःश्वास छोड़कर घरकी ओर घूम पड़ा।

उदा कुछ देर प्रसन्नके पीछे पीछे चलता रहा। यह क्या रहस्य है? यह लड़की यहाँ कैसे?—उसके मस्तिष्कमें कुछ प्रकाश पड़ा।। रातको पालकीमें बैठकर मीनलदेवी तो पाटन छोड़कर न चली गई हों? यदि ऐसा हुआ हो, तो अवश्य उपद्रव मच जायगा।

प्रसन्न पिछले दरवाज़ेपर गई। उसने खिड़कीको बहुत खटखटाया; पर किसीने उत्तर नहीं दिया। अंदरसे शान्तिचन्द्र सेठकी कड़ी आज्ञाके कारण कोई भी खिड़की न खोल सका। प्रसन्न घबरा गई, "अब क्या किया जाय?" उसने दूसरी ओरकी खिड़कीपर जानेके लिए पैर उठाये, वह घबराने लगी। जब तक मुरारपाल था, तब तक उसमें साहस था; परन्तु अब किसी बड़ेकी सहायता और सम्मतिके बिना वह व्याकुल हो गई।

"क्यों प्रसन्न बहन, कहाँ जा रही हैं इस समय?"

"कौन? उदाजी!" प्रसन्नने ज़रा हर्षसे कहा, "तुम कहाँ जा रहे हो?"

"मैं दर्शन करने जा रहा था बहन! परन्तु तुम यहाँ कैसे? कोई आदमी भी तो साथ नहीं है!"

"उदा सेठ, इस बातको छोड़ दो। तुम्हारा घर कहाँ है? मुझे वहाँ ले चलोगे? इस समय कोई मुझे देख लेगा, तो फजीहत होगी।"

उदाको यही तो चाहिए था। 'अवश्य। मेरे अहोभाग्य कि तुम मेरे घर चलो! मेरा घर पास ही है।" कहकर वह अपने घरकी ओर घूम गया और तेजीसे चलने लगा। "परन्तु आप इस समय कहाँसे आ रही हैं? किसी संकटमें पड़ी हो तो मुझसे कहिए, सेवक सदा तैयार है, समझीं?"

प्रसन्न उदाको पहचानती थी और यह भी जानती थी कि वह बहुत विश्वास-पात्र आदमी है। "उदा सेठ, मैं इस समय संकटमें हूँ। मैं बुआजीके पाससे भाग आई हूँ।"

परन्तु वे तो पाटनसे बाहर गई हैं न!" पता लगानेके लिए उसने चतुराईसे कहा।

"तुमने कैसे जाना?"

"मैं कैसे न जानता? चाँपानेरी दरवाज़ेके सामने ही तो रहता हूँ; इसलिए

रातको जाते देख लिया था; परन्तु तुम कैसे भाग आईं ?"

"भाई, मेरे संकटको तुम क्या जानो ?"

"बहन, भाग आई यह अच्छा हुआ, नहीं तो पाटनकी नाक कट जाती।" उदाने धीरेसे कहा। नाक कैसे कटती, इसका उसे ठीक पता तो न था; परन्तु खुश करके किसीके पेटसे बात निकालनेमे वह बड़ा चतुर था।

"हाँ, बुआजीको भी न जाने क्या क्या सूझा करता है! अवन्तीकी अपेक्षा मेरा पाटन क्या बुरा है ?"

बातको कुछ समझते हुए उसने कहा, "ठीक है, पाटन तो पाटन ही है, भारतका शिखर है। महारानीजीको यह न जाने क्या सूझा ?"

"हाँ, ऐसे समय कहीं पाटनको छोड़ा जा सकता है! उदा सेठ, क्या कहूँ जैसा कि हमारे सामल बारहट कहते हैं पाटनका प्रभुत्व तो जा रहा है। बुआजी पाटनको छोड़कर मधुपुरकी ओर गई हैं, कितनी बुरी बात है ?" विश्वासके आवेशमें प्रसन्नने कहना शुरू कर दिया।

उदा बिना कही बातोंको समझने लगा। उसे राज्यके दाव-पेचोंकी बहुत-कुछ खबर थी; अतएव एक शब्द सुनकर ही सारी बात जानते उसे देर न लगी। "ठीक तो है। पाटनकी महारानी पाटनके विरुद्ध जाय! श्रावक तो मैं भी हूँ; परन्तु क्या इससे अपने पाटनको भुलाया जा सकता है! परन्तु किया क्या जाय ? 'राजा कालस्य कारणम्।'"

"'राजा कालस्य कारणम्!' तुम्हारे पाटनके सब लोग चूड़ियाँ पहनकर बैठे हैं। नहीं तो चन्द्रावतीकी चलती ! और आज यहाँ पाटनका दण्डनायक शान्तिचन्द्र हो जाता!"

"परन्तु क्या किया जाय बहन! तो चलो, यह मेरा घर आ गया।" कहकर उदाने द्वार खोला और दीपक जलाकर दोनो ऊपर गये। "बहन, समय बहुत बुरा है। पाटनमें कोई ऐसा नही रह गया कि इस समय कुछ कर सके। मुंजाल मेहता जो ज़रा सीधे हों, तो पाटनका डंका सारे संसारमें बज जाय।"

"मुंजाल मेहताको तो पहले ही दूर कर दिया है। मंडलेश्वरको—अरे हाँ, बातो बातोंमें मैं मुख्य बात तो भूल ही गई। उदा सेठ, त्रिभुवनपाल घायल होकर महलमें पड़े हैं। प्रातः होनेसे पहले उनके समाचार ले आओ तो मुझे कल पड़े।"

उदा समझ गया कि यह लड़की त्रिभुवनके विषयमें इतनी चिन्तित क्यों है।

" अवश्य ! बहन, यह दतौन और पानी रखा है, लो ! सूर्योदय होते ही मैं जाता हूँ ! पर प्रातःकाल होते ही लोग जान जायँगे कि मीनलदेवी चली गई हैं ?"

" नहीं जी, शान्तिचन्द्र 'महलमें पहरा रखेंगे; तब कौन जान सकता है ? और संभव है, कल रात तक तो वे लौट भी आएँ । "

" अजी, ऐसी बाते हवासे साथ उड़ती हैं । अच्छा, मैं अपनी दुकान खोल आऊँ, मंदिर हो आऊँ और साथ ही त्रिभुवनपालका समाचार भी लेता आऊँ । कुछ कहलाना है ? " उदाने ज़रा धीरे-से पूछा । किसीकी इच्छाको परखनेकी उसमें अद्भुत शक्ति थी ।

" हाँ, लीलाधर वैद्यसे कहना कि मैं यहाँ हूँ, और त्रिभुवनपाल पूछे तो वैद्यजीसे कहना कि कह दे, मेरी अवश्यकता हो तो मैं आ जाऊँगी । परन्तु देखो, मैंने जो कुछ कहा है, वह किसीसे कहना मत । "

" नहीं जी, यह किसीसे कहा जा सकता है । निश्चिन्त रहो । " कहकर उदा नीचे उतर गया ।

उदाको भविष्यवेत्ताओंके कथन याद आये । यदि वह इस अवसरसे लाभ उठाये, तो अवश्य नगरसेठोंका भी सेठ बन जाय ? जब चिन्तातुर विश्वासशील प्रसन्न बातें कर रही थी, तब उसका मस्तिष्क काम कर रहा था । ज्यों ज्यों उसने विचार किया, त्यों त्यों उसे प्रतीत हुआ कि ऐसा अवसर सौ वर्षोंमे एक बार भी नहीं आता । सारे पाटनमें उसके सिवा किसीको ज्ञान नहीं था कि मीनलदेवी पाटन छोड़कर चली गई हैं । इसका क्या उपयोग किया जाय कि जिससे उसका मनचाहा सिद्ध हो ?

---

२३ उदाजीने वचनकी कैसी रक्षा की ?

उदा बाहर निकला । ज़रा आगे बढ़ते ही मार्गमें सेठ वस्तुपाल दूकानकी चाभियाँ हिलाते हुए सामने मिल गये । सेठ वस्तुपाल अजैन साहूकारोंके अग्रणी थे ।

" कहिए सेठजी, जयगोपाल । "

" कौन, उदा सेठ हैं ? "

" जी हाँ, कहिए, क्या मोती चौक जा रहे हैं ? आज दूकान खोलनी है ? "

" भाई, विना दूकान खोले कहीं निस्तार है ? "

" दरजीका बेटा जबतक जीये तब तक सींये । "

उदाने ज़रा नीचे झुककर कहा, " परन्तु सेठ, आप तो मेरे मुरब्बी हैं, अपने तक ही रखो, तो एक बात कहूँ । "

" क्या ? "

आज कल लोग इतने घबड़ाये हुए थे कि उन्हें अधिक घबड़ाना एक खिलवाड़ था।

" किसीसे कहना नहीं, नहीं तो मेरा सिर उड़ा दिया जायगा। कुछ भी हो, आप असल पट्टनी हैं; इसलिए आपको जितनी चिन्ता होगी उतनी किसी दूसरेको नहीं हो सकती । पाटनसे राज्य-शासन उठ गया। "

वस्तुपालने चौंकपर कहा, " ऐं ! "

" धीरे धीरे बोलिए सेठजी, यहाँसे महारानी रातको चन्द्रावती चली गई । "

" क्या कह रहे हो ! तब राज कौन करेगा ! "

" चन्द्रावतीके आढतिया सेठ शान्तु मेहता तो हैं ! "

" अजी जाओ भी, कहींसे गप सुन आये होगे । यह भी कहीं हो सकता है ? "

" सेठजी, झूठ समझते हो तो लीजिए मैं अपने घर चला : परन्तु बुद्धिमान् हो तो गहना-गाठा ठिकानेसे लगा देना । यह तो मित्र समझकर मैंने कह दिया । अच्छा, जयगोपाल । "

" अच्छा भाई, जयगोपाल । " कहकर धड़कते हुए हृदयसे सेठ वस्तुपाल मोती चौककी ओर चले । वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये थे ।

उदा वहाँसे शीघ्रता-पूर्वक चावड़ी बाज़ार गया और एक गलीमें जाकर उसने एक छोटेसे मकानकी कुंडी खटखटाई ।

कुछ देरमें एक मोटा और निद्राके कारण कुछ अस्पष्ट-सा स्वर सुनाई पड़ा, " यह कौन आ मरा इस समय ? "

" अरे नायकजी, यह तो मैं हूँ । "

" मैं कौन ? कल आना । "

" नायकजी, मैं उदा हूँ । एक आवश्यक बात है, द्वार खोलो । "

" फिर रुपये माँगने आया है, क्यों रे मारवाड़ी ! "

" नहीं, डूँगरनायक, नहीं । यह तो और रुपये मिलनेवाली बात है । "

यह सुनते ही डूँगरनायक पुकार उठा, " अरी कुब्जा ! सुन नहीं रही है, किवाड़ खोल, नहीं तो चीरके दो कर दूँगा। "

एक स्त्रीने तुरन्त द्वार खोला और हाथ जोड़कर कहा, " उदा सेठ, कहो तो आपके पैर छूलूँ; पर आज इन्हे यहाँसे ले जाओ। कल रातको फिर मुझे पीट पीट कर दोहरी कर डाली है। मुझसे कहते हैं कि गाँजा उधार ले आ, पर उधार कौन देता है ? "

" घबराओ मत भाभी, मैं अभी सीधा किये देता हूँ। " कहकर उदा ऊपर चढ गया।

डूँगरसिंह बिछौनेपर पड़ा पड़ा चिलमका कश खींच रहा था। उसकी आँखे नशेसे लाल और विकराल हो रही थीं। उसे आधा चेत था और आधा धुएँके गोलोंमे विचर रहा था। अपनी विशाल भुजामें एक बड़ा-सा तकिया दाबे वह पड़ा हुआ था।

" नायकजी, यों क्या पड़े हुए हो ? अब तुम्हारे बापदादोंकी प्रतिष्ठापर पानी फिरनेवाला है ! " उदाने देखा कि उसके मस्तिष्कपर हथौड़ेके आघातके अतिरिक्त और कोई वस्तु काम नहीं आ सकती।

" देखूँ, देखूँ तो, किसकी माँने इतनी सोंठ खाई है ? "

" अजी रहो भी, चन्द्रावतीकी सेना यहाँ सीमापर आ पड़ी है ! यहाँ तो एक राजपूतका जाया नहीं दिखता जो लड़नेको तैयार हो ! "

बिछौनेमेंसे एकदम उछलकर बैठता हुआ डूँगरसिंह चिल्ला पड़ा, " ऐं, क्या कह रहे हो ? "

उदाने कृत्रिम घबराहट दिखाते हुए कहा, " ज़रा धीरे; परन्तु समय बड़ा विकट आ गया है। मीनलदेवी चन्द्रावती चली गई हैं। वहाँसे सेना आई कि दरवाज़े खुले ! कुछ करोगे, या सोते रहोगे ? "

" मेरे जीते जी—मैं—मैं—बैठा हूँ, और पा—पाटन जाय ? " नशेमे जिह्वाको दोहरी करते हुए डूँगर नायकने कहा।

" जाये क्या ? गया। कुछ देर पाटनके दरवाज़े शान्तिचन्द्रके हाथमे रहे, कि देख लेना। हम सब श्रावक तो मोतीचोकमे इकट्ठा हो रहे हैं। "

" क्यों ? " अपना अंगरखा पहनते हुए डूँगरने पूछा।

" क्यों, क्यो क्या ? आख़िर हम हैं तो पट्टनी ही। बाहरके लोग पाटनमें कैसे

घुस आयेंगे ? यह तो आज राजपूत कायर हो रहे हैं, नहीं तो किसीकी मक्दूर है कि पाटनमें पैर रखे ? ”

“ कौन आयगा ? कैसी बाते कर रहे हो ? अरी, सुन रही है ? तेरा बेटा कहाँ मर गया ? ”

“ क्यों ? ” नीचेसे डूँगरसिंहकी धर्मपत्नीकी आवाज़ आई ।

“ उससे कह तो कि अखाडेपर जाकर सबसे कहे कि डूँगरनायक बुला रहे हैं । जल्दी, नहीं तो धड़से सिर जुदा कर दूँगा । ”

“ अच्छा भाई, मैं तो जा रहा हूँ, मुझे बहुत काम है । ”

“ पाटनपर चन्द्रावती चढ़ आवे ! राजपूत बच्चोंको श्रावक सतायें ! मार डालो ! काट डालो ! ऐ कुब्जा ! तेरा बेटा— ”

उदा घरमेंसे निकलकर तेजीसे भागा । सवेरा हो गया था, इसलिए समय बहुत कम था । वह विमल सेठके चौराहेपर पहुँचा और सेठ शान्तिचन्द्रके घर गया । वह बड़े बड़े घरोंमें अकसर आया-जाया करता था और घरकी स्त्रियोंकी सेवा-चाकरी करके उन्हें प्रसन्न रखता था । सेठ शान्तिचन्द्रकी सेठानी मानकुँवर देवी उदापर विशेष स्नेह रखती थीं, कारण कि पाँच पुत्र और चार पुत्रियोंके परिवार-पर राज करना उन्हें बड़ा कठिन मालूम होता था, और उदा इस सारे परिवारको समझा-बुझा सकता था । जब उदा पहुँचा, तब मानकुँअर देवी घरकी बहू-बेटि-योंको लेकर सब्ज़ी संभार रहीं थीं ।

“ कहिए सेठानीजी, ठीक तो हैं ? ”

“ कौन उदाजी ! इस समय कहाँसे ? ”

“ कहिए, महलमें स्यापा मना आई ? ”

“ हाँ, आज तो बड़े तड़के गई थी । मीनलदेवी सिकुड़ी हुई बिलकुल अँधेरेमें बैठी थीं । इतनी जल्दी तो इन ठंडके दिनोंमे कैसे बने ? ”

“ सेठानीजी, जरा यहाँ तो आओ, एक बात कहनी है । ”

“ क्या है ? ” कहकर मानकुँअर उठीं और समीपके कमरेमे गईं । साथ साथ उदा भी जा पहुँचा ।

“ सेठानीजी, मैं शपथ-पूर्वक कहता हूँ, अपने सेठजी कुछ समझ जायँ तो ठीक है, नहीं तो पाटनकी नाक कट जायगी । ”

“ क्यों, बात क्या है ? फिर चन्द्रावतीकी ही बात होगी । इनपर तो इस

बुढ़ापेमें पागलपन सवार हो गया है।" कहकर मानकुँअर चौकीपर बैठ गई।

उदाने धीरे-से कहा, "मीनलदेवी कल चन्द्रावती चली गई, और सेठजी यहाँ रहे।"

"जाओजी, पागल हो गये हो क्या? अभी तो मैं स्यापेसे लौटी हूँ। इस शोकके समयमें वे कहीं जा सकती हैं ?"

"परन्तु सेठानीजी, आपने ही तो अभी कहा है कि महारानीजीको आपने नहीं देखा। कोई और रहा होगा। मैंने अपनी आँखों जाते देखा और वे प्रसन्न-कुमारीको ले गई थीं, लौट आई हैं, और वह बैठी हैं मेरे घरपर। जाकर पूछ लीजिए।"

"हाय बापरे !—विमला ! ऐ विमला !" मानकुँअरने पुकार लगाई।

"क्यों, क्या है ? इतनी क्यों चिल्ला रही हो ?" दुलारसे बिगड़ी हुई सेठानी-जीकी छोटी लड़की आ खड़ी हुई।

"अरे, तेरी सहेली उदाजीके घरपर अकेली है, बेचारी बड़ी संकटमें है। तुम और बहू जाओ और उसे ले आओ यहाँ। कुछ भी हो, पर बेचारी बेमाँकी बच्ची है। जाओ, जल्दी जाओ।—हाँ, तो उदाजी, अब सेठजीका क्या किया जाय?"

"किया क्या जाय ? सारा नगर कह रहा है कि हम दरवाजे बंद रखेंगे और शान्तु सेठ खुलवायेंगे तो मार-काट मच जायगी। डूँगर नायक भी अभी यही कह रहा था। इस समय सेठजीको रोक दो तो ठीक है, नहीं तो रक्तकी नदियाँ बह जायँगीं।"

"क्या कह रहे हो ? हाय हाय बेटी, कोई है ? जा पालकी तो मँगवा, मैं अभी राजमहलको जाती हूँ। वह मुआ डूँगर तो हत्यारा है, सारे नगरमे त्राहि त्राहि मचा छोड़ता है। वह पीछे पड़ गया तो बस! तुम कहाँ जा रहे हो?" सेठानीने पूछा।

"मुझे अभी बहुत काम हैं, यह तो, अपना समझ कर आपसे कह रहा हूँ। मेरा नाम न लीजिएगा।"

"नहीं। नहीं। परन्तु उदाजी, यह मेरे कर्णफूल देखे, अभी जो नये मोती आये थे, वे इसमें जड़वाये गये हैं। वह कौन-सा नगर है ? अरब या ऐसा ही तो कुछ नाम है ? भीमदेव महाराजके समय जो मुए यवन आये थे, उन्हींके नगरसे ये नये मोती आये हैं।"

" वाह ! बहुत सुन्दर बने हैं; परन्तु अब आप जाइए। मैं जा रहा हूँ।"

" अच्छा बेटा, जाओ।"

मानकुँअर महलमें जानेकी तैयारी करने लगीं।

२४—जय सोमनाथ !

उदा वहाँसे मोतीचौककी ओर मुड़ा तो देखा कि खलबली मची हुई है। सभी व्यापारियोंकी टोलियाँ हाथ बढ़ा बढ़ा कर बातें कर रहीं हैं। किसीने दूकान नहीं खोली थी। कोई कह रहा था, 'सेठ शान्तिचद्र मर गये।' कोई कहता था, 'मुंजाल मारे गये।' कोई कहता, 'मीनलदेवी पृथ्वीमें समा गईं।' परन्तु यह सभी कह रहे थे कि पाटनमें कोई भी राजा या रानी नहीं है, अब दुनियाका अन्त आ गया।

एक धनी सेठ दूकानके चबूतरेपर खड़ा खड़ा कह रहा था " अरे, भाइयो, यह तो मैं पहलेसे ही जानता था। मैंने तुमसे क्या कहा था? एक तो मुंजाल मेहता ही चिकने कोमल मिजाजके थे और फिर ये सेठ शान्तिचद्र तो सबको यति बनाकर बिठा देनेवाले हैं। अब तुममें पानी ही कहाँ रहा है? पानी हो तो इनकी मक़दूर ही क्या थी जो चन्द्रावतीका सौभाग्य यहाँ राज करता! मरो, मरो, तुम सब!"

उदाजीने उस झुंडमे प्रवेश करके कहा, " परन्तु तिलकचन्द, इन सब बातोंमें क्या सार है? यह बतलाओ कि अब किया क्या जाय?"

चारों ओरसे सब लोग बोल उठे, " ठीक कह रहे हैं; उदा सेठ ठीक कह रहे हैं, बातें तो सब कर रहे हैं; परन्तु किया क्या जाय?" इतनेमें और भी टोलियाँ इस ओर आ गईं।

" भाइयो, देखो, मैं तो गरीब आदमी हूँ और मेरी बात भी छोटी है। यदि आपमें बल हो, तो आज पाटनको अपने अधीन कर लो, नहीं तो फिर सेठ शान्तिचन्द्रके हाथमे रहनेकी अपेक्षा तो यह अच्छा है कि दरवाजे [illegible] कर बैठ जाओ और फिर जिसे आना हो वह चला आये।"

" चला कैसे आये?" तिलकचन्द भड़क उठा " तू तो [illegible] है। हमारे पाटनमे पराई सेना आवे, क्या बात करता है।"

उदाने कहा, "तो फिर करो केसरिया ! मैं कब मना करता हूँ ? दरवाज़े बन्द करके लड़नेको तैयार हो जाओ ! बोलो, जय सोमनाथ !"

अनेक लोगोंने सोमनाथके जयनादका साथ दिया ।

शूर सोलंकियोंकी इस रण-हाँकमें पाटनका गौरव समाविष्ट था । गिरनारके गृहरिपुका उच्छेद करके सोमनाथ पाटनको अधीन करनेके लिए मूलराज सोलंकीने जब पट्टनी लोगोंको प्रेरित किया था, तब यही हॉक सारे सोरठमें गूँज उठी थी । तबसे अनहिलवाड़ पाटन और सोमनाथ-पाटन एक दूसरेके हो गये थे ।

'जय सोमनाथ'की गर्जनासे पट्टनी लोगोंने सोरठको अधीन किया था; महमूद ग़ज़नीकी असंख्य सेनाका नाकों दम करके, अनहिलवाड़ और सोमनाथकी रक्षा करनेके निष्फल प्रयत्न किये थे । महमूदके चले जानेपर सोलंकियोंको फिर गुजरातका राजा बना दिया था । मालवा, सोरठ, थॉड, लाट आदि प्रदेशोंको कंपित किया था । यह हॉक पट्टनियोंके लिए श्वास और प्राणके समान थी । उसे सुनकर उनका रोऑं-रोऑं खड़ा हो जाता था, हाथोंमें अथाह बल आ जाता था, मस्तिष्कमें वीरताका जोश उमड़ पड़ता था; पुरुष तलवारें लेकर युद्धके लिए तत्पर हो जाते, कायरोंमें हिम्मत आ जाती, वीरांगनाएँ अपने स्वामियोंको विजय-तिलक करके उनके पश्चात् सती हो जानेका निश्चय किया करतीं ।

उदाने लोगोंके उत्साहसे लाभ उठाकर उसी उत्साहकारी हॉककी यादको ताज़ा कर दिया ।

सबके सब एक साथ कह उठे "हॉ, हॉ, अवश्य तैयार हो जाओ, 'जय सोमनाथ !" परन्तु यह सोच लो कि करना क्या है ?"

सबके शान्त हो जानेपर उदाने कहा, "देखो भाइयो, मुझे सेठ तिलकचन्दकी बात ठीक मालूम होती है । अपने धन-दौलतको तो लगा दो ठिकाने, शान्तिचन्द्र सेठको करो सीधा, और हो जाओ लड़नेको तैयार ! हमारे रहते किसका सामर्थ्य है कि पाटनमें प्रवेश करे ?"

चार-छः आदमी बोल उठे, "ठीक कहते हैं, किसकी सामर्थ्य है ?"—

इतनेमें एक नया मनुष्य आगे आया और बोला, "हम तो पहलेसे ही कहते थे । पट्टनी लोगोंको अपनी रक्षा करना नहीं आता तो हम क्या करें ? हम लोगोंमें ज़रा भी पानी नहीं रह गया है । जब गज़नीके राक्षस आये, तब हमारे

पूर्वजोंने,—बाप-दादोंने डेढ़-डेढ़ महीने तक पाटनकी रक्षा की, और अब हम यों ही उसे हवाले कर दें ? चलो राजमहलमें। पहले सेठ शान्तिचन्द्रको सीधा करें। मुंजाल मेहता नहीं हैं, नहीं तो शान्तिचन्द्रको जातसे निकाल देते। वह समझता क्या है ?" इतनेमें दो-एक वणिक दौड़ते-हाँफते हुए आ पहुँचे और चिल्लाने लगे, "अरे बापरे ! मर गये !"

वहाँ खड़े सभी वणिक घबरा गये। कईके मुख सूख गये; पर जाएँ कहाँ ?

उदाने आगे बढ़कर पूछा, "पर बात क्या है ?"

एक वणिकने हाँफते-घबराते हुए कहा, "हुआ क्या ? वह फ़ौज आ पहुँची, भागो, नहीं तो मारे जाओगे ?"

अधिकांश लोग चारों ओर भागनेका मार्ग खोजने लगे।

"परन्तु किसकी फ़ौज है, यह तो कहो ?"

"अजी, वह जो यमराजकी-सी गदा घुमाता हुआ आ रहा है, उसकी।" कहकर उस वणिकने मार्गकी ओर अँगुलीसे संकेत किया। आगे आगे डूँगर नायक भीमसेनके अवतारके समान लोहेकी गदा घुमाता हुआ आता दिखलाई पड़ा। उसके पीछे सौ-दो सौ आदमी और थे। किसीके हाथमें तलवार थी किसीके हाथमें भाला और कुछ लोगोंने, कुछ न मिलनेके कारण लकड़ीके मुग्दर ही हाथमें ले रखे थे।

एक एक करके सभी घबरा गये। उनमेंसे बहुतसे लोग अच्छे साहसी और कसरतबाज थे; पर हाथमें कोई हथियार न होनेके कारण किसीको नहीं सूझा कि इस समय किस प्रकार अपनी रक्षा की जाय। सब लोग खड़े होकर यही विचार करने लगे कि कहाँ छिपा जाय।

"ठहरो, घबराओ नहीं। यह तो अपने डूँगर नायक हैं। तुम सब खड़े रहो, मैं अकेला जाकर पूछ आता हूँ। संभव है, वह भी—" कहकर उदा वहाँसे कुछ आगे बढ़ गया।

* * *

अब यह देखना चाहिए कि डूँगर नायक कैसे आया ? जब उदा उसके यहाँ गया, तब उसके मस्तिष्कमें एक ही विचार रह गया, 'डूँगर नायकके जीते-जी पाटनमें श्रावकोंका राज्य हो रहा है !' सारा जीवन उसने वणिकोंका ऋण चुकानेमें बिताया था। इसी कारण अक्सर उसके हृदयमे उन्हें सतानेकी लालसा

उठ खड़ी होती थी। देवप्रसादका अनुयायी होनेसे श्रावकोंके प्रति उसके हृदयमें बड़ा तिरस्कार था, परन्तु, फिर उनकी आवश्यकता प्रतीत होने लगनेके कारण वह लालसा पूर्ण नहीं हो पाती थी। इस समय उसका रक्त सचमुच ही खौल उठा। —'पाटनपर चन्द्रावतीकी सत्ता!' उसके नशेमें चूर मस्तिष्कमें स्पष्टतया यह समा गया कि इस समय उसीके कारण पाटन खड़ा है, और वह उसकी सहायताको न दौड़ेगा, तो और कौन दौड़ेगा? ज्यों त्यों करके वह उठा और उसने कुछ दंड खींच डाले और अपनी गदा लेकर घुमा देखी। ज्यों ज्यों कसरतके शौकीनका रक्त धमनियोंमें चक्कर काटने लगा, त्यों त्यों उसका मन भी उलटे मार्गपर जाने लगा। उसे विश्वास हो गया कि चन्द्रावतीकी सेना कोटके उस तरफ़ पड़ी हुई है और शान्तिचन्द्र दरवाजा खोलने जा रहा है। उसे यह भी प्रतीत हुआ कि प्रत्येक श्रावकको बिना कैद किये पाटनकी जय-जयकार हो ही नहीं सकती। अपने शिष्योंके आनेके पहले ही वह अपनी गदा सँभालकर नीचे उतरने लगा।

डूँगरसिंह बड़ी सहानुभूतिके स्वरमे बोला, "सती! सती!!"

'सती' चौक पड़ी। उसने इतने सम्मानसे पुकारनेवाले पतिकी ओर घबड़ाहटसे देखा और उसने सोचा, कहीं पागल तो नहीं हो गये? "क्यों, क्या है?"

"सती! मैं रणक्षेत्रमे जा रहा हूँ पाटनके कंगूर अखण्ड रखनेके लिए। बच्चेको सँभालना।"

सतीने समझा कि कोई नई धुन समा गई होगी, "अच्छी बात है, जल्दी लौटना।"

"न आया, तो उस भवमें मिलूँगा।" कहकर, कहाँ जाना है, इसका विचार किये बिना ही डूँगर नायक बाहर निकल पड़ा। सामने अखाड़ेसे सात-आठ राजपूत आते हुए मिले।

"नायकजी! कहिए क्या काम है?"

"कायरो! चूड़ियाँ पहनकर बैठ रहो। अपना घर-द्वार लुटवानेके लिए रख छोड़ा है, क्यों?"

"ऐं, बात क्या है, कुछ कहिए तो?"

"चन्द्रावतीकी सेना नगरसे बाहर पड़ी है, मीनलदेवी चन्द्रावती गई हैं।"

"क्या कह रहे हैं! पाटनमे पराई सेना?"

"शान्तु मेहता शामको तुम्हें कैद करा देगा। बैठे रहो हरामखोरो! अब

श्रावकोंके घर पानी भरना, पानी ! "

" अजी, कहीं यह भी हो सकता है ? "

" हो क्या सकता है ? हिम्मत हो, तो चलो मेरे साथ ! सारे दरवाजे बन्द कर दें। पाटनपर पराये लोग चढ़ आवें, और एक भी राजपूत बच्चा खड़ा न हो ? मैं तो मर जाऊँगा, या मार डालूँगा। " कहकर नायक गदा घुमाने लगा " है कोई माँका लाल मेरे साथ ! सारे श्रावकोंको पकड़कर, बाँधकर मार डालेंगे, देखें चन्द्रावती कैसे आती है ? "

श्रावकोंको पकड़कर, बाँधकर मार डालनेकी योजना सबको पसन्द आई। " हाँ, हाँ, चलो, चन्द्रावती कैसे आती है ? "

" चलो, चलो, लक्ष्मण रावत, निकलो बाहर ! "

" कौन, डूँगर ! क्यों, क्या बात है ? " एक वृद्धने खिड़कीसे बाहर सिर निकालकर पूछा।

" पाटनमें परदेशी घुस रहे हैं, चलो उन्हें निकाल भगायें। दादा भीमदेवका समय आ गया है। बोलो लड़को, जय सोमनाथ ! "

" जय सोमनाथ ! " कहकर सब आगे बढ़े और जिससे जो हो सका, जिसे जो मिला, हाथमें ले लिया।

रास्तेमे आगे बढ़ते हुए कोई हँस पड़ा, किसीने कहा, " माना कोठारी डूँगरसिंहकी हँसी उड़ा रहा है, कहता है कि इस पागलने क्या करना शुरू किया है ? डूँगरसिंह यह सुनकर विकराल बाघकी भाँति घूम पड़ा, " कौन कह रहा है मैं पागल हूँ ? वह कौन कायर है जो घरमे छिपा है ? "

नीच दरजेके राजपूतोंमे माना कोठारी डूँगरसिंह नायकका विरोधी था। डूँगर उसपर जल रहा था; अतएव उसका नाम सुनते ही उबल पड़ा।

" माना कोठारी नामर्द है ! " डूँगर चिल्ला पड़ा और एकत्र हुई भीड़के साथ वह बगलकी गलीमें घुसकर कोठारीके घरकी ओर बढ़ा। लोगोंमें कोलाहल मच गया। डूँगर नायककी फ़ौज क्षण क्षणमें बढ़ने लगी।

" माना ! माना ! पाटनपर बाहरी लोग चढ़ आये हैं, और तू इस प्रकार बैठा है ? "

बेचारे माना कोठारीको कुछ भी पता नहीं था। वह चैनसे चबूतरेपर बैठा हुआ हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। परन्तु डूँगर नायकके यह अशिष्ट शब्द सुनकर उसने

हुक्का अलग रख दिया और आँखे निकालकर उपेक्षा भावसे कहा, ' जो आ रहा है उसे आने दे, तू क्यों बकवास कर रहा है ! बैठ घरमें, तेरा क्या जा रहा है ? ”

डूँगर जोरसे चिल्ला पड़ा, “ कायर, पट्टनी बना है ! थू है तेरे मुँहपर ! ” और उसने थूक दिया। उसके साथ साथ और दस-बारह जनोंने थूका। “कृतघ्न ! कुत्ते ! चाडाल ! गुलाम ! ” इस प्रकार अनेक विशेषण मानाको दे दिये गये।

लोगोंपर पानी चढ गया। माना उठ खड़ा हुआ और पास पड़ी हुई तलवार उठाने लगा। देखते देखते चार-छः जनोंने उसे पकड़ लिया। उसका हुक्का न जाने कहाँसे कहाँ चला गया, “ पाटनमे परदेशी लोगोंको बुलायेगा ? यह चंद्रावतीका आदमी है, मारो, पकड़ो ! ” कहकर लोगोंने उसे पकड़कर बाँध लिया और साथ ले लिया।

इस हुल्लड़से लोग भी बहुत जुड़ गये और आवेश भी बढ़ गया। इस प्रकार हो-हल्ला मचाते हुए डूँगर नायककी फ़ौज मोती चौकमें आ पहुँची।

* * *

सामने उदा आ खड़ा हुआ, “ क्यों नायकजी ! शाबास, बहुत ठीक है ! ”

“उदा सेठ ! बैठे क्या हो ? पाटनके किनारे तो परदेसी लोग पड़े हुए हैं, और तुम बाते कर रहे हो ? ” डूँगरने इस प्रकार कहा जैसे उदासे कोई नई बात कही हो।

“ परन्तु तुम कहाँ जा रहे हो ? ”

“ सब दरवाज़ोंपर कब्जा करना है और अधिक कुछ हुआ तो केसरिया। क्यों लड़को, बोलो, जय सोमनाथ ! ”

लोगोंने उत्तर दिया, “ जय सोमनाथ ! ”

“ परन्तु तुम्हारे सेठ क्या कर रहे हैं ? ”

“ सब अपना सिर देनेको तैयार हैं। उन्हें भी साथ ले लो। ”

“ श्रावकोंने विश्वासघात किया तो ? ”

एक व्यक्तिने पीछेसे सिर उठाकर उत्तर दिया, “ बैठ, बैठ, बकवादी ! ”

डूँगर नायकने पीछे घूमकर कहा, “ तुम क्या जानो ? ये लोग चाहे जो हों, पर हैं पट्टनी ! ”

उदाने कहा, “ ठीक तो है ! परन्तु पहले महलमें जाकर तो देख लो, वहाँ न जाने क्या ख़बर मिले। ”

" अरे हाँ, वहीं जा रहे हैं । " डूँगरनायक राजमहलके सामने वाले चौकमें सारे जीवनमे एक ही दो बार गये थे, और वह भी नौकरके रूपमें, या एक बार अपराधमें पकड़े गये थे तब । इस समय पाटनके रक्षककी भाँति जाना उनके लिए सीधे स्वर्गमे जानेके समान था "चलो राजमहलमे ! देखें वह शान्तु मेहता क्या कर रहे हैं ! हाँ, क्या तुम्हारे सेठ भी चल रहे हैं । "

" हाँ, हाँ अवश्य । " कहकर उदा लौट आया और बोला, "भाइयो, डूँगर नायक भी पाटनकी टेक रखनेके लिए आये हैं । चलो, हम सब भी राजमहल चलें और देखे कि क्या बात है ? "

" हाँ चलो ! " कहकर अधिकांश लोग तैयार हो गये और डूँगरसिंह नायक की फ़ौजके साथ सभी पट्टनी लोग राजमहलकी ओर चले । धीरे धीरे लोगोंकी भीड़ बढती गई । चारों ओर हल्ला मच गया कि पाटनपर परदेसी लोग चढ आये हैं । धीरे धीरे घोड़ोंपर बैठकर, पालकीपर सवार होकर, बड़े बड़े सामन्त, सेठ-साहूकार और जागीरदार लोग भी आने लगे । कुछ देरमें राजमहलके सामने अपार भीड़ जमा हो गई ।

इतनी थोडी देरमें इस प्रकार खलबली मचनेका मूल कारण यह था कि लोगोंमें अपने शहरका अभिमान था । आपसमे चाहे जितने झगड़े हुआ करें, फिर भी पाटनके दुर्ग और पाटनके राजाको लोग दुर्जय समझते थे । यह अभिमान लोगोंमे संकटके समय गौरव और एकता प्रेरित कर देता था और इस दुर्जयताकी रक्षा करनेके लिए पट्टनी लोग अपने प्राण देनेसे भी न चूकते थे । मूलराजके समयसे ही पाटन उनके लिए संसारकी राजधानी था । वे लोग नगरको सजीव व्यक्ति समझकर उसकी चरणसेवाके लिए तत्पर रहते थे और उसके राजा, उसके सेठ, उसके धन,—इन सबकी अपेक्षा उसके गौरवकी ओर उनका ध्यान सदैव अधिक रहता था । मूलराज, भीमदेव और कर्णदेव उनके लिए पाटनके गौरवकी मूर्तियोंके समान थे । मुंजालके प्रति भी लोगोंके प्रेमका यही कारण था । उनके गुण-दोष, अभिमान, शक्ति आदि सब कुछ नगर सेठमें अद्भुत प्रकारसे व्यक्त होते हुए वे देखते और उसकी बड़ाई देखकर प्रसन्न होते थे । इस समय पट्टनी लोगोंका अपमान हुआ था और इसीसे वे बिफर गये थे । वे मानते थे कि पाटनकी नाक जानेके पहले दुनिया रसातलको चली जाय तो अच्छा ।

२५—सोलंकीकी खोजमें

पाटनके नागरिकोका जलूस हो-हल्ला मचाता हुआ राजमहलकी ओर चला। यह किसीको पता नहीं था कि किस असल कारणसे यह उपद्रव उठ खड़ा हुआ है। परन्तु यह बात सबके गले उतर गई कि मीनलदेवी पाटन छोड़कर चली गई हैं और शान्तिचन्द्र चन्द्रावतीका आदमी है, इसलिए विश्वास पात्र नही है। नगरके अनेक भटकते हुए बेकार लोग तमाशा देखनेको आ गये। कुछ लोग यह जाननेको आये, कि देखे, क्या हो रहा है। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरेसे कह रहा था कि मीनलदेवी रातको चली गई और चन्द्रावतीकी सेना नगरके बाहर पड़ी हुई है। कई लोग कहते कि यह सब उन्होंने अपनी आँखों देखा है। कुछ लोगोंको विश्वास था कि गुजरातकी राजधानी अब चन्द्रावती बन जायगी। कई लोगोने तो भविष्य ही कह डाला कि जब तक मीनलदेवी है तबतक पाटन सुखसे नहीं सो सकता। कुछ भी हो, पर आखिर है तो वह परदेशी।

पहले स्त्रियाँ ज़रा घबराईं, द्वार बन्द कर लिये, फिर जब कारण समझमें आ गया, तो खिड़कियोंमें निकल आईं। जब उन्हें पता लगा कि चन्द्रावतीकी सेना परकोटेके बाहर आ पहुँची है, तो उन्होंने भी अपने पतियोंको घरसे बाहर किया। इस प्रकार सब लोग राजमहलके बाहरवाले चौराहेपर आ पहुँचे। आस-पास रहनेवाले धनी सेठ और बड़े बड़े सामन्त लोग भी बाहर निकल आये। सभी लोग पूछ रहे थे कि क्या बात है? और यह सुनकर कि मीनलदेवी भाग गई हैं, आश्चर्य करते और उन्हींमे मिल जाते। इस प्रकार अनेक बडे बड़े अग्रणी लोग आ पहुचे। हालारके बूढे मंडलेश्वरने भी यह बात सुनी, और यह जानकर कि चन्द्रावतीकी सेना आ रही है, उबल पड़े। तुरन्त ही खेंगार घोड़ेपर सवार होकर आया और झुंडमे मिल गया। वह पुराने ज़मानेका बहादुर और जोशीला राजपूत था। यह देखकर उदा उसके पास पहुँचा।

"महाराज! देखा आपने? अब आप ही जैसोके हाथ पाटनकी लाज है।"

"अजी कहते क्या हो? शान्तु मेहताको अभी ठीक किये देता हूँ। देखता हूँ कि कौन पाटनपर चढ़कर आता है? सब लोग कहाँ,—राजमहलको जा रहे हैं? चलो," कहकर वह आगे हो गया।

उदाने बढ़ते हुए जुलूसपर दृष्टिपात किया। उसने देखा कि देखादेखी भले-

भले लोग भी बहुत बड़ी संख्यामें एकत्र हो गये हैं। वह जानता था कि डूँगर सिंह जैसोंका उत्साह क्षणिक है, अतएव, उसने अनुभव किया कि जबतक अच्छे लोगोंमे जोश उत्पन्न न होगा, तबतक कुछ नहीं हो सकता। उसे एक युक्ति सूझी। लोग इतने अधिक बढ़ गये थे, और उपद्रव इतना बढ़ चला था कि उसकी ओर किसीका ध्यान नहीं था। वह धीरे-से वहाँसे खिसका और बगलकी गलीसे होकर राजमहलके दरवाज़ेपर पहुँचा। दरवाज़ा और खिड़की बन्द थे। दौड़ते हुए वह पिछले दरवाज़े पहुँचा। वह भी बन्द था। उसने दरवाज़ेकी दरारसे देखा, तो अन्दर पहरेदार दिखलाई पड़ा।

"ऐ भाई! ऐ" कहकर उसने ज़ोरसे पुकार लगाई।

"कौन है?" कहकर पहरेदारने दरारसे देखा।

"मैं हूँ उदा। ज़रा खिड़की तो खोलो।"

"नहीं खुल सकती, महारानीजीकी कड़ी आज्ञा है।"

"अरे पागल! तुझे कुछ मालूम है, खोल, नहीं तो कचूमर बन जायगा।"

"क्यों! उदासेठ! तुम्हारी बुद्धि कहाँ चली गई? चले जाओ, अभी कोई जान लेगा तो रानीजी मेरा सिर उड़वा देंगी। बड़ी कठोर आज्ञा है।"

"अरे मूर्ख! रानी तो कभीकी पौबारह होगई हैं और सारा पाटन उलटकर यहाँ आ रहा है!"

"क्या कह रहे हैं?—महारानी—"

"अरे महारानीजी तो चन्द्रावती पहुँच गई! देखो, यदि कुछ रुपये चाहते हो तो कहो उतने दे दूँ, और कोई पद चाहते हो तो कल सबेरे ही दिला दूँगा। परन्तु इस समय खिड़की खोल दो।"

"परन्तु महारानीजी तो चली गई? अब क्या होगा?"

"पागल! त्रिभुवनपाल सोलंकी तो अंदर महलमें हैं? मुझे आने दो तो कल ही तुम्हें नायक बना दूँगा या कहोगे तो जागीर दिला दूँगा।"

"यह सब फिर होगा, अभी अपने कानकी ये बालियाँ दे दो।"

"अच्छी बात है, यह लो!" कहकर उदाने अपने कानकी मोती जड़ी बालियाँ जल्दी जल्दी निकालीं।

सिपाहीने धीरेसे खिड़की खोली, "देखो! हाँ, कल जागीर मिलनी चाहिए।"

"अवश्य।" कहकर उदाने भीतर प्रवेश किया और वह शीघ्रतासे लीलाधर

वैद्यके कमरेकी ओर गया। कर्णदेवकी बीमारीके कारण राजवैद्यजी भी कुछ दिनोंसे महलके अन्दर ही रहते थे, "लीलाधर काका!"

"कौन है?" एक स्त्रीका स्वर सुनाई पड़ा और उस युवतीने द्वार खोल दिया।

"कौन, मात्रा बहन हैं? तुम्हारे पिताजी कहाँ हैं? मैं हूँ उदा।"

"कौन, उदाजी? पिताजी तो त्रिभुवनपालके पास हैं?"

"त्रिभुवनपाल कहाँ है?"

"उस ओर, जहाँ वे—" कहकर नवोढा कुछ लजा गई।

"जहाँ वे पंडितजी खड़े हैं? इतनी बड़ी होकर लजा क्यों रही हो? पंडित गजाननकी तुम सिद्धि हो या बुद्धि?" कहकर उदाने ज़रा विनोद किया और शीघ्रतासे उस ओर चला गया।

"वाचस्पति, तुम्हारे ससुर कहाँ हैं? त्रिभुवनपाल सोलंकी कहाँ हैं?

"कौन है?" कहकर वैद्यने अन्दरसे उत्तर दिया; उदा वहाँ दौड़कर जा पहुँचा।

लीलाधर वैद्य निश्चिन्त होकर पान चबा रहे थे; सामल बारहट अपनी निस्तेज आँखें आकाशकी ओर किए हुए हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। और त्रिभुवनपाल पलंगपर बैठा था। कलके घावोंसे रक्त बहुत बहा था; पर सामल बारहटकी जड़ी-बूटियोंसे वह तुरन्त बन्द हो गया था और सारी रात चैनसे नींद आनेके कारण निर्बलता होते हुए भी तबीयत ठीक थी। उसका तेजस्वी मुख रक्तहीन फीकेपनसे आकर्षक प्रतीत हो रहा था। उसके बालमुखपर चिन्ताके चिह्न थे। उसके पिता चले गये थे, उसकी सखी कृतघ्न हो गई थी, अभीतक दिखी नहीं थी। और वह मीनलकाकीके हाथों बन्दीकी भाँति पड़ा हुआ था, परन्तु दृढतासे विचार कर रहा था।

"नमस्कार महाराज! प्रणाम वैद्यराज! रामराम बारहटजी!" कहकर उदाने कमरेमें प्रवेश किया। दो जनोंने उसकी ओर देखा और बारहटजीने उसकी ओर आँखें घुमाईं। त्रिभुवनके कपालपर बल आ गये।

"महाराज! क्षमा कीजिए। पाटनके नागरिकोंका एक निवेदन लेकर आपकी सेवामें आया हूँ।"

"मेरे पास! पाटनके लोगोंका निवेदन!" त्रिभुवनने चकित होकर पूछा। लीलाधर वैद्य और बारहट चुपचाप देखते रहे।

"जी हाँ, नगर-जनप्रतिपालकोंमें केवल आप रह गये हैं, लोग आपकी शरणमें ही आ रहे हैं।"

वैद्यने कहा, "उदा! पागल हो गया है क्या? क्या बक रहा है?"

"क्या आपको भी खबर नहीं है महाराज? महारानी मीनलदेवी और कुमार जयदेव पाटन छोड़कर कल रातको चन्द्रावती चले गये। बारहटजी, सुन क्या रहे हैं, चन्द्रावतीकी सेना पाटन सर करने आ रही है।"

लीलाधर कह उठा, "अवश्य यह उस षड्यन्त्रकारी यतिके दाव-पेंच हैं।"

"क्या कह रहे हो उदा सेठ?" कहते हुए त्रिभुवन उठ खड़ा हुआ। परन्तु अपनी अशक्तिके कारण वह तुरन्त बैठ गया। "पाटनपर चन्द्रावतीवाले चढ़ आवें?"

लीलाधर वैद्यने कहा, "अवश्य आवेंगे भैया! वह यति कभीसे वहाँके लोगोंको यहाँ ला रहा था।"

एकाएक सामल बारहट गरज उठा। "सोलंकी त्रिभुवनपाल! बैठे क्या हो?" उसने हाथसे हुक्केको छोड़ दिया और तनकर कहने लगा, "तुम सब बच्चे हो! प्रसन्न गई। अवन्ति और चन्द्रावतीका यहाँ प्रवेश हो रहा है! है कोई अपनी माँका लाल कि अब उठकर खड़ा हो? मैं तो कभीसे सोचे बैठा था।" बारहट सिर धुनने लगा।

"महाराज! सारे पाटनमें खलबली मची हुई है और सब लोग महलके बाहर आकर खड़े हैं, सब आपसे मिलनेको आतुर हैं। आप वहाँ चलिए।"

"मैं क्या करूँ, मेरे हाथ निर्बल हो गये हैं।"

बारहटजी बोले, "सोलंकी त्रिभुवन! सावधान! यह न कहो। तुम्हारे निर्बल हाथ सबसे सबल हैं। उठो, खड़े हो जाओ, बोलो, 'जय सोमनाथ!" कहाँ हैं सब लोग? जब यवन आये थे, तब मेरा भीमदेव उछलकर खड़ा हो गया था, यह नहीं सोचा था कि निर्बल हूँ या सबल!"

"बारहटजी! सब लोग बाहरके चौकमें होंगे और शान्तु सेठसे मिल रहे होंगे। सब लोगोंकी धारणा है कि वे भी चन्द्रावतीके हैं।"

"बारहटजी! चलिए, हम लोग देखें।"

"बारहटजीने कहा, "चलो, उठो, वैद्यजी, मेरे वीरके साथ हो जाओ, जीता रहे मेरा सोलंकी!—जय सोमनाथ!"

२६—बेचारा दंडनायक

ज्योंही सेठ शान्तिचन्द्र उठे, त्योंही उन्होंने मदन* की लाशको ठिकाने लगानेकी व्यवस्था की। कुछ सिपाहियोंको एकत्र करके मदनपालको श्मशान भिजवाया और उसी अँधेरेमें अग्निदाह करवा दिया। ×इसके अनन्तर दंडनायकने राजमहलके सभी दरवाज़ों और खिड़कियोंपर कड़ा पहरा बैठा दिया और सबेरेके स्यापेकी तैयारी की जिससे कोई जानने न पाये कि मीनलदेवी यहाँ उपस्थित नहीं है। और स्यापेमें आई स्त्रियाँ जब अपने अपने घर चली गईं, तब उन्हें कुछ चैन मिली। वे जल्दी जल्दी नित्य कर्मोंसे निबटे और अधीर हृदयको साहस बँधाने लगे कि दो दिन इसी प्रकार बीत जायेंगे, रानी लौट आयेंगी और सब ठीक-ठाक हो जायगा। अपनेको यह साहस बँधाते हुए भी किसीके पैरकी आहट उन्हें घबरा डालती थी। अन्तमें नित्य कर्मके लिए उतारे हुए वस्त्र उन्होंने फिर पहन लिये और इस प्रकार बैठ गये जैसे सोच रहे हों कि देखें अब क्या होता है।

कुछ देरमें द्वारपाल कहनेके लिए आया कि मुरारपाल मिलनेके लिए आये हैं। शान्तिचन्द्रने उन्हें तुरन्त बुलाया, "कहिये मुरारपालजी! कहाँसे लौट आये?" कमरेमें वे अकेले रह गये अतएव दंडनायकने पूछा।

"विखराटसे कुछ दूर गये होंगे कि मुझे लौटा दिया। यहाँ क्या हाल है?"

"यहाँ! यहाँ सब ठीक है।"

"कल सन्ध्या समय मुझे चाँपानेरी दरवाज़ेपर आनेके लिए कहा है। महारानीजी उसी समय आयेंगीं।"

"ठीक है, तबतक तो सब काम शान्तिसे चलता रहेगा, कोई बाधा नहीं उपस्थित होगी! परन्तु यहाँ यह ध्यान रखिएगा, कोई जानने न पाये कि महारानीजी आनेवाली हैं।"

"जी नहीं, यह कौन जान सकता है?" प्रसन्नका मुख हृदयमें रम रहा था, अतएव उसके विषयमें कुछ कहनेका साहस न करते हुए मुरारपालने कहा।

"ठीक है, तब कल सन्ध्यासमय दरवाज़ेपर भी आप ही जाइए। मैं जाऊँगा

---

* कर्णदेवका मामा, अर्थात् उदयामतीका भाई।

× पुराने समयमें भी यही होता और अब भी गाँवोंमें और नदीतटके नगरोंमें सूर्योदय होनेपर सूर्यनारायणकी साक्षीमें शवका अग्नि-संस्कार होता है।

तो लोगोमें खलबली मचेगी।"

"अच्छी बात है, आप ज़रा भी चिन्ता न कीजिए, कल सन्ध्या समय महारानीजीको सुरक्षित राजमहलमें ले आऊँगा। परन्तु दरवाज़ेपर चौकी पहरा—"

"हाँ, उसमें कोई अड़चन नहीं, वह तो है ही। बस, कलतक पाटन शान्त रह जाय, तो फिर कुछ चिन्ता नहीं।"

बाहरसे एक चोबदार आया; अतएव शान्तिचन्द्रने सिर उठाकर ऊपर देखा और ज़रा कठोरतासे पूछा, "क्या काम है?"

"काम क्या है? मैं आई हूँ।" कहकर मानकुँअरदेवीने अन्दर प्रवेश किया और कहने लगीं, "चोबदार, बाहर जाओ। आखिर तुम क्या करने बैठे हो? मुझसे कुछ कहते तक नहीं?"

शान्तिचन्द्रने बड़े प्रयत्नसे अपने गौरवकी रक्षा की, "मुरारपालजी! अब आप प्रसन्नतासे जाइए। वह बात भूल न जाइए।"

"अच्छी बात है, नमस्कार।" कहकर मुरारपाल वहाँसे चला गया। उसने देखा कि अब पति-पत्नीकी बातचीतके समय खड़े रहना ठीक नहीं है। वह बाहर निकला और नीचे उतरने लगा। जाते जाते, बगलके छज्जेपर उसने तीन-चार युवतियोंको खड़े देखा। उनमेंसे एक कुछ परिचित-सी प्रतीत हुई, अतएव वह उस ओर घूम पड़ा। पर जिसका मुख कल साथ आई हुई लड़कीके समान प्रतीत हुआ, उसने तो घूँघट काढ़ा हुआ था। निराश होकर मुरारपाल रातके अनुभवका स्मरण करता हुआ अपने घर गया।

सेठ शान्तिचन्द्र मानकुँअरदेवीकी उग्रताको शान्त करनेका प्रयत्न करने लगे, "परन्तु है क्या? इतनी अधिक क्यों आकुल हो रही हो? हुआ क्या है?"

"होगा क्या? सारा नगर उलटकर तुम्हारे प्राण लेने आ रहा है। कुछ खबर है?"

दंडनायकका हृदय धड़क उठा। पूछा, "क्यों, नगर क्यों उलटेगा?"

"चन्द्रावतीके उस जतीको जो तुम यहाँ बुलाते हो, इस कारण! मीनलदेवी कहाँ हैं? तुम्हीं बताओ न?"

सेठ शान्तिचन्द्र अधिकाधिक घबराते हुए बोले, "अरे, ज़रा धीरे धीरे बातें करो, कोई सुनेगा?"

"कौन नहीं जानता कि धीरे बोलूँ? और कह क्या रही हूँ? सारा नगर

जानता है कि मीनलदेवी कल रातको भाग गईं और चन्द्रावतीकी सेना हमारे द्वारपर आकर पड़ी है।"

"कौन कहता है?"

"यह मुझसे छिपाओगे तो कैसे काम चलेगा? मैं सारे नगरका हाल जानता हूँ।"

"देखो, ज़रा मेरी बात तो सुनो।"

कमरपर हाथ रखकर सेठानीजीने कहा, "हाँ, कहो, देखें क्या कहते हो?"

"तुम्हींसे कहता हूँ, किसीसे कहना मत। महारानीजी यहाँसे सबका समाधान करनेके लिए गई हैं, क्या समझीं? और कल सन्ध्या समय लौट आयेंगीं, इसलिए घबरानेका कोई कारण नहीं है।"

"और चन्द्रावतीकी सेना? वह तो तुम्हारी सगी मालूम होती है, क्यों?"

"परन्तु कहाँ है चन्द्रावतीकी सेना? किसीने गप उड़ा दी है।"

"नहीं नहीं जी, तब सब लोग जो कह रहे हैं वह झूठ है, और तुम ही एक राजा हरिश्चन्द्र हो! अब तुम घर चलो, घर। मुझे तो यह दंडनायकी वायकी कुछ नहीं चाहिए। अब बुढ़ापेके समय सफेद बालोंमें धूल डलवानेको बैठे हो?"

शान्तिचन्द्रने ज़रा कठोर होकर कहा, "सेठानी! मेरा कर्तव्य इस समय पाटनकी रक्षा करना है, समझीं? और इस पैंसठ वर्षकी उमरमें अब मैं पीठ दिखानेवाला नहीं हूँ। महारानीजीकी आज्ञाका अनादर मैं कभी नहीं कर सकता!"

"नहीं, अनादर क्यों करोगे? तुम तो अपने बापदादोंकी आबरू जो जाने दोगे। सारा नगर यहाँ उलट कर आ जायगा, तब क्या करोगे? कोई चन्द्रावतीकी सेनाको घुसने देगा? तुम्हारी अपेक्षा तो एक रास्ते चलतेका हृदय उबल पड़ता है। अपने नगरमें परदेशी सेना?"

"परन्तु कहा किसने? व्यर्थ ही ऐसी बातें क्यों कर रही हो? और लोग आयेंगे तो मैं जवाब दे लूँगा!"

"दिया, दिया, रहने दो। क्या उत्तर दोगे?"

"कहूँगा कि जो हो सके, कर लो। किसीकी सामर्थ्य नहीं कि राजमहलमें प्रवेश करे। मुझे अपने कर्त्तव्यका पालन करना है। चोबदार! यहाँ नायक कौन है?" इसी समय लोगोंका हो-हल्ला सुनाई पड़ा, "अरे! पर यह आवाज़ कैसी है? सरस्वतीमें इस समय यह बाढ़ कैसे आ गई है?" कान लगाते हुए शान्तिचन्द्रने पूछा।

" नहीं, नहीं, यह तो वे सब लोग हैं, " सेठानाजीने कहा।

दूरसे आती हुई, बढ़ती हुई गंभीर, किन्तु भयंकर अस्पष्ट आवाज़ सुन पड़ी। शान्तिचन्द्र घबड़ाया। उसने जान लिया कि यह उद्वेलित सागर जैसी आवाज़ किसकी है ! ऐसी हृदयवेधक, गंभीर गर्जना एक महाशक्तिके दो ही रूप कर सकते हैं : एक सागर और दूसरा समाज। ये रूप अधिकांशमे समान प्रतीत होते हैं। उनकी अथाह गहराईमे रत्नोंकी चमक, बड़वानलकी भयंकर आग, दुःखदायक मगर-मच्छोंकी रक्त-पिपासु रस्साकशी समाविष्ट है,—यह मानो कविलोग लिख गये हैं। गौरवशीला शान्तिके समय आनन्दकी तरंगे दोनोंपर लहराने लगती हैं, ऐसा मालूम होता है कि आह्लादजनक संगीतकी ध्वनि है। क्षण ही भरमें हवाका रुख बदलते ही शान्ति नष्ट हो जाती है, और ऐसी भयंकर गर्जना शुरू हो जाती है कि बड़वानल और मगरमच्छोंका प्रभाव विस्मृत हो जाय। राक्षसीक्षुधाकी सन्तुष्टिके लिए यह शक्तियाँ आगे बढ़ती हैं। जो उनके निकट पहुँचता है, उसे वे निगल जाती हैं और मनुष्यकी अपनी बुद्धिद्वारा खड़े किये हुए रेतीके छोटे मोटे ढेर पल-भरमे बह जाते हैं।

पाटनकी हवा बदल गई थी। आनन्दकी लहरियोंने प्रचंड रूप धारण कर लिया था। रानी, यति और शान्तिचन्द्रकी रची हुई योजनाओंको भूमिसात् करनेके लिए समाज आगे बढ़ रहा था। उस समाजकी प्रलयंकरी तरंगोंने ताडव-नृत्य आरंभ कर दिया था और उस नृत्यका गान सुनकर शान्तिचन्द्र विचारमे पड़ गया था। उसने अपने सीधे-सादे जीवनमें ऐसे अवसर अधिक नहीं देखे थे। भीमदेवके यौवन-कालकी घटनाएँ और गज़नीके मुहम्मदकी चढ़ाईके समयकी स्थिति उसने केवल सुनी भर थी और उसकी धारणा हो गई थी कि पट्टनी लोग अब बड़े सीधे-सादे हो गये हैं। इस समय यह ध्वनि क्या सूचित करती है ? इसका परिणाम क्या होगा ?—इन सब प्रश्नोंका रहस्य समझनेके योग्य राजनीतिक पटुता शान्तिचन्द्रमें नहीं थी।

" चोबदार ! चोबदार ! कल्याण नायकको बुलाओ। "

" जी, वे यहीं हैं। " कल्याण नायक अन्दर आ गया।

" कल्याण ! यह सब क्या सुनाई पड़ रहा है ? "

" महाराज, मैं भी यही विचार कर रहा हूँ। लोगोंकी चिल्लाहट-सी प्रतीत

होती है।"

"नायक, तुम स्वामि-भक्त हो। हम सबकी परीक्षाका समय आ गया है। कल रातको, तुम्हें मालूम तो हो गया होगा, कि महारानीजी कुछ आवश्यक कार्यसे पाटनसे बाहर गई हैं। उनके लौट आनेतक हमें राज्यकी सब प्रकार रक्षा करना है। इसलिए, जो कुछ हो वह ठीक है; परन्तु तुम राजमहलके अगले दरवाज़ेपर रहो, और समय आनेपर उसे बन्द करनेके लिए भी तैयार रहो! मैं भी तयार होकर अगले चौकमें आता हूँ।"

"परन्तु महाराज! हमारे सैनिकोंके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता। कल रात्रिके उपद्रवके अनन्तर सबको शंका हो गई है कि महारानीजी यहाँ नहीं हैं। और इससे सब लोग बदलसे गये हैं।"

"कोई हर्ज नहीं, तुम दरवाजेको सँभालो। मैं सबको अभी समझाये देता हूँ। सेठानी! तुम्हें बाहर जाना हो तो जाओ। मैं यहीं रहूँगा।"

मानकुँअरदेवीने अपने वृद्ध पतिकी दृढता देखी और उसकी प्रशंसा की, "और क्या! इस उमरमें मैं तुम्हे यहाँ छोड़कर चली जाऊँगी, क्यों?"

"तो ठीक है।" कहकर शान्तिचंद्र तैयार होने लगे और कल्याण नायक दरवाजेके पहरेपर चला गया।

मानकुँअरदेवी चुपचाप बाहर चली गई।

धीरे धीरे आवाज़ अधिक गम्भीर और स्पष्ट होती गई। 'जय सोमनाथ!' के नाद सुनाई पड़ने लगे। राजमहलकी ऊँची खिड़कीसे शान्तिचन्द्रने सामने बढ़ा आता हुआ जन-प्रवाह देखा और उसके बल, उसकी दिशा और उसके नायकोंको पहचाननेका प्रयत्न किया। उसे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे दूरसे एक महानदी पर्वतसे पहली बार निकलकर सागरसे मिलने जा रही हो। दंडनायक कुछ उलझनमे पड़ गया और सिरसे हाथ टेककर बैठ गया। कोई पहरभर दिन चढ़ा होगा कि कल्याण नायक दौड़ता हुआ आया।

"महाराज, मंडलेश्वर खेंगारजी आये हैं और आपसे तथा महारानीजीसे मिलना चाहते हैं।"

मन ही मन घबराते हुए पर बड़े प्रयत्नसे गम्भीर होकर शान्तिचन्द्रने पूछा, "तुमने क्या कहा?"

"मैंने कहा कि महारानीजी शोकके कारण किसीसे नहीं मिलतीं और सेठ

शान्तिचन्द्रजी ध्यानमें बैठे हैं।"

"तब?"

"तब उन्होंने कहा कि जबतक सेठ खाली हों, तबतक मैं बैठूँगा। अतएव विवश होकर मैं उन्हें अन्दर ले आया हूँ और नीचे सभाभवनमें बिठा दिया है।"

"ठीक है, मैं आ रहा हूँ। हमारे पास सैनिक कितने हैं?" विचारमग्न दंडनायकने पूछा।

"लगभग डेढ़ सौ होंगे।"

"परन्तु उपद्रव होनेपर हमारी आज्ञाका पालन करनेवाले कितने होंगे?"

"ऐसे तो पचास-साठ निकलेंगे।"

"अच्छी बात है, बाकी सब लोगोंको इसी समय किसी बहाने राजमहलसे बाहर कर दो। पिछले दरवाज़ेसे, समझे? हमारे यहाँ और आवश्यक सामग्री तो है?"

"जी हाँ।"

राजमहल केवल महल ही नहीं था। उस समयके राजमहल उपद्रवोंके समय राजाओंकी रक्षा करनेवाले छोटे-मोटे दुर्ग से हुआ करते थे और उनमें सब प्रकारकी सुविधा रहती थी। अतएव, कभी किसी विपक्षीके द्वारा घेरा भी पड़ जाए तो वह सह लिया जाए, ऐसी शक्ति उनमें रखी जाती थी।

"तब ठीक है, तुम चार-छः विश्वास-पात्र सैनिकोंको अगले दरवाज़ेपर रखो और यह प्रबन्ध कर दो कि बिना मेरी आज्ञाके दरवाजे न खुलें।" कहकर शान्तिचन्द्र नीचे उतर गये। सभाभवन विशाल, स्वर्णजटित और शानदार था। उसके एक कोनेमें मंडलेश्वर खेंगार अधीरतासे खड़े हुए अपनी सफेद मूछोंपर ताव दे रहे थे।

शान्तिचन्द्रने पूछा, "कहिए मंडलेश्वरजी! इस समय कैसे पधारे?"

"मैं महारानीजीसे मिलना चाहता हूँ।"

"महारानीजी तो शोकमें हैं, वे कैसे मिलेंगी?" 'महारानीजी' पर ज़रा भार देते हुए दंडनायकने कहा।

"कोई हर्ज़ नहीं, अन्दरके कमरेमें बैठकर ही बातें कर लेंगी।"

"परन्तु, ऐसी क्या ज़रूरत आ पड़ी है? इस समय वे मिलेंगी, ऐसा तो नहीं जान पड़ता।"

"क्यों?"

" महारानीजीकी कड़ी आज्ञा है कि कोई उनसे मिलने न आये।"

-" ठीक है, तब कुमार जयदेव तो शोकमें नहीं बैठे हैं। वे कहाँ हैं?"

" परन्तु, ऐसा ज़रूरी काम क्या है?" -

" देखिए सेठ शान्तिचन्द्रजी, सब लोग कह रहे हैं कि महारानीजी और कुमार जयदेव भाग गये हैं, और इसका मुझे निश्चय कर लेना है।"

" खेंगारसिंहजी, अभीतक आप महाराज कर्णदेवके ख़ास मित्रोंमें रहे हैं, इस समय आप मित्रतासे आये हैं या शत्रुतासे?"

" सेठजी, महाराज कर्णदेवका पुत्र मेरे माथेका मुकुट है। परन्तु इससे कहीं मैं अपने पाटनकी टेक जाने दूँगा? कुमार जयदेवको यहाँ बुलाइए। मैं उनसे मिलकर तुरन्त चला जाऊँगा।"

" मंडलेश्वरजी, तब ज़रा सुन लीजिए। देवप्रसाद और मुंजाल मिलकर पाटन-पर चढ़ाई करनेवाले थे; अतएव उन्हें रोकनेके लिए, यह सब मुझे सौंपकर वे मधुपुर गई हैं।"

" सेठ शान्तिचन्द्र, खेंगारको धोखा देना चाहते हो?"

" नहीं, नहीं।"

" तब आप यह सब क्या कर रहे हैं? ऐसा क्यों नहीं कहते कि आपका वह यति रानीको चन्द्रावतीकी सेनाकी ओर ले गया है, और उस सेनाको लेकर रानीजी अब पाटनको सर करने आ रही हैं?"

" अजी जाइए भी; ऐसा करनेका कारण आखिर क्या हो सकता है?"

मंडलेश्वर खेंगारने कहा, " और कुछ नहीं, केवल मंडलेश्वरोंको घबराहटमें डालकर वशमें करना। सेठ शान्तिचन्द्र, यह सब दाव-पेच आपहीके हैं। बाहर सब लोग खड़े हैं, उन्हें आप क्या उत्तर देते हैं?"

" बाहर कौन हैं? किसलिए आये हैं?"

" कौन हैं? सभी कोई हैं। यह पूछिए कि कौन नहीं हैं? मेहताजी, मामला विकट है। महारानीने पाटनकी नाक काट ली है, अब पछताना होगा। यह सब लोग प्राण ले लेंगे।"

" खेंगारजी, रानी जो चाहें करें, वे राज्यकी स्वामिनी हैं। मैं तो लोगोंसे कहूँगा कि वे चुपचाप बैठे रहें।"

" सेठजी, पागल तो नहीं हो गये हो? चन्द्रावतीकी सेना आ खड़ी हो और

पट्टनी लोग बैठे रहें! यह तो मुँहसे भी मत निकालना। पाटनमें परदेशियोंका घुस आना कितना कठिन है सो आपको मालूम हो जायगा। कुछ भी हो जाय, हम तो दरवाज़े बन्द करके ही बैठेंगे और आप न मानेंगे, तो संकटमें पड़ जाएँगे।"

सेठ शान्तिचन्द्र उलझनमें पड़ गये। उन्हें यह समझमें नहीं आता था कि ऐसे मौकोंपर क्या करना चाहिए। उनके मनमें एक ही बात घूम रही थी कि इस समय लोगोंके आगे झुका न जाय, और रानीके आने तक सत्ता कायम रखी जाय। इसलिए वे बोले, "मंडलेश्वरजी, मेरा धर्म इस समय सत्ता कायम रखना है। बहुत होगा, तो मैं गढ़में बैठा रहूँगा। लोग बाहर जो चाहें, करें।"

"लोग अभी महलमें आ जायँगे सेठ शान्तिचन्द्रजी! आप हठ छोड़ दीजिए, लोगोंको शान्त कीजिए और पाटनके दरवाज़े हमें सौंप दीजिए, हमें और कुछ नहीं चाहिए।"

"भले ही आप जैसे अनेक मंडलेश्वर आ जायँ, मैं विचलित न हूँगा।"

"देखिए, मेरी सलाह ठीक है, मान जाइए। आप भी पट्टनी हैं। पाटनकी आबरूपर पानी मत फेरिए।"

"आप कह चुके? मेरा धर्म, मेरा कर्त्तव्य अपने राजाकी आबरू रखना है; और चन्द्रावतीके जैन आ जायँगे, तो वे कौन पराये हैं? सब हमारे ही तो हैं?"

पीछे लौटते हुए मंडलेश्वरने कहा, "आपके हो सकते हैं, हमारे नहीं। अच्छा, आप नहीं मानना चाहते, तो मैं यह चला। अब मुझे दोष न देना।"

"खेंगारसिंहजी, आप अब बाहर नहीं जा सकते। राजमहलके दरवाज़े बन्द हैं।"

खेंगार मगरूरीसे लौट पड़ा और भयानक स्वरमें बोला, "मुझे कैद करते हो?" उसने अपनी तलवारपर हाथ रखा।

"मंडलेश्वर, क्षमा करो, इस समय राजमहलके दरवाज़े नहीं खुल सकते।"

"उन सब लोगोंका क्या होगा जो बाहर राह देख रहे हैं?"

"भले ही राह देखें और अपने घर चले जायँ। खेंगारसिंहजी, मेरे जीवित रहते, इस समय महलके दरवाज़े नहीं खुल सकते।"

"क्यों?" एक कोमल, पर सत्तापूर्ण स्वर द्वारकी ओरसे सुनाई पड़ा। फीका और निर्बल, फिर भी क्रोधसे जलता हुआ तेजस्वी त्रिभुवनपाल द्वारमें खड़ा था। पीछे उदा उसकी पीठपर एक हाथ रखे हुए था। साथमें लीलाधर वैद्य और

सामल बारहट भी थे।

शान्तिचंद्र और खेंगार दोनोंने त्रिभुवनका भव्य रूप देखा और उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे अनचीता कोई देवदूत आ गया हो। वे चौंक पड़े।

सामल बारहटने ज़ोरसे कहा, "शान्तु मेहता, पाटनकी प्रजा बाहर खड़ी चिल्ला रही है, ये दरवाज़े क्यों बन्द कर रखे हैं? गो-ब्राह्मण-प्रतिपालकके द्वार कभी आपने बन्द सुने?"

शान्तिचन्द्रने क्रोधसे कहा, "बारहटजी, मैं किस किसको जवाब देने बैठूँ। मुझे राजकी रक्षा करना है। किसका सामर्थ्य है कि दरवाज़े खोल दे? जो खोलने जायगा, उसका सिर धड़से अलग कर दूँगा।"

त्रिभुवनपालने होठ चबा लिये। उसमें अधिक शक्ति नहीं थी, फिर भी बड़े प्रयत्नसे अपनेको शान्त रखकर वह बोला, "मेहताजी, मेरा सामर्थ्य है। कुमार जयदेव नहीं हैं, पिताजी नहीं हैं, अतएव आज पाटनकी लाज मुझे रखना है। मैं दरवाज़े खोलूँगा। क्या इस प्रकार स्त्रियोंकी भाँति छिपकर बैठा रहूँ?"

शान्तिचन्द्र और खेंगारने त्रिभुवनको पहचान लिया। एक घबरा गया, दूसरा प्रसन्न हो उठा। खेंगारने कहा, "कौन, मेरे मंडलेश्वरके पुत्र त्रिभुवनपाल? जीते रहो मेरे सोलंकी वीर!"

"पर, ज़रा मेरी बात भी सुनोगे?" शान्तिचन्द्रने नरम पड़कर गिड़गिड़ाते हुए कहा।

"नहीं। पाटनकी प्रजा बाहर खड़ी हो, और उसके स्वागतमें विलम्ब किया जाय? शान्तु सेठ, आपसे जो हो सके कर लीजिए, मैं दरवाज़े खोलता हूँ। देखता हूँ, मुझे कौन रोकता है?" कहकर त्रिभुवनपाल चौकमें आ गया। चबूतरेसे राजमहलका कोट कुछ ही दूर था और दोनों चौक किसी विशेष अवसर-पर सेनाके काम आते थे। खेगारसिंह साथ हो गया। शान्तिचन्द्र सेठकी दृढता चली गई। खेंगारको बन्दी करना सरल था, पर त्रिभुवनपालका क्या किया जाय?

"कुमार, मैं दंडनायक हूँ। तुम्हें मेरी आज्ञा शिरोधार्य करना चाहिए।"

त्रिभुवनपाल चुपचाप आगे बढ गया। खेगारसे अधिक कहनेकी आवश्यकता ही न थी। वह तेज़ीसे कोटके दरवाज़ेके समीप पहुँचा और कल्याण नायकसे कुछ बातचीत की। कल्याण नायक उलझनमें पड़कर शान्तिचन्द्रकी ओर घूमा, तो उसने निराशासे पराजित दंडनायकको नीचा मुख किये खड़े देखा। कुछ दूर

चौकके बीचमें त्रिभुवनपालको भी देखा। अवसर बड़ा विकट प्रतीत हुआ। वह भी चुपचाप खड़ा रह गया। खेंगारने खिड़की खोली और जैसे बड़ी कठिनतासे रोका हुआ प्रवाह एक छोटे-से मार्गसे बहने लगता है, उस तरह, छोटी-सी खिड़कीसे पाँच-पाँच सात-सात, दस-दस मनुष्य एक साथ अन्दर घुस आये। उन्होंने अरगला हटाकर दरवाज़ेको खोल दिया।

खुले हुए दरवाज़ेसे जन-समाज-सागरकी एक बड़ी-सी लहर अन्दर आई और सारे चौकमें फैलने लगी।

२७—निश्चय

धीरे धीरे लीलाधरका हाथ थामे त्रिभुवन लौट पड़ा और सभा-भवनमें आया। यहाँ पहुँचकर उसकी दृष्टि अन्दरके एक द्वारकी ओर घूम गई। वहाँ एक चिन्तातुर, परन्तु रमणीय और परिचित मुखारविन्द उसने देखा और चौंक पड़ा। उसने होठ दबा लिये, मुट्ठियाँ बाँध लीं और हृदयको कठोर कर लिया। प्रसन्न उमंगसे भरी हुई द्वारके बाहर निकलने जा रही थी; उसके आतुर नेत्र त्रिभुवनसे स्नेह-स्मितकी आशा किये हुए थे; परन्तु सामने कठोर पाषाण-प्रतिमाको देखकर वह झिझक पड़ी और जहाँकी तहाँ खड़ी रह गई। त्रिभुवन सुनहले सिंहासनके पास आ गया और गद्दीपर लगे तकियेके सहारे नीचे बैठ गया। उससे अधिक देर खड़ा न रहा गया।

नागरिकोंका समूह पहले तो एकदम अन्दर घुस आया; पर कुछ बढ़कर ठहर गया। ऐसे लोग जिनकी कोई प्रतिष्ठा न थी, राजमहलमें प्रवेश न कर सकते थे। इसलिए आज वे कुछ हिचककर स-सम्मान खड़े हो गये। सारा हो-हल्ला शान्त हो गया। राजमहल बहुत-से लोगोंके लिए देवमंदिरके समान था। अपने विनयहीन बर्तावसे उसकी शान्ति-भंग करनेका किसीको साहस न हुआ। डूँगर नायक जैसे लोग भी यह प्रयत्न करने लगे कि सब लोग अदबके साथ दूर खड़े रहें। केवल सामन्त, सेठ-साहूकार और अन्य प्रतिष्ठित नागरिक आगे बढ़े और सभा-भवनमें पहुँचे। डूँगर नायक आदि लोग द्वारके पास खड़े होकर देखने लगे कि अन्दर क्या होता है। उदाने त्रिभुवनसे अलग होकर, अच्छे अच्छे

नागरिकोंको भीतर ले आनेका काम अपने सिर ले लिया। कुछ ही समयमे सबको विश्वास होने लगा कि उदा मारवाड़ी वास्तवमें पाटनकी नाक रखनेवालोमें है। सब आ चुके, तब उदा धीरे-से त्रिभुवनपालके निकट जा पहुँचा और इसके पहले कि उसकी इस बेअदबीपर किसीका ध्यान जाय वह बड़े बड़े सेठों और प्रतिष्ठित व्यक्तियोंसे भी आगे जा बैठा और अपने दुपट्टेसे त्रिभुवनपर हवा करने लगा। लीलाधरने सबसे बैठनेको कहा; अतएव सब बैठ गये। अब तक शान्तिचन्द्रकी ऑखोंके आगे अँधेरा छा रहा था। त्रिभुवनपालसे कुछ दूर हाथपर हाथ रखे दंडनायक शोकातुर खड़ा हुआ था। उसके मनमे इसके अतिरिक्त और कोई चिन्ता नहीं थी कि रानीको वह क्या उत्तर देगा।

सबके शान्त हो जानेपर खेंगारने कहना शुरू किया, "त्रिभुवनपालजी, अब हमारे शिरोमणि आप हैं। यह एक ऐसा अवसर उपस्थित हो गया है कि कुछ करना ही होगा।"

"खेंगार काका, आप बड़े हैं, इस अवसरपर अपने पाटनकी लाज रखना आपके हाथ है। सेठ शान्तिचन्द्रजी, आप क्या कहते हैं?"

सेठ शान्तिचन्द्र इस तरह ऊपर देखते रह गये जैसे नींदसे जागे हों और बड़ी मेहनतसे उनके मुँहसे शब्द निकले।

"महाराज, कृपाकर मेरी भी सुन लीजिए, अकुला क्यों रहे हैं? इतने वर्षोंकी मेरी सफ़ेदीपर क्यों धूल डाल रहे हैं? पाटनके हितैषी जैसे आप हैं, वैसा ही मैं भी हूँ। मैं भी जीवन-भर यह प्रयत्न करता रहा हूँ कि सोलंकियोंका सूर्य तपता रहे। मेरी भी तो मानिए।"

दो-चार अगुए एक साथ बोल उठे, "क्या? क्या? क्या?"

बूढ़ेमे वृद्धावस्थाका गौरव दीप्त हो रहा था।

त्रिभुवनने कहा, "सेठ शान्तिचन्द्रजी, पहले आप बैठ जाइए, फिर शान्तिसे जो कुछ कहना हो कहिए।"

बैठते हुए वृद्ध मंत्रीने धीरे धीरे कहा, "भाइयो, आप सब लोग क्यों उतावले हो रहे हैं? राज्यमे शान्ति स्थापित करनेके लिए ही महारानीजी पाटन छोड़कर गई हैं। एक ओर क्रोधित मुंजाल मधुपुरमें डेरा डाले हैं, दूसरी ओर रोषमें भरे मंडलेश्वरकी सेना मेरलमे पड़ी हुई है। इन दोनोंको राज़ी करके, महारानीजी कल सन्ध्या समय यहाँ लौट आनेवाली हैं। आप व्यर्थ शंका कर रहे

हैं। तबतक तो राह देख लो, फिर जो कुछ करना हो करना। परन्तु इसी बीचमें फ़िजूल धाँधली मचाकर अपने राजतन्त्रको क्यों बिगाड़ रहे हो? आप सब सयाने हो, ज़रा तो विचार करो, एक दिनमें क्या खट्टा मीठा हुआ जाता है?"

सब लोगोंने सुना। कुछ लोग पिघल गये। दण्डनायकका कहना ठीक मालूम हुआ।

उदाने पूछा, "पर हम लोग कहीं धोखा खा गये तो?" उसने सोचा कि यह सब उपद्रव शान्त हो गया, तो उसका सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायगा।

एक-दो व्यक्तियोंने अनुमोदन किया, "हाँ, ठीक कहते हो।"

लीलाधरने पूछा, "यदि हम सब दरवाज़े बन्द कर रक्खें तो कैसे धोखा खा सकते हैं?"

दंडनायकने आजिजी करते हुए कहा, "बेशक, और इसके लिए मैं आप कहें उसकी शपथ लेनेको तैयार हूँ। किसी शत्रुको न आने दूँगा। और क्या चाहते हैं? मैंने इन्तज़ाम तो सभी दरवाज़ोंपर कर रखा है।"

वस्तुपाल सेठने कहा, "हाँ, यह बात कुछ झूठ नहीं है, इसमें क्या बुराई है?"

खेंगार, त्रिभुवनपाल वगैरह सबको प्रतीत हुआ कि घबरानेका कोई कारण नहीं है। परन्तु उदा ऊँचा-नीचा हो रहा था। उसने धीरे-से कहा, "परन्तु चन्द्रावतीकी सेना कहाँतक आ पहुँची है, इसका पता लगाया? संभव है, सीमा-पर ही आ पहुँची हो, तो?"

शान्तु मेहताने विश्वास दिलाया, "बिल्कुल झूठी बात है। मुझपर विश्वास नहीं है? मधुपुरसे ज़रा भी आगे नहीं बढ़ी, और वह वहीं रहेगी।"

"तब कोई हर्ज नहीं।" कहकर दो-चार आदमी उठनेकी तैयारी करने लगे। उनका जोश नरम पड़ गया था; और यह सब ठीक हो, तो शस्त्र उठानेकी किसीको हौंस भी नहीं थी। शान्तु मेहताको कुछ धीरज होने लगा। कारण, ऐसा मालूम होता था कि इस हवासे बादल बिखर जायँगे।

इतनेमें बाहर खड़ा हुआ जन-समूह एकदम चिल्ला उठा। बाहर हो-हल्ला मच गया और 'जय सोमनाथ' का नाद होने लगा। खेंगार, त्रिभुवन आदि क्रोधित हो उठे। इस प्रकार मर्यादा लाँघकर साधारण जनताका उपद्रव मचाना किसीको भला न लगा।

त्रिभुवनने सख्तीसे पूछा, "कल्याण नायक, यह क्या घाँधली है ?"

कल्याणके उत्तर देनेसे पहले ही डूँगर नायक बढ़ता हुआ दरवाजेमें घुसा और आगे पहुँच गया। उसके हाथमे एक पत्र था।

दो-तीन आदमी पूछ उठे, "क्या है ? क्या है ?"

नीचे झुककर डूँगरने नमस्कार किया और कहा, "महाराज ! अन्नदाता ! विखराटसे दूत आया है, और महारानीजीके नाम यह पत्र लाया है।"

त्रिभुवनने द्वारमें खड़े दूतकी ओर देखा, वह बड़ी शीघ्रतासे आ रहा प्रतीत होता था और उतावली और आतुरतासे हाँफ रहा था।

त्रिभुवनपालने कहा, "लाओ देखूँ।"

"लीजिए अन्नदाता !"

त्रिभुवनने उसे खोला और पढ़ा। उसके कपालपर भयंकर बल पड़ गये। जोशमें वह खड़ा हो गया। उसने दण्डनायककी ओर क्रोधसे देखा, "क्यों शान्तु सेठ, आप किसे पटा रहे हैं ? चन्द्रावतीकी सेना, तो यह सीमापर आ पहुँची !" त्रिभुवनका स्वर गूँज उठा।

सब लोग एकदम खड़े हो गये और पूछने लगे "क्या ? क्या ?"

"शान्तु सेठ हमें बहला रहे हैं। देखिए, विखराटका देवजी मुखिया सन्देश भेज रहा है।" कहकर त्रिभुवन पढ़ने लगा "चन्द्रावतीके सैनिकोंने विखराटमें पड़ाव डालना शुरू किया है।"

यतिने कुछ टुकड़ियोंको रास्तेसे विखराटकी ओर भेज दिया था, कारण कि लौटकर रानी वहाँ पड़ाव डालना चाहती थी। परन्तु विखराटके मुखियाको इसकी कुछ भी खबर नहीं थी; अतएव पहली टुकड़ी ज्यों ही गाँवमें घुसी त्यों ही घब-राकर मुखियाने रानीके पास यह सन्देश भेजा था। पत्रके शब्द सुनकर सब लोग इस प्रकार स्तब्ध खड़े रह गये, जैसे कड़ककर बिजली गिर पड़ी हो।

शान्तिचन्द्रने आकाशकी ओर देखा और ईश्वरीय सहायताकी याचना की। उसने समझ लिया कि अब कोई वशमे न रहेगा। उसने एक प्रयत्न और किया,

"क्या बात है ? हम दूतको बुलाकर पूछें।"

उदाने आगे आकर उच्च स्वरमें कहा "क्या बात है क्या ? मेहताजी, बुढापेके कारण आपकी मति तो नहीं मारी गई ? हमें बातों ही बातोंमें फुसलाकर समय बिताना चाहते हैं ? हमें धोखा देते हैं ? महाराज, जो कुछ करना हो, जल्दी करो।"

जीती जागती सेना बिल्कुल निकट आगई सुनकर कई लोगोंके पंजर ढीले हो गये। तिलकचन्द बोलनेमें बड़ा शूर था; परन्तु वास्तविक लड़ाईके समय उसका हृदय ज़रा घबरा जाता था। उसने कहा, " उदा सेठ, ज़रा शान्ति तो रखो।"

" शान्ति, शान्ति, कौन बोल रहा है ? मुझे उसका नाम तो बताओ।" सामल बारहट अभीतक घुटनोंसे दुपट्टा बाँधे बैठे हुए थे और बीच-बीचमें झोंके खा रहे थे। जब सब लोग खड़े हो गये, तब वे भी धीरे धीरे खड़े हुए, "शान्तिका नाम लेते इसकी माताका दूध नहीं लजाता ? क्या यहाँ ऐसा कोई रानीका जाया नहीं है जो कहनेवालेकी जीभ खींच ले ?"

सेठ शान्तिचन्द्र अपना बचाव करते हुए बोले, " बारहटजी, जरा शान्त हो जाइए। मुझे कुछ कहने दीजिए।" वे बेचारे इस उत्तेजित सभामें अकेले थे, और उन्हें सूझ नहीं रहा था कि क्या किया जाय। यद्यपि खिखराटसे आये हुए दूतने सब चौपट कर दिया था, परन्तु उन्हें आशा थी कि वे धीरे धीरे लोगोंको समझाकर दो दिनतक शान्त रख सकेंगे। मुरारपालपर उन्हें पूर्ण विश्वास था और उनकी धारणा थी कि कल संध्यातक वह महारानीजीको नगरमें ले आए, तो उनका दायित्व पूर्ण हो जाय। सेठ शान्तिचन्द्र बारहटकी जिह्वासे परिचित थे; इसीसे वे उन्हें शान्त करनेका प्रयत्न करने लगे। परन्तु सामल बारहट इस प्रकार माननेवाले थोड़े ही थे।

" शान्त हो जाऊँ ? शान्त हो जाऊँ ? बहुत समय शान्त पड़ा रहा और तुम जैसोंकी चलने दी। शान्तु मेहता, जिस बापने चार बेटोंको साथ लेकर सोमनाथके आगे केसरिया किया, उसी बापके बेटे तुम आज पाटनको बरबाद करने निकले हो ? और ये सब लोग देख रहे हैं ? ये न जाने कबसे व्यर्थ सिर पचा रहे हैं ! वनराजदेवके पाटनमें ऐसे कायर !"

अन्धे बारहटकी संस्कारयुक्त, बुढ़ापेसे टूटी हुई फिर भी बुलन्द आवाज गूँज गई। सामल बारहटकी ख्यातिसे सारा पाटन परिचित था। उसकी यशोगाथाएँ स्त्रियोंके गरबोंमें भी गाई जाती थीं; फिर भी बहुत कम लोगोंने उसे अपनी आँखों देखा था; अतएव सभी चकित होकर देखने लगे। पहले बारहटने सिर हिला कर आधा कवित्त और आधा गद्य कहा। मुखसे थूक उड़ता था। परन्तु कुछ ही वाक्योंके पश्चात् उस वृद्धका स्वर इस प्रकार प्रभावशाली होता गया, जैसे मरता हुआ योद्धा अतुल पराक्रम दिखला रहा हो। उसकी कँपकँपी दूर

हो गई, झुका हुआ शरीर तन गया, निस्तेज हुए नेत्रोंमें विचित्र तेज आ गया। जिन शब्दोंने प्रतापी भीमदेवके जीवनको प्रेरित किया था, वे शब्द फिरसे गरज उठे, चोट करनेवाले हो गये और वीरताके दावानलको सुलगाने लगे।

त्रिभुवनने बूढ़ेको शान्त करनेके विचारसे कहा, "बारहटजी!" परन्तु सामलका जोश उबल पड़ा था; वह अब शान्त नहीं हो सकता था।

बूढा कहने लगा, "कुमार! मेरे सोलंकी वीर! यह कैसे दिन आ गये हैं! कहाँ हैं मेरे प्रभावशाली पट्टनी? कहाँ हैं मेरे शूरवीर सोलंकी! कुमार, यह दिन देखकर मेरा जी जला जाता है। मैंने तो पाटनमें शौर्यकी सीमाएँ देखी हैं। मैंने टेकके लिए पिताओंको रण-यज्ञमे बीस-बीस पुत्रोंकी आहुति देते देखा है। गुजरातके गौरवके लिए कच्चे केलेके समान बालकोंको केसरिया करते देखा है। प्रेम-पागल प्रेमियोंको युद्धमें भेजनेके लिए, सतियोंको पतिके जीवित रहते अग्निप्रवेश करते देखा है। मैं भीम और विमलके साथ घूमा हूँ। डेढ़ डेढ़ महीना इस कोटके पीछे रहकर अफ़गानोंको हैरान किया है। इस समय तो एक ही शब्दका उच्चारण करना चाहिए, एक ही मंत्रका जप करना चाहिए और उसी मंत्रका उच्चारण करते हुए भगवान् मीर-भंजनकी आराधना करनी चाहिए।"

बारहटके शब्दोंका प्रवाह क्षणमें धीमा हो जाता, क्षणमें तीव्र हो जाता, और क्षणमें घन-गर्जनकी भाँति गंभीर मालूम होने लगता। सब सुननेवाले एकाग्र चित्तसे खड़े हुए थे, ज़रा साँस भी नहीं ले रहे थे। उनके हृदय इस प्रवाहकी तरगोंपर उछलते हुए आगे बढ़े; बारहटकी इच्छाके अनुसार रोये, क्रोधित हुए, निराश हुए और अन्तमें सब कुछ भूलकर यह जाननेको व्याकुल हो गये कि कौन-से शब्दसे मीर-भंजन होगा। एक सधे हुए वक्ताकी भाँति बारहट कुछ देर रुक गये, सबकी उत्कंठा क्षण भरको आतुरताके शिखरपर जा पहुँची। बारहटने बुलन्द आवाज़से जवाब दिया, "जय सोमनाथ!"

क्षण-भर गम्भीर श्मशानके समान शान्ति रही, दूसरे ही क्षण वहाँ खड़े सब लोगोंने और बाहर खड़ी भीड़ने वह शब्द दुहरा दिये। "जय सोमनाथ!" की भयंकर गर्जना गूँज उठी। उत्साहके आवेशमे इस प्रकार अनेक तलवारें बाहर निकल आई जैसे अग्निमें आहुति देते ही ज्वालाएँ निकल पड़ी हों।

त्रिभुवनने आगे आकर कहा, "पाटनके वीरो, बारहटजीने आज दूसरी बार पाटनको बचाया है। अब एक ही मार्ग है। दरवाज़े बन्द करके हमें

लड़नेके लिए तैयार हो जाना चाहिए। खेंगारसिंहजी, आप पुराने और अनुभवी हैं; अतएव अब इस कामको आप ही पार लगाइए।"

वस्तुपालने मौन दण्डनायककी ओर घूमकर कहा, "परन्तु शान्तु सेठका क्या होगा? वे क्यों नहीं बोलते?" शान्तिचन्द्र इस समय दया-पात्रसे दिखलाई पड़ रहे थे। सब लोग उनकी ओर तिरस्कारकी दृष्टिसे देख रहे थे।

उदाने बीचमें ही कहा, "शान्तु सेठका क्या होना है? अब यह अलग बैठें और भगवानका भजन करें।"

वस्तुपालको कोषाध्यक्ष बननेकी बड़ी इच्छा थी, परन्तु वह अपने मुखसे कैसे कह सकता था? उसने उदाकी ओर आजिजीसे देखा, एक ही दृष्टिपातमें जितना सूचित किया जा सकता था किया और बोला, "परन्तु उदा सेठ, कोषकी रक्षा कौन करेगा? इस समय यह बहुत आवश्यक बात है।"

उदा इस तरह हाथमें आई हुई बाजीको जाने देनेवाला नहीं था। वह त्रिभुवनकी ओर घूमा, "महाराज, मेरी बात मानिए तो ऐसे समय किसीको कोषाध्यक्ष नियत करना व्यर्थ है। घड़ी-भरमें क्या हो जायगा, इसका कोई ठिकाना है! इसकी अपेक्षा तो अच्छा है कि कोषपर ताले डाल दिये जायँ और पहरा बैठा दिया जाय कि फिर कोई झंझट ही न रहे।"

खेंगार कहना चाहता था, "परन्तु रुपयोंके बिना—"

उदाने कहा, "रुपया रुपया क्या कर रहे हैं? जाइए, जबतक यह उपद्रव रहेगा तबतक मैं अपने पाससे सारा रुपया दूँगा; बोलिए, अब और क्या चाहिए?"

सारे सेठ लोग देखते रह गये। इस मारवाड़ीकी बुद्धि कहाँ चली गई है! सभी राजपूतोंको यह बात बहुत पसन्द आई। यह बात वे लोग जान गये कि इन सब लोगोंकी अपेक्षा उदाकी उदारता अधिक थी।

परन्तु और कुछ होनेके पहले ही सामल बारहट धम्म-से भूमिपर गिर पड़े। बोल चुकनेके बाद वे अपने सिरको छातीपर झुकाये खड़े खड़े हिल रहे थे। जोश समाप्त हो जानेपर उनकी अशक्ति और वृद्धता फिर लौट आई थी, और जीवन-दीप मन्द हो चला था। इस ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा था। जब वे भूमिपर गिरे, तो सब लोग उनकी ओर घूम पड़े। लीलाधर वैद्यने नीचे बैठकर उनकी नाड़ी सँभाली और उनके मुखसे निकल गया, "शिव! शिव! शिव!"

सारी सभा शोकमें मग्न हो गई। जिस बारहटने प्राचीन वीरताको सजीव करके सच्चे जीवनकी ज्योति प्रकट की थी, वह स्वर्ग सिधार गया! यवनोंकी नाकों दम करनेवाले पट्टनियोंका गुण-गान करनेवाला उनके साहसहीन पुत्रोंको पूर्वजोंका सन्देश सौंपकर चला गया। सामलने दो बार पाटनको बचाया था: भीमके साथ लड़ते हुए अपने बाहु-बलसे और उसके प्रपौत्रके पास रहकर अपने शब्द-बलसे।

२८—त्रिभुवन और प्रसन्न

प्रसन्नको राजतंत्रके अतिरिक्त बहुत-सी बातोंपर ध्यान रखना था। उसका हृदय बेचैन था। इतने अधिक लोगोंकी भीड़में बारहटके वाग्बाणोंको भूलकर, वह द्वारमेंसे त्रिभुवनकी ओर देख रही थी। ज्यों ही बारहटजी भूमिपर गिरे त्यों ही वह निकट खड़ी स्त्रियोंमेंसे मात्राके पास पहुँची।

"बहन मात्रा, अपने पिताजीको तो बुलाओ।"

"क्यों, पेटमें पीड़ा हो रही है, या किसीकी पीड़ा मिटानी है?"

"क्यों, इतनी मुँहज़ोर हो गई है? ठहर! परन्तु गजानन दादा कहाँ गये? देख तो, ज़रा देख तो, जो लोग बारहटजीको उठाकर ले जा रहे हैं उनके साथ हैं।"

"परन्तु काम क्या है?"

"तेरा सिर, चली जा न बहन। मेरा तो सिर दुखने लगा।"

"पर कह तो सही, काम क्या है?"

"अच्छा, मैं ही जाती हूँ। बिना आप मरे कहीं स्वर्ग देखा जा सकता है!" कहकर प्रसन्न तेजीके साथ पिछले कमरेमें चली गई और लीलाधर वैद्यको बुला लाकर बोली, "वैद्यजी, मरनेवाले तो मर गये, जीते हुओंका भी कुछ ख्याल है?"

"क्यों? क्या हुआ?"

"मुझे तो किसी बाघने खाया नहीं, परन्तु कल ही तो त्रिभुवन—" वृद्ध लीलाधरने ज़ोरसे कहा, "अरे हाँ हाँ! मुझे भी बुढ़ापेने घेर लिया

है क्या ? परन्तु वह सोलंकी वीर तो अब लड़नेको तैयार होगा। अच्छा, मैं उसे ले आता हूँ। बेटी प्रसन्न, तुम उसके बिछौनेकी व्यवस्था कराओ।"

"अच्छी बात है, आप ले तो आइए।" कहकर प्रसन्न वहाँ पहुँची जहाँ त्रिभुवनको पहले सुलाया गया था और बिछौना ठीक करने लगी।

इतनेमें मात्राने आकर कहा, "क्यों, चोरी पकड़ी गई न ?"

"कैसी चोरी ?"

"ठहरो, जरा देखूँ तो तेरा मुँह। और फिर इसमें इतने लजानेकी बात ही क्या है ? प्रसन्नकुमारीको कभी किसीने बिछौना ठीक करते देखा है !"

"चुप रह, नहीं तो पिटेगी। चल हट। देख, तेरे बापकी आवाज़ सुन पड़ती है। इधरसे चल, इधरसे।" कहकर प्रसन्न और मात्रा दूसरे द्वारसे बाहर चली गईं; पर प्रसन्न अधिक आगे नहीं बढ़ी। मात्रा समझ गई और मुस्कराकर चली गई।

प्रसन्नने सुना, वैद्य कह रहे हैं, "चलो, अब दो-चार घड़ी चुपचाप सो रहो। अब तुम्हारी अधिक आवश्यकता न होगी।"

"परन्तु—परन्तु" थके हुए त्रिभुवनका स्वर सुनाई पड़ा।

"परन्तु वरन्तु कुछ नहीं, तुम सो जाओ। संभव है, कल लड़ाईका अवसर आ जाए। तब क्या करोगे ? आज ज़रा थकावट मिटा लोगे तो कलके लिए तैयार हो जाओगे।"

"अच्छा भाई, आप राज़ी रहो। मैं सोता तो हूँ; पर यदि नींद न आई तो ?"

"भोलानाथका नाम लेते रहना। यह दवा पी लो। ठहरो, उस पट्टीको ठीक करने दो—वाह, इससे घाव कितनी जल्दी भरता है !...अच्छा, अब मैं जाता हूँ; पर बिना मुझसे पूछे यहाँसे हटना मत।"

"अच्छी बात है, और कुछ ?"

ऐसा प्रतीत हुआ जैसे त्रिभुवन सो गया है और लीलाधर भारी पैरोंसे कमरेके बाहर जा रहे हैं। प्रसन्न दो-एक क्षण खड़ी रही, फिर उसने कमरेमें झाँका। निश्चिन्त-सा होकर त्रिभुवन पलंगपर पड़ा हुआ था, पर उसे नींद नहीं आ रही थी। गत दो दिनोंके अनुभवसे उसका चित्त चक्करपर चढ़ा हुआ था। उसने एक गहरा निःश्वास छोड़ा। असहाय होकर इस प्रकार पड़े रहना उसे भला नहीं लग रहा था।

प्रसन्न आई और सिरहानेके पास खड़ी हो गई। उसकी छाया पड़ते ही त्रिभुवन चौंक पड़ा और सिर उठाकर ऊपर देखने लगा। प्रसन्नको देखकर उसके मुखपर उमंग दिख गई; पर तुरन्त ही सख्ती आ गई। उसका आर्द्र अकेला हृदय अपनी प्रिय सखीसे मिलनेको तरसता था; पर कैसे मौकेपर दोनों बिछुड़े थे, यह याद आते ही उसका भाव बदल गया। प्रसन्नका हृदय भी दब गया और हिम्मत छोड़ बैठा।

ज़रा हिचकते हुए प्रसन्नने पूछा, "त्रिभुवन, तुम्हारी—आपकी तबीयत कैसी है।"

त्रिभुवनके मस्तिष्कमें एक विचार आया। उसे यह स्मरण नहीं आ रहा था कि उसने प्रसन्नको कहाँ देखा था, स्वप्नमें, अचेत अवस्थामें, कल लड़ते समय—कहाँ? उसके साथ एक और स्त्री भी देखी थी; उसका लालित्य कैसे याद रह गया? वह कौन थी? उसकी याद आते ही हृदय क्यों द्रवित हो उठा? सवेरेके परिश्रमसे थके हुए सोलंकीका मस्तिष्क उलझनमें पड़ गया। उसने कोई उत्तर न देकर दोनों हाथ सिरपर रख लिये। 'प्रसन्नको कहाँ और किसके साथ देखा था?' वह एक विचित्र प्रकारसे प्रसन्नकी ओर देखता रहा।

प्रसन्नने मिठाससे पूछा, "क्यों, माथा दुखता है? दबा दूँ?" ज्यों ज्यों त्रिभुवन चुप रहनेकी कोशिश करता त्यों त्यों प्रसन्नका हृदय फटता जाता। 'किस लिए त्रिभुवन इस प्रकार भावहीन और अन्य-मनस्क-सा हो रहा है? पहलेकी भाँति क्यो नहीं बोलता?' त्रिभुवन कुछ तिरस्कारसे उसकी ओर देखने लगा।

उसने धीरे-से कहा, "माथा? मेरा माथा ठिकाने नहीं है। प्रसन्न, मेरी समझमें नहीं आ रहा है कि मैंने तुझे कहाँ देखा था? मुझे भ्रम क्यों हो रहा है?"

"कैसा भ्रम?"

त्रिभुवनने फिर आतुरतासे पूछा, "तुझे मैंने कहाँ देखा था? तेरे साथ और कौन था?"

"मेरे साथ? मीनल बुआ, हाँ—" कहकर प्रसन्न रुक गई।

"क्यों, और क्या कहना चाहती थी?"

"कुछ नहीं त्रिभुवन, क्या तुम मुझपर गुस्सा हो गये हो? किसलिए इस प्रकार आँखें फाड़ रहे हो?" प्रसन्नने दयनीय स्वरमें पूछा।

उत्तरमें त्रिभुवन कठोर नेत्रोंसे उसकी ओर देखने लगा।

"त्रिभुवन, तुम्हें अवन्तीका वहम हो गया है। मुझे बुआजी ले गई थीं; परन्तु मैं तुम्हारे लिए भाग आई। यहाँ आनेके लिए रात-भर दौड़ना पड़ा है, फिर भी तुम्हें विश्वास नहीं होता? तुम अनेक बार रूठे, अनेक बार मनानेसे माने और इस समय फिर जुदेके जुदे? तुम्हारा कलेजा क्यों कड़ी करता है?"

उसकी ये सब बातें फिजूल गईं।

"प्रसन्न, मेरे प्रश्नका क्या उत्तर है?"

उसका कहना कुछ हिसाबमें ही नहीं गिना गया, इससे प्रसन्नने अपना मान भग समझा और पूछा, कौन-सा प्रश्न?"

"तेरे साथ कौन था?" भावहीनता और सख्तीसे त्रिभुवनने पूछा।

"मेरे साथ? सच कहूँ? तुम अधीर तो न हो जाओगे?" (कुछ ठहरकर) "मेरे साथ तुम्हारी माताजी थीं—हंसा देवी!"

"ऐं! वे कहाँसे आईं?" आँखें फाड़कर त्रिभुवन खड़ा हो गया।

"तुम अकुलाओ मत, तुम्हारी तबीयत ख़राब है, मैं पीछे सब कह दूँगी। इस समय शान्त होकर सो जाओ। वैद्यजी अभी क्या कह गये हैं?" आजिजी करती हुई प्रसन्न पास पहुँच गई।

उमंगोंको सख्तीसे दबाकर त्रिभुवनने उसे दूर धकेल दिया, "नहीं नहीं प्रसन्न, तू जो कहे, वही करूँगा; परन्तु इस समय धैर्य रखनेका साहस मुझमें नहीं है। तुझे जो चाहिए मुझसे ले ले; पर मुझसे सब कुछ कह दे।"

प्रसन्नका हृदय पागल हो उठा। लज्जाने उसके हृदयको बेचैन कर दिया। बाल्यकालकी उमंगोंके कारण वह दुनियादारी भूल गई। "त्रिभुवन, मेरी एक बात मान लो, तो फिर जो कहोगे, करूँगी।"

"क्या है? बोल, बता? मेरे प्राण रुँधे जा रहे हैं।"

"मुझे अपने साथ रहने दो।" कहकर प्रसन्न प्रेमकी उमंगोंके भारसे दबकर घुटनोंके बल बैठ गई। उसने त्रिभुवनके पैरोंपर हाथ रख दिये और वह चातकीकी-सी आतुरतासे त्रिभुवनके शब्दबिन्दुकी आशा करने लगी।

त्रिभुवनका चित्त इस समय किसी और ही तरफ था। वह शीघ्रतासे बोला और उसने प्रसन्नको उठा लेनेके लिए हाथ बढ़ाया, "प्रसन्न जो तू कहे, सब स्वीकार है; पर मुझे बता, जल्दी बता कि माताजी कहाँसे आईं? कहाँ हैं? इस समय क्यों नहीं दिखलाई पड़ रही हैं?"

प्रसन्नने उसका हाथ पकड़कर छातीसे लगा लिया और वह खड़ी हो गई "त्रिभुवन! प्यारे! हमें पता नहीं था; पर माताजी महलमें ही थीं। जब कल सैनिक तुमपर आक्रमण कर रहे थे, तब तुम्हें उन्होंने देखा और तुम्हें बचानेको बुआजीसे प्रार्थना की। बुआजी उस समय उन्हें तुम्हारे पिताजीके पास भेजनेका प्रयत्न कर रही थीं, और वे मान नहीं रही थीं। बुआजीने वचन ले लिया कि वे तुम्हारे पिताजीके पास जाना स्वीकार करें, तो बुआजी तुम्हें बचाएँ। उन्होंने स्वीकार कर लिया और तुम बच गये।"

"सच कह रही है?" त्रिभुवनने विकरालतासे प्रसन्नकी ओर देखते हुए पूछा, "यह सब तुझे कैसे ज्ञात हुआ?"

"मैंने पीछे खड़े खड़े बुआजी और आनन्दसूरिको बातें करते सुना था और माताजीने भी मुझसे कहा था।"

"माता, माता, मेरी माता, इस प्रकार आई और चली गई!" त्रिभुवनने रोते हुए कहा, "परन्तु इतने वर्षोंके पश्चात् मीनल काकीने उन्हें पिताजीके पास कैसे भेजा? हाँ—" कहकर उसने इस प्रकार फिर माथेसे हाथ लगा लिये जैसे कोई नया प्रकाश पड़ा हो।

"क्या बात है?"

"पिताजी और मुंजाल मामा आज प्रातःकाल मिलनेवाले थे। मीनल काकीको इसकी ख़बर थी?"

"ज़रूर होगी। कारण कि उन्हें ठीक करनेके लिए ही तो वे यहाँसे गई हैं।"

"ठीक है, माताजीको भेजकर पिताजी और मामाजीको जुदा रखना चाहतीं होंगीं। अब मैं समझा। काकी! धन्य है तुम्हारी बुद्धिको!" कहकर त्रिभुवन मुट्ठियाँ बाँधकर खड़ा हो गया और इधर उधर टहलने लगा। प्रसन्न चुप खड़ी रही। उसने देखा कि त्रिभुवनका मस्तिष्क तेज़ीसे विचार कर रहा है।

"तब तो, सेना विखरातमें आ गई, इसलिए मुंजालको वशमें कर ही लिया होगा।" प्रसन्नने डरते डरते रौद्र रूप धारण करते हुए त्रिभुवनसे कहा।

त्रिभुवनने इस प्रकार अचानक प्रसन्नकी ओर घूमकर कहा, जैसे किसी भयंकर निश्चयपर आ गया हो, "प्रसन्न, तू मेरे साथ विवाह करना चाहती है?"

प्रसन्नने नीचे देखते हुए कहा, "यह कितनी बार पूछोगे?"

त्रिभुवन कठोरतासे दबे हुए जोशसे पूछने लगा, "क्या आशा कर रखी है?"

किसलिए यह प्रश्न किया जा रहा है, यह न समझकर प्रसन्नने कहा, "आशा ! तुमसे पहले स्वर्ग जानेकी।"

"मंडलेश्वर और मीनल काकीके बीच सुलह करानेके लिए मुझसे विवाह करना चाहती है क्या ?"

"त्रिभुवन ! त्रिभुवन ! यह क्या ? जहाँ तुम हो वहाँ मैं। जो तुम्हारी सुलह तो मेरी सुलह, मुझे क्या ?"

"अच्छा, मेरे व्रतको तू भी ग्रहण करेगी ? तेरी बुआजीके दिन पूरे हो चुके हैं। मैं अपने जीवित रहते मीनल काकीको पाटनमें पैर रखने दूँ, तो भगवान् सोमनाथकी शपथ है। यह मेरी प्रतिज्ञा है। तैयार है मेरी सहचरी बननेके लिए ?"

विचार करके प्रसन्नने सिर उठाकर ऊपर देखा, "तुम्हारी प्रतिज्ञा मेरी प्रतिज्ञा है। अब तो संतोष है ? परन्तु तुम्हारा शरीर—"

"ठीक है। प्रसन्न, मैं निश्चिन्त हुआ। मैं जाता हूँ, मेरे हाथ तड़प रहे हैं। अब देखता हूँ कि मीनल काकी भी कबतक भू-मडलको अपने भारसे मारती हैं!" कहकर वीर कुमार त्रिभुवनपाल वहाँसे पैर बढाता हुआ सिंहकी-सी गतिसे इस प्रकार चला गया, जैसे उसके शरीरमें तनिक भी निर्बलता न रह गई हो।

निराश, खिन्नहृदय प्रसन्न खडी रह गई। उसने त्रिभुवनके साथ समझौता किया, पत्नी बननेका वचन दिया; मातृ-पितृ-हीन कन्याका प्रेमवश पालन करनेवाली बुआको जड़मूलसे उखाड डालनेकी शपथ ली; फिर भी उसका हृदय रोता रहा। कुछ देरमें वह बैठ गई, और हाथपर सिर रखकर रोते रोते हिचकियाँ लेने लगी।

२९—यति या यमदूत ?

जब आनन्दसूरि रानीसे अलग हुआ, तब उसके मस्तिष्ककी स्थिति बड़ी विचित्र होरही थी। सारी रातका जागरण, अनेक दिनोंसे ग्रहण की हुई प्रवृत्ति, अनेक वर्षोंके परिश्रमका निकट दिखाई देनेवाला अंत : इन सब बातोंसे उसका हृदय पागलोंकी भाँति हो गया था। उसे एक ही वस्तु आँखोंके

आगे दिख रही थी : श्रावकोंका उत्कर्ष। पहले तो उसे यह वस्तु बहुत निकट आती हुई दिखलाई पड़ी। रानी जैन है, दंडनायक जैन है, वह स्वयं परामर्श देनेवाला है, चन्द्रावतीकी सेना है, अब गुजरातमें जैनोंके लिए बाकी क्या रह गया ? जहाँ स्थिरता आई कि जैनमतका डंका सारे भारतमें बज जायगा; जैन-मन्दिर दसों दिशाओंमें दिखने लगेंगे।

परन्तु, बादमें बाजी पलटी-सी दिखी। रानीको धर्मके जोशकी अपेक्षा सत्ता अधिक प्रिय थी। शान्तिचन्द्रमें नमक नहीं। मुंजाल और देवप्रसाद सामना कर रहे हैं। यतिको ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि एक-दो दिनमें बाज़ी न पलटी गई, तो सब कुछ नष्ट हो जायगा। किसी प्रकार सीधा पाँसा फेंकना चाहिए। किस प्रकार फेंका जाय ? सैनिकोंको पीछे छोड़कर वह शीघ्रतासे बाघेश्वरी माताके मंदिरपर जा पहुँचा। वहाँ कोई भी दिखलाई नहीं पड़ा। यति प्रसन्न हो गया। हंसाके कारण अवश्य ही जो सोचा था वही हुआ। वह मंदिरके चबूतरेपर बैठ गया, और पीछे आ रहे सैनिकोंकी बाट देखने लगा। रानीके साथ जो विचार हुआ था, उसके अनुसार मंडुकेश्वरका नाका ही घेर लेनेका उसका निश्चय था। पर इतना समय कैसे व्यतीत होगा ? उसकी रग रगमें रक्त उछल रहा था।

हाथमें त्रिशूल, कंधेपर चुनरी और पैरोंमें खड़ाऊँ पहने माताका पुजारी नारियलकी गरी लिये सामने आ खड़ा हुआ और बोला, " महाराज, लीजिए यह प्रसाद। "

आनन्दसूरिने तिरस्कारसे ऊपर देखा और हाथ उठाये। माता और महादेवका आदर करनेके लिए वह इस समय तैयार नहीं था। जैन-मतके दिग्विजयमें उसे कमी दिखलाई पड़ी, " पुजारीजी, क्षमा कीजिए। आज मेरा उपवास है। "

पुजारी हँस पड़ा, " महाराज, माताजीके प्रसादके लिए उपवास बाधक नहीं होता। माता जगदम्बाकी कृपा-याचना कीजिए कि सब ओर मंगल हो। "

" पुजारीजी, यतियोंके साथ वाद-विवाद करके किसीने कभी कोई सार निकाला है ? "

पुजारीने ज़रा कटाक्षसे कहा, " आप यति हैं ! इस वेशपरसे तो नहीं प्रकट होता। फिर भी वाद-विवादकी क्या बात है, मैं तो अपनी माताका

दास हूँ। उसकी पूजा ही मेरा जीवन है। महाराज, और सब कुछ मैंने आप जैसोंको सौंप दिया है।"

"धीरे धीरे यह सब सौंप दोगे। ये मंदिर भी अब गये, ज़रा देखो तो। अब कर्णदेव नहीं हैं, मीनलदेवी हैं।"

ज़रा सिर हिलाते हुए पुजारीने कहा, "यतिजी, भले ही मीनलदेवी आए या जो चाहे आए। यह भरत-खंड जगज्जननी वाघेश्वरीका है, और रहेगा। उस शक्तिका साम्राज्य अचल है और अचल ही रहेगा। आप तो विद्वान् हैं, अतएव आपको चाहे जो दिख रहा हो, परन्तु मुझे तो सारे पंथ माताजीके चरणोंमें ही नत होते हुए दिखलाई पड़ते हैं।"

यति हँस पड़ा, "यह तो सभी कह सकते हैं; पर सच्ची बात तब मालूम होगी, जब जैनोंका डंका पृथ्वीपर बजेगा।"

"सही है महाराज, पर मैं तो केवल यह जानता हूँ कि भारतमें भोलानाथ और मेरी मा अम्बा भवानी पुजेंगी, एकरूपमें या दूसरे रूपमें; एक कालमें या अनेक कालमें। और सब तो कोरी बातें हैं।"

आनन्दसूरिको यह शब्द बड़े मार्मिक मालूम हुए। फिर भी उसे खूब हँसी आई, "इस समय तो भोलानाथ गये ग़ज़नी और अम्बिका पहुँची हैं पावागढ़।" सोमनाथकी मूर्तिको मुहम्मद ग़ज़नी ले गया था, इसका स्मरण कराते हुए यतिने कहा।

"आपके चर्मचक्षुओंसे। मुझे अपनी आँखोंसे तो आपके अन्दर भी उन दोनोंका प्रभाव दिखलाई पड़ रहा है।"

"किस प्रकार?"

"आपको ऐसा अभिमान न हो, तो आप सबका सामना करनेके लिए तैयार न हों। आपके गर्वको गलित करनेके लिए सारा गुजरात एक हो जायगा। समझे? चलो महाराज, मेरा पाठका समय हो रहा है।" कहकर पुजारी शान्त भावसे चला गया।

दो ही वाक्य यतिके कानोंमें सुनाई पड़ने लगे: 'भारतमें भोलानाथ और मेरी माँ अम्बा भवानी पुजेंगी;' और 'आपके गर्वको गलित करनेके लिए सारा गुजरात एक हो जायगा।' उसकी आँखोंमें कुछ अँधेरा-सा छा गया। क्या यह पुजारी भविष्यवेत्ता है? ऐसी मार्मिक बातें उसने कैसे कहीं? क्या यह सत्य

होगा ? क्या मेरे स्वप्न असत्य सिद्ध होंगे ? यति इस प्रकार मग्न हृदयसे उठ खड़ा हुआ, जैसे उसी क्षण उसके सारे हवाई क़िले गिर गये हों। क्षण-भरके लिए उसे प्रतीत हुआ कि उसकी आकाक्षाएँ सिद्ध न होंगीं। जैन-मतको जैसा वह मानता है, क्या वैसा अन्य अनुयायी भी मानते हैं ? जैसे हो विजय प्राप्त करके उसके प्रसारके लिए कितने श्रावक तैयार हैं ? बहुत-से लोग हिन्दू धर्म और जैन धर्ममें अधिक भेद नहीं मानते। बहुत-से लोग ब्राह्मणोंकी सत्ताको स्वीकार करते हैं और क्रिया-काण्डमें ब्राह्मणोंकी ही सहायता लेते हैं। ऐसे लोग, सारे भारतमें एक जुदे ही धर्मको कैसे फैला सकेंगे ? उनको नये धर्मका साम्राज्य कैसे पसन्द आएगा ? क्या वेद-धर्म और जैन-धर्ममें सचमुच अन्तर है ?

'भारतमें भोलानाथ और मेरी माँ अम्बा भवानी पुजेंगीः' क्या यह सच है ? यति धीरे धीरे मंदिरकी ओर गया और उसमें उसने बाघेश्वरीकी विकराल मूर्ति देखी। माताके पैरोंमें पड़े हुए बाघको देखकर यति काँप उठा, उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे माताके त्रिशूलकी नोकें उसके हृदयको चीरे डाल रही हैं। भयंकर नेत्र उसे परास्त कर रहे हैं। उनके प्राबल्यसे जैसे वह दब-सा गया। उसे अपने मनोरथ अल्प-से,—तुच्छ-से प्रतीत प्रतीत होने लगे। न जाने कब तक वह इसी प्रकार देखता रहा। ज़रा भी न हट सका। उसे ऐसा भास हुआ, जैसे सृष्टिपर शासन करनेवाली महाशक्तिकी सत्ता उसे भी दबाये दे रही है। निर्भय यति भयसे काँप उठा। इतनेमें किसीने पासके महादेवके मंदिरका घंटा बजा दिया। यतिके कानोंमे उस नादने भयंकर प्रतिध्वनि की। वह नाद किसके विजय डङ्केकी टंकार था ? क्रोधसे यति समीपके मंदिरकी ओर घूमा। उसका द्वार भी इसी चबूतरेपर था। मन ही मन उसने पूछा, 'क्या यह टंकार इन देवताओंकी विजय सूचित कर रही है ?' ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे उसका हृदय बैठा जा रहा हो। यह भवानी, यह भोलानाथ, यह घंटानाद जन्मजन्मातरसे चले आ रहे हैं और क्या इसी प्रकार चलते रहेंगे ? उसके मनके आगे महादेवकी मूर्ति खड़ी हो गई। उसने वैराग्य तथा सत्ताकी सम्पूर्णताके पूर्ण अवतार पिनाकपाणि साब सदाशिवको देखा; मानों ज्ञानकी सरिताका प्रपात सिरपर धारण करके जगत्के उद्धारके लिए पृथ्वीपर ज्ञानका प्रसार कर रहे हों। पागलकी भाँति यतिकी आँखोंके आगे फिर पार्श्वनाथकी मूर्ति आ गई; उस कट्टर धर्मनिष्ठको भी शंका हुई कि भविष्य किसके आगे नत होगा ? दुनिया कौन-सा वैराग्य, कौन-सी

सत्ता, कौन-सी संपूर्णताको स्वीकार करेगी ? तटस्थ, शान्त, निश्चल सम्पूर्णतासे जगत्का उद्धार होगा, या ज्वलन्त विजयी त्रिशूल-पाणिकी सम्पूर्णतासे ? उसकी आँखोंके आगे खड़ी पार्श्वनाथकी मूर्तिमें परिवर्त्तन हो गया। उस मूर्तिकी बन्द आँखें खुल गईं, हाथमें खड्ग आ गया, उसके शान्त मुखपर सत्ताप्रदर्शक भव्यता छा गई। मेरी धारणाके अनुसार यदि जैनमत विजयी हुआ, तो अर्हन्त क्या यह रूप धारण कर लेंगे ? तब महादेव और अर्हन्तमें भेद ही क्या रह जायगा ? 'नहीं, नहीं, नहीं,' वह इस प्रकार ज़ोरसे बोल उठा, जैसे शंकाओंको विदा कर रहा हो। शंकाओंने भी उतने ही ज़ोरसे कहा—'हाँ, हाँ, हाँ।'

इतनेमें किसीका स्वर सुनाई पड़ा, "परन्तु महाराज !"

यतिने ज़ोरसे सिर हिलाया, विचार स्थिर करते हुए आस-पास देखा, उसकी आँखोंके आगेका दृश्य अदृश्य हो गया। सामने माता और महादेवके मंदिर ज्योंके त्यों खड़े थे। निकट आ पहुँची सेनाका एक नायक हाथ जोड़े खड़ा था।

"महाराज !"

"क्यों ?" गुस्सेमें यतिने फिरसे कहा।

"जी, और कुछ नहीं; पूछता हूँ कि अब हम लोग कहाँ जायँ ? आज्ञा हो, तो यहीं पड़ाव डाल दिया जाय।"

उद्विग्न होकर यतिने कहा, "पागल तो नहीं हो गये हो ? चलो, मंडुकेश्वर चलें। इस समय भी हमारा एक कट्टर शत्रु वहाँ मज़ा कर रहा है।" कहकर यति लौटा और घोड़ेपर सवार-होकर सैनिकोंके साथ आगे बढ़ा।

कुछ दूरीपर गंभीरमल्ल और अन्य दो-एक जागीरदार मिले, उन्हें पकड़कर साथ ले लिया और यति और उसकी सेनाकी टुकड़ी मंडुकेश्वरका नाका रोककर ठहर गई।

दिन चढ़ा। दोपहर हो गई। सन्ध्या-समय हुआ। पर रुद्रमहालयमें कोई हलचल न जान पड़ी। अधीर आनन्दसूरि ऊब गया। रात हो गई, तो भी पता न चला कि देवप्रसाद क्या कर रहा है। यतिकी अधीरताका पार न रहा, अतएव अपनी टुकड़ीको आगे कर वह रुद्रमहालयके द्वार तक आ गया। वहाँ पूरी शान्ति छाई हुई थी। मंडुकेश्वरके समीपके गाँवोंमें भी यतिकी टुकड़ीको देखकर घबड़ाहट फैल गई थी; अतएव कोई दिखलाई नहीं पड़ रहा था। रुद्रमहालयके द्वारको जब बहुत खटखटाया, तब एक सैनिकने आकर जरा खिड़की खोली।

"कौन हो भाई, इस समय द्वार क्यों खटखटा रहे हो ?"

" यहाँ मंडलेश्वर देवप्रसाद हैं ? "

" उनसे तुम्हें क्या काम है ? हाँ, वे हैं। " कहकर सैनिक खिड़कीको खोल रहा था, कि इतनेमें एक उच्चपदस्थ सैनिक आगे बढ़ आया। उसने पहले सैनिकको एकदम पीछे खींच लिया और स्वयं खिड़कीसे बाहर सिर निकालकर कठोर स्वरमें पूछा, " क्यों क्या काम है ? "

" मैं मिलना चाहता हूँ। "

" आनन्दसूरिजी, मंडलेश्वर महाराजसे मिलनेके पहले मुझे तुम्हारे हाथ-पैर बाँधने पड़ेंगे, समझे ? " कहकर सैनिकने एकदम खिड़कीको बन्द कर लिया, भीतर अरगला लग गई और उसकी आवाज़ यतिके कानोंमें पड़ी।

यति दाँत पीसते हुए खड़ा रहा। राजपूत वेषमें भी वह पहचान लिया गया। उसके क्रोधका पार न रहा। बाघेश्वरी माताके मंदिरपर देखे हुए जाग्रत स्वप्नसे वह सुलगा हुआ था ही, उसमें यह और घी पड़ गया। अतएव उसने अपने सैनिकोंको पासके खाली झोपड़ोंमें पड़ाव डालनेको सूचित किया और वह अकेला वृक्षके नीचे इस प्रकार घूमने लगा जैसे प्रेतविद्याके द्वारा भैरवनाथकी आराधना कर रहा हो

सयानपन और पागलपनमें थोड़ा ही अन्तर होता है। सयानपनमें मनुष्य चित्तको एकाग्र करके जरूरत पड़नेपर उसे फिर खींच ले सकता है; पर पागलपनमें या तो चित्त एकाग्र ही नहीं हो सकता, और हो जाता है तो फिर खींचा नहीं जा सकता। यतिका जोश उसके सयानपनको पागलपनमें रूपांतरित कर रहा था। जैनधर्मकी विजय-कामना करते हुए, जैनोंके शत्रुओंकी पराजयकी कामना करना बहुत सरल था, आर, जैनोंके शत्रुओंके प्रति वैर-भाव रखना भी सरल था। उसके इस शत्रुभावकी सारी भावनाएँ देवप्रसादकी ओर घूम गई थीं। इस समय उसकी एकाग्रता भयंकर रूपमें अडिग होती जा रही थी,—पागलपनका रूप धारण करती जा रही थी। चलते चलते वह रुद्रमहालयके कोटके पीछे, पूर्वमें, सरस्वती नदीके तटकी ओर गया।

मध्यरात्रि होनेको आई थी। गम्भीरमल्ल आदिसे वह कोई ठीक समाचार मालूम न कर सका था। कहीं देवप्रसाद यहाँसे चला न गया हो ? परन्तु जायगा कहाँ ? देहस्थली ? तो फिर उस सैनिकने वैसा क्यों कहा था ? विचार करते करते वह सरस्वतीके किनारेपर पहुँच गया। उसका पाट महालयके कोटसे लग-

कर फैल रहा था। चन्द्रमाका प्रकाश उसे रुपहले रंगसे रँग रहा था। ' मंडलेश्वर कहाँ होगा ? ' उसने ऊपर देखा। महालयकी सबसे ऊँची छत ठीक कोटके बराबर थीं और उसके नीचे पानी लहरा रहा था। कुछ देर वह उसकी ओर देखता रहा और तुरन्त चौंक पड़ा। छतपर एक ऊँचे-से पुरुषकी छाया उसने देखी और कुछ शरीरकी आकृतिसे, कुछ उसके खड़े होनेके तरीकेसे उसे उसने पहचान लिया।

मंडलेश्वरके साथ एक ज़रा छोटी छाया थी। यति हँस पड़ा। आनन्द-विलासमें सत्ताको विस्मृत कर देनेवाले देवप्रसादके प्रति उसे तिरस्कार हो आया। उसका चित्त प्रसन्न हो उठा। गुरुदेवको भविष्यवाणी स्मरण हो आई, " देवप्रसाद, अब तेरे दिन पूरे हो चुके। तू भी अब आनन्दसूरिके हाथका मज़ा चखेगा।" यतिने जोशसे कोटके सामने अपनी मुट्ठियाँ हिलाईं।

कुछ देर वहाँ ठहरकर वह धीरे धीरे लौटा। कुछ दूर आनेपर उसे घोड़ोंकी टापें सुनाई पड़ीं। वह चौंक पड़ा, " इस समय कौन आया ? शत्रु, या मित्र ?" उसके सैनिक वहाँसे दूर थे। अकेले हाथों मैं कैसे उनका सामना करूँगा ? तो भी वह साहससे वहाँ खड़ा रहा। तेजीसे चलते हुए घोड़े निकट आ गये. केवल दो ही तीन घुड़सवारोंकी आहट मालूम पड़ी; अतएव उसमे अधिक साहस आ गया। उसने कई जगह चौकियाँ बैठाई थीं; सम्भव है, उन्हींमेंसे कोई हो। ज्यों ही घोड़े निकट आये कि उसने पूछा, " कौन है ? "

अगले घुड़सवारने कहा, "जयदेव महाराजकी जय ! "

" कौन ? चित्रविजय ? इस समय कैसे आया ? "

" महाराज, वल्लभसेन मंडलेश्वर इस ओर आ रहा है ! "

यतिने घबराहटसे पूछा, " अकेला है; या कोई साथ है ? "

" उसके साथ कोई पाँच-सात सौ घुड़सवार हैं। ज्यों ही मैंने सुना कि आपसे कहनेको निकल पड़ा। "

" कितनी दूर होंगे ? "

" तीन ही चार घड़ीमें वे यहाँतक आ पहुँचेंगे। यहाँसे जाना हो, तो अभी रवाना हो जाइए। "

" अच्छी बात है; यहाँसे कुछ दूरीपर हमारे सैनिक हैं, वहाँ जाकर ठहरो।

मैं अभी आता हूँ।" कहकर यतिने चित्रविजय और उसके साथियोंको विदा कर दिया।

यतिका पागलपन बढ़ गया। क्या बिलकुल अन्तिम घड़ीमें मण्डलेश्वर उसके पंजेसे निकल जायगा? नहीं, नहीं। वह विचार करने लगा कि वल्लभसेनके पहले वह अपना कार्य किस प्रकार सिद्ध कर डाले। कोटके ऊपर बड़ी बड़ी कीलें गड़ी हुई थीं; अतएव उसपर चढ़ना असंभव था। वह फिर तेज़ीसे उस जगह पहुँचा जहाँ कोटसे सटकर सरस्वती बह रही थी। दृष्टि गड़ाकर बहुत ध्यानसे देखनेपर कोटमेंसे बहती हुई बड़ी-सी मोरी दिखलाई पड़ी। उसने एक क्षणका भी विलम्ब नहीं किया और एक कटारके सिवा सब शस्त्र अलग फेंककर सरस्वतीमें कूद पड़ा। तैरते तैरते वह मोरीकी ओर गया। मोरीसे गंदा पानी बहकर नदीमें आ रहा था; परन्तु यतिने उसपर ध्यान नहीं दिया; उसने देखा, कि वह उसमेंसे अन्दर घुस सकता है। बड़ी कठिनतासे शरीरको सिकोड़ता, कष्ट देता, गंदे पानीकी दुर्गन्धसे दम रोके हुए, वह मोरीमेंसे होकर अन्दर जा खड़ा हुआ। पास ही एक कुआँ था। उसके थालेमें कुछ पानी भरा हुआ था। उस पानीसे उसने मुँह-हाथ धोकर गंदगीको साफ़ किया और महालयमें घूमने लगा। वहाँ सब ओर श्मशानकी भाँति शान्ति छाई हुई थी। पर कुछ देरमें ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे ऊपर कोई हँसा हो। उस हास्यने यतिके जोशको अधिक बढ़ा दिया।

ऊपर पहुँचकर लड़नेमें उसे कोई सार नहीं दिखलाई पड़ा। बिना यह जाने कि यहाँ कितने सैनिक हैं, अपने सैनिकोंको अन्दर प्रविष्ट कराना मृत्युके मुखमें डालनेके समान था। क्षण क्षणमें वल्लभसेन निकट आ रहा था। जो कुछ करना हो, वह करनेके लिए गिने-चुने कुछ ही क्षण थे। वह तेज़ीसे इधर उधर देखने लगा और केवल यही विचार करने लगा कि किस प्रकार मंडलेश्वरका संहार किया जाय। इसी समय दूरसे घोड़ोंकी टापें सुनाई पड़ने लगीं। कान लगाकर उसने सुना, तो प्रतीत हुआ कि वल्लभसेन निकट आ पहुँचा है। अब क्या किया जाय? क्या किया जाय? उसने आस-पास देखा। सामने रुद्र-महालयकी गोशाला देखी; पास ही महलकी इमारतसे सटा हुआ घासका बहुत ऊँचा ढेर देखा। उसे एक राक्षसी विचार सूझ पड़ा। वह इधर उधर दौड़ने लगा। उसका वश चलता, तो वह अग्नि-देवका अवाहन करने वहीं बैठ जाता। एक दालानमें एक ग्वाला, सुलगता हुआ हुक्का छोड़कर सो गया था, उसकी चिलमकी गन्ध यति तक पहुँची। वह उस

ओर दौड़ा। उसने झपटकर चिलमको इस प्रकार उठा लिया, जैसे किसी लोभीको मार्गमे पड़ा धन मिल गया हो। चिलमको फूँकता हुआ वह आगे बढा। क्षण ही भरमें चिलमकी आग उसने घासके ढेरमें डाल दी और फूँक मारकर उसे सुलगा दिया।

यति दूर जाकर हर्षसे हाथ मलने लगा। उसने घासके ढेरको सुलगते देखा और वह वहाँसे हट गया। छिपता हुआ वह रुद्र-महालयके एक छोटे-से द्वार तक पहुँचा और अरगला खोलकर बाहर निकल आया। उसके हर्षका पार नहीं था, उसके जीवनका उद्देश्य पूर्ण हो गया था। अहिंसा परम धर्म है, इसको मानते मानते, और उसका प्रसार करते करते, वह नीचसे नीच कोटिकी हिंसा करने तक पहुँच गया था।

चलते चलते वह फिर नदी-तटपर आ गया और परिणामकी प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर तक कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ा। यतिको चिन्ता हो गई कि कहीं आग बुझ तो नहीं गई? परन्तु इसी समय उसकी चिन्ता दूर हो गई। महालयके पहले खण्डकी खिड़की सुलग कर भड़क उठी, दो-एक खिड़कियोंसे धुआ निकलने लगा। यति आनन्द-स्वरूप होता गया। उसकी एकाग्रता फलीभूत हो गई थी।

३०—सरस्वती माताकी शरणमें

लोगोंकी चिल्लाहट और जलती हुई लकड़ियोंकी कड़कड़ाहटसे अपनी प्रियतमाके समीप सोया हुआ मंडलेश्वर जाग पड़ा और आस-पास देखने लगा। हंसा भी उठकर आँखे मलने लगी। आसपास आगकी लपटे निकल रही थीं, गरमी मालूम हो रही थी, चीज़ोके टूट टूटकर गिरनेकी भयंकर आवाज़ सुन पड़ती थी। हंसाका हाथ थामकर मंडलेश्वर एकदम छतपर जा पहुँचा। नीचेकी ओर देखनेपर चारों ओर भयानक लपटें दिखलाई पड़ी। उनके हृदय-विदारक प्रतिबिम्ब सरस्वतीके जलमें दिखलाई पड रहे थे। वातावरण एकदम उत्तप्त हो गया था। मंडलेश्वरने देखा और वह समझ गया, "हंसा, अब प्राण गये। किसी षड्यन्त्रकारीने महालयमे आग लगा दी।"

हंसा घबराकर देखतीकी देखती रह गई। कुछ भी न समझ सकी कि क्या हो रहा है। देवप्रसाद ऐसे समय हिम्मत हारनेवाला नहीं था। "चिन्ता नहीं

प्रिये, घबराओ मत। वह शाल ओढ़ लो, और मेरा हाथ थाम लो, हम अभी नीचे पहुँचे जाते हैं।" कहकर वह शीघ्रतासे हंसाको खींच ले चला। उसने अगला द्वार खोला और नीचे कदम बढ़ाया। नीचेका कमरा लाल हो रहा था।

"नाथ, मुझसे दौड़ा नहीं जा सकता। आप जाइए, मुझे छोड़ दीजिए।" "छोड़ कैसे जाऊँ? ठहरो।" कहकर देवप्रसादने फूलकी भाँति हंसाको उठा लिया। वह आगे बढ़ा और जीनेकी ओर चल दिया। जीनेका द्वार खोलते ही लपटें एकदम ऊपर आईं, आग बढ़ने लगी, श्वास लेना भी कठिन हो गया। साहससे वह और आगे बढ़ा और ज़ीनेसे उतरनेका प्रयत्न करने लगा। ज़ीना नीचेसे जल उठा था; अतएव यह प्रश्न उपस्थित हो गया कि कैसे उतरा जाय? उसने आस-पास देखा, परन्तु कोई मार्ग नहीं दिखलाई पड़ा।

"नाथ, अब क्या करेंगे?"

"मंडुकेश्वरकी कृपा है। घबरा क्यों रही हो?" शब्दोंसे साहस बँधात हुआ वह लौट पड़ा। ज़रा ज़रा देरमें वह हंसाको हृदयसे चिपटा लेता और पिछले पैरों चलने लगता। ज़ीना बेकार हो गया था, अब क्या किया जाय? केवल ऊपरका भाग ही अग्निसे मुक्त था। वह दौड़ता हुआ फिर उसी कमरेमें आ गया जहाँ कि पहले सोया था।

"मेरे प्राणेश, मैंने आपके प्राण ले लिये। नाथ, अब क्या होगा?"

"पगली! कलका दिन तो ऐसा था कि उस अकेलेके लिए यदि मेरे दस सिर भी हों, तो उन्हें देनेको राजी हूँ। इन कायरोंने औरतोंकी तरह महालयमें आग लगाकर मुझे मार डालनेका प्रयत्न किया है। पर कोई हर्ज नहीं हंसा, मेरा और तुम्हारा रक्त तो फिर भी इस पृथ्वीपर मौजूद रहेगा। अपनी गर्जनासे सारा गुजरात काँप उठेगा। कुछ लोग जीवित अवस्थामें विजय प्राप्त करते हैं, कुछ मरकर। हम और तुम मरकर प्राप्त करेंगे। घबराओ मत, घबराओ मत। चलो, तुम्हे ऊपर छतपर ले चलूँ।" कहकर मंडलेश्वर छतपर पहुँच गया। चारो ओरसे अग्निकी लपटें बढ़ रही थीं। उसने देखा, कि अब बचनेकी अधिक आशा नहीं है। उसने बड़े प्रेमसे हंसाको अनेक बार चूमा।

"प्यारे, यह क्या हो गया?"

" देवप्रसाद सोलंकीके ही योग्य यह चिता है। देखो, पूज्य पिताजीका भी इसी स्थानपर अग्नि-दाह हुआ था।—अरे हाँ, कोई हर्ज नहीं। हंसा, हिम्मत है? नीचे, माता सरस्वती बह रही है। तुम कहो तो नीचे कूद पड़ें।"

" नाथ, मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा है। मरना तो है ही। जो आपकी कीर्तिके योग्य हो वही करो।"

" आओ, तो मेरी कमरसे लिपट जाओ।"

हंसा बड़े प्रेमसे देवप्रासादकी कमरसे लिपट गई। देवप्रसादने अन्य कपड़े उतारकर धोतीकी लाँग लगाई और वह उछलकर छतकी पालपर खड़ा हो गया। उसने आसपास देखा, पैरोंके नीचे जलती हुई अग्निकी ओर दृष्टिपात किया, मंदिरके शिखरपर फहराती हुई ध्वजाकी ओर देखा, पूर्वकी ओर दृष्टि डाली, नीचे नदी और कोटकी ओर देखा और फिर उसका माप किया। देवप्रसादका साहस ज़रा भी कम न हुआ था। उसे मृत्युके साथ खेलनेका बड़ा शौक था। बाल्य-कालमें वह जिस साहससे पाटनके घाटोपरसे नदीमें कूदता था, आज भी वह उसमें बना था। उसने हंसाको जकड़ लिया, चूम लिया और वह उस ऊँची छतपरसे नदीमें कूद पड़ा, " जय सोमनाथ!"

* * * *

नदीके किनोर खड़ा हुआ यति हर्षित हो रहा था और अपने कृतकर्मका सुखद स्वाद ले रहा था। उसे प्रतीत हुआ कि अभी घड़ी दो घड़ीमें ही महालय गिर पड़ेगा। इतनेमें महालयकी छतपर, लपटोंके लोहित प्रकाशमें, उसने दो व्यक्तियोंको देखा। वह प्रसन्न हो उठा; उसके धर्मका शत्रु जीवित जलकर भस्म हो रहा है। पर दूसरे ही क्षण उसकी प्रसन्नता चली गई। वह व्याकुल होकर चिल्ला पड़ा और फिर अपने श्वासको रोककर रह गया। ऊँची छतपरसे दो व्यक्ति एक दूसरेसे लिपटे हुए गिरे और नदीमे पड़े। पानी हाथों ऊपर उछला और एक छाया तेज़ीसे हाथ मारती हुई पानीमें आगे बढ़ने लगी। यतिने एकदम पुकार लगाई। उसके सैनिक, मंदिरको जलता देखकर, उसके आस-पास आकर जमा हो गये थे।

" चित्रविजय!"

" जी!"

घोड़े लेकर सैनिकोंको किनारे भेजो और वह तैरनेवाला बाहर निकले, तो उसे समाप्त कर दो।"

"जो आज्ञा।"

यतिने अधिक विचार नहीं किया। उसने आस-पास देखा, वह तुरन्त नदीमें कूद पड़ा और तेज़ीसे अगले तैराकके पीछे जाने लगा।

३१—स्वामीकी सहायताके लिए

प्रातःकाल मेरलके समीप वल्लभसेन दाँत पीसता हुआ अपने स्वामी देवप्रसादकी प्रतीक्षा कर रहा था। वल्लभसेन एक छोटेसे मंडलका मण्डलेश्वर था और बाल्य-कालसे ही देवप्रसादने अपने पुत्रकी भाँति उसका पालन-पोषण किया था। वल्लभसेन भी उसे पितासे अधिक समझता था। वह गंभीर, अल्पभाषी, सीधा-सादा और साहसी योद्धा था। एक आज्ञाकारी कुत्तेकी भाँति वह उसके संकेतपर चलता और उसकी आज्ञाओंका पालन करता था। उसके जीवनका यह पहला मन्त्र था। देवप्रसादकी आज्ञाके अनुसार सेना लेकर वह मेरलके निकट पड़ा हुआ था और प्रत्येक क्षण उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। ज्यों ज्यों दिन चढ़ता गया, त्यों त्यों उसका मुख अधिक गंभीर होता गया। दोपहरके समय, सामन्त विश्वपाल अपने घुड़सवारोंके साथ मधुपुरसे आया और वल्लभसेनसे मिला।

वल्लभने कहा, "मुझे अवकाश नहीं है, आप किसलिए आये हैं?" वह जहाँ तक बन पड़ता कम बोलता था।

"देख रहे हो, गुजरातमें इतनी सेनाएँ! तुम महान् योद्धा हो, अतएव समझ सकोगे। अभी तो मालवराजको पराजित करना है। हम इस प्रकार बिखरे रहेंगे, तो कैसे काम चलेगा?" कहकर विश्वपाल ज़रा रुक गया। तरुण योद्धा चित्रवत् चुपचाप बैठा रहा। विश्वपाल अधिक स्पष्टतासे बातें करने लगा। उसने सूचित किया कि वह मीनलदेवीको समझा सकता है। यह भी समझाया कि रानीको प्रसन्न रखनेमें लाभ है। वल्लभसेन सेनाको साथ लेकर क्यों नहीं उनसे जा मिलता?

वल्लभने संक्षेपमें उत्तर दिया, "मंडलेश्वर महाराजकी आज्ञा नहीं है।"

विश्वपालने देवप्रसादकी परिस्थिति समझाई। यह विश्वास दिलाया कि वह बन्दी हो गया होगा। यह भी कहा कि देहस्थलीका पतन हो जायगा और आखिर वल्लभको अंतिम लोभ दिखाया, 'देहस्थलीका मंडल चाहते हो? रानी वह भी तुम्हें दे देगी।' वल्लभके मुखकी एक भी रेखा इधरसे उधर न हुई। उसमें ज़रा भी परिवर्त्तन नहीं दिखलाई पड़ा। वह इस प्रकार उठकर खड़ा हो गया, जैसे विश्वपालकी बातोंमें कोई जान ही न हो। "विश्वपालजी, मंडलेश्वर महाराजसे आज्ञा ले आइए, मैं सब कुछ करूँगा।"

"उनके विना—"

"सब व्यर्थ है।" कहकर वल्लभसेन विश्वपालको छोड़कर चला गया। हारा-थका सामन्त वहाँसे लौट गया। वल्लभ अटल सिद्ध हुआ।

विश्वपालके जानेपर वल्लभसेनकी चिन्ता बढ गई। ज्यों ज्यों दिन बीतता गया और मंडलेश्वरका कोई समाचार नहीं आया, त्यों त्यों उसका सेनामें कुछ असन्तोष फैलने लगा। सन्ध्या समय मधुपुरसे समाचार आये कि वहाँकी सेना पाटनकी ओर कूच कर रही है और संभवतः रानी भी उसके साथ है। वल्लभको भय हुआ कि क्या मंडलेश्वरकी सारी योजना निष्फल हो जायगी? उसे विश्वास था कि बिना किसी असाधारण कारणके मंडलेश्वर सेनासे अलग नहीं रह सकते; अतएव, अपने पड़ावपर अकेला, विचारमग्न वल्लभसेन अधीर-सा उलझनमें पड़ा हुआ था। सेना उसके प्रभावसे दबी अवश्य बैठी थी, फिर भी जहाँ तहाँ बकझक आरंभ हो गई थी।

जब रात्रिका अंधकार बढने लगा, तब उसके भेजे हुए गुप्तचर आये और उन्होंने समचार सुनाया कि मार्गमें कहीं भी मंडलेश्वरका पता नहीं है। अब वल्लभसेनने अपने स्वामीकी खोजके लिए जानेका निश्चय किया। उसने तुरन्त पाँच सौ चुने हुए सवार तैयार किये और मंडुकेश्वरकी ओर प्रयाण करनेका आदेश दिया। वह स्वयं और पचीस चुने हुए योद्धा साँढनियोंपर बैठकर शीघ्रतासे आगे जानेको तैयार हो गये, बाकी सेना एक बहुत ही विश्वास-पात्र और योग्य सामन्तके अधीन कर दी गई। कारण, उसकी धारणा थी कि संभवतः मधुपुरकी सेना इधर आयगी। कुछ सवार उसने वाघेश्वरी माताके मंदिरकी ओर भी भेज दिये कि कहीं मंडलेश्वर वहीं न हो।

यथासंभव शीघ्रतासे सॉढ़नियोंको दौड़ाते हुए वे मंडुकेश्वरके निकट आ गये। चॉदनी रातके प्रकाशमें वल्लभसेनने क्षितिजके एक भागको एकदम लाल हो जाते हुए देखा। उसने दॉतोंको अधिक ज़ोरसे पीसा। 'मंडुकेश्वरकी ओर यह इतनी भारी आग कैसी?' न जाने क्यों, अज्ञात रूपसे उसका हृदय धड़क उठा। उसने सॉढ़नियोंको और भी तेज़ीसे दौड़नेका आदेश दिया। आगकी ओर वल्लभसेन टकटकी लगाये देखता रहा। वृक्षोंके समूहसे जब सॉढ़नियॉ बाहर हुई, तब आग स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगी, मालूम हो गया, मंडुकेश्वरका महालय जल रहा है। वल्लभसेनने दॉतोंसे होठ चबा लिये।

इसी समय सामनेसे तीन-चार घुड़सवार दौड़े कर आते हुए दिखलाई पड़े। वल्लभसेनने उस ओर जाकर पुकारा, "ठहरो, कौन हो?"

घुड़सवारोंने वल्लभसेनकी आवाज़ पहचानकर हर्षनाद किया, "वल्लभसेन!"

"कौन गभीरमल्ल! क्यो क्या बात है? महाराज कहॉ हैं?"

"महाराज? महाराज तो महालयमे जल मरे। अब हम लोगोंको भाग चलना चाहिए।"

सॉढनीको बिठाकर वल्लभ नीचे उतरा और गंभीरके पास पहुँचा।

उसने सिंहकी भॉति गरजकर पूछा, "महाराज मर गये! फिर तुम कैसे जीवित हो?"

"आपको ख़बर नहीं है? सबेरे हम मुंजालसे मिलने जा रहे थे कि इतनेमें हंसादेवी आ पहुँचीं।"

"ऐं!"

"हॉ, वे जीवित थी और मौक़ा देखकर महारानीजीने उन्हें भेज दिया था। मंडलेश्वर महाराजने तुरन्त जाना स्थगित कर दिया और हमें मुंजालसे मिलनेके लिए भेजा। रास्तेमे हमें यतिने पकड़ लिया और यहॉ भेज दिया। इसी समय महालय जल उठा और यतिके सैनिकोंमें भगदड़ मच गई, उससे लाभ उठाकर हम भी भाग निकले।"

क्षण-भर वल्लभसेन चुपचाप देखता रहा। उसकी ऑखें अधिक गहराईमें गईं— "गंभीरमल्ल, पीछे लौट चलो। ज़रा देखे तो सही। इस सॉढ़नीपर आ जाओ।" कहकर गंभीर और उसके साथियोंको आगे करके वल्लभ सॉढनीपर जा बैठा। तेज़ीसे वे महालयकी ओर चल दिये। यह अच्छी तरह देखनेके लिए कि मंदिर

कितना जल गया है, उन्होंने नदीकी ओरका रास्ता पकड़ा।

एक प्रचंड होलीकी भाँति महालय जल रहा था और नदीकिनारे खड़े होकर बहुत-से लोग ऊँचे-नीचे होकर देख रहे थे।

वल्लभसेन और उसके साथी वहीं उतर पड़े। उन्हें देखकर वहाँ खड़े हुए मनुष्योंमेंसे कुछ भागने लगे। वल्लभने एकको पकड़ लिया और अपने सबल हाथोंसे झकझोर डाला। पूछा, " बताओ, किसके आदमी हो ? "

उस मनुष्यने हाथ जोड़कर कहा, "कौन, महाराज वल्लभसेन ! यह तो मैं हूँ।"

वल्लभने ध्यानसे उसे देखा, " कौन रामसिंह ? "

" जी हाँ, महाराज ! "

" यह क्या है ? " कठोर स्वरमें वल्लभसेनने पूछा।

" महाराज, मैं मंडलेश्वर महाराजके साथ महालयमें था और ज्यों ही आग लगी, त्यों ही मैं और अन्य साथी महाराजको जगानेके लिए ऊपर गये परन्तु वे ज़ीनेका द्वार बन्द करके सोये थे, इसलिए न सुन सके। आखिर हम बाहर निकल आये; परन्तु महाराज, अभी वक्त है। ये सब लोग कह रहे हैं कि महाराज ऊपरसे कूद पड़े हैं। "

" ये कौन ? "

" चन्द्रावतीके सैनिक। उनके साथ यति था जो महाराजको बन्दी करनेके लिए आया था। वह यहीं खड़ा था। महाराजने उस छतपरसे नदीमें छलांग मारी और उनके कूदनेके बाद ही यति भी नदीमें कूद पड़ा। "

" आनन्दसूरि ? "

" हाँ, वही नया यति जो पाटनमें आया था। और वह यह कह गया है कि घुड़सवारोंको भी किनारे किनारे आना चाहिए। "

" महाराजके बाहर निकलते ही उन्हें समाप्त कर डालनेके लिए, क्यों ? " यतिका मतलब समझकर वल्लभने कहा, " चलो, साँढ़नियाँ तैयार हैं, हम भी किनारे किनारे घुडसवारोंके पीछे चलेंगे। " कहकर वल्लभ उछलकर साँढ़नीपर बैठ गया, " रामसिंह, कितनी देर हुई ? "

" महाराज, दो तीन घडी बीती होंगी। "

" अच्छा चलो। " कहकर वल्लभने शीघ्रतासे साँढ़नियोंको नदीके किनारे-किनारे दौड़ानेका आदेश दिया।

३२—गुरुदेवकी आज्ञा

जब देवप्रसाद सरस्वतीके जलमें कूदा, तब उसे बचनेकी बहुत-कुछ आशा हो गई। महालय नदीके किनारे एक ओर था, अतएव तैरकर वहाँ पहुँच जाना उसके लिए खिलवाड़ था। और उस तरफ़ हरएक गाँवमें देवप्रसादके ऐसे आदमी थे जो उसका नाम सुनते ही प्राण देनेको तैयार हो जायँ। वहाँ पहुँचकर, दम लेकर, मेरलकी ओर चले जाना उसे सरल प्रतीत हुआ। परन्तु ज्यों ही वह पानीमे गिरा त्यों ही उसे हंसामें कुछ परिवर्तन दिखलाई पड़ा। या तो इतने ऊँचेपरसे गिरनेके कारण, या सर्दीसे, हंसा अचेत हो गई और उसके हाथ देवप्रसादके गलेसे छूट गये। अब मण्डलेश्वरके अद्भुत शारीरिक बलकी परीक्षाका समय आया। वह अचेत हंसाको अपने बॉयें हाथपर रखकर दाहिने हाथसे तैरने लगा। उसका मन मूल प्रकृतिके तूफानी तत्त्वोंमें रुचि रखता था, इसलिए सरस्वतीके प्रवाहमे तैरना उतराना उसे बड़ा भला मालूम हुआ। सौभाग्यसे जलका प्रवाह भी उसी ओर था। अतएव, आगे बढनेमें अधिक कष्ट नहीं हुआ।

वह कोई आधी ही घड़ी पानीमें रहा होगा कि इसी समय उसने रात्रिकी शान्तिमें पीछेसे किसीके तैरनेकी आहट सुनी। कुछ दूरीपर कोई बड़े जोरसे हाथ मारता उसकी ओर तैरता आ रहा था। कुछ देरमें पलटकर पीछे देखनेसे उसे विश्वास हो गया कि कोई उसका पीछा कर रहा है। देवप्रसादने समयका विचार किया, अपने हाथोंकी अचेत सुन्दरीकी स्थितिपर विचार किया, और यह समझकर कि अभी उसे बहुत शरीरिक परिश्रम करना है, वह किनारेकी ओर बढ़ा। पीछा करनेवालेका सामना करनेका विचार ही उसने नहीं किया। ज्यों ही वह किनारेकी ओर मुड़ा और निकट पहुँचा कि उसने चन्द्रमाके प्रकाशमे कुछ घुड़-सवार देखे। वे मंडलेश्वरकी ओर देख रहे थे। यह सोचकर कि मैं और सफ़ेद वस्त्र पहने हुए हंसा पानीमे स्पष्ट दिखलाई पड़ती होगी, उसने गति ज़रा धीमी कर दी। इसी समय ऊपरसे कुछ आकर उसके निकट गिरा। वह तीर था! मंडलेश्वरको क्रोध आ गया। तेज़ीसे वह पीछे लौट पड़ा और किनारेसे दूर निकल गया। दो-तीन तीर और भी पीछे आकर गिरे। तीर चलानेवाले उसे कुशल नहीं मालूम हुए, क्योंकि सारे तीर निशाना चूककर पानीमें जा गिरे थे।

सरस्वतीका दूसरा तट बहुत दूर था, और उसके उधर न जाने कहाँ तक कीचड़ था। उस ओर जाना बड़ा कठिन कार्य था। इसकी अपेक्षा सीधे पानीमें तैरते रहना उसे सरल प्रतीत हुआ, और वह वही करने लगा।

मंडलेश्वरका बायाँ हाथ झूठा पड़ने लगा। अब उसने हंसाको दाहिने हाथपर डाल लिया। उसका अचेत, शुष्क, निर्मल मुख देखकर देवप्रसादका हृदय उमड़ आया। उसने चुम्बन ले लिया, उसे हृदयसे लगा लिया और बायें हाथसे तैरना शुरू कर दिया। पीछे आनेवाले कितने थे, यह ज्ञात न हो सका। यह भी एक प्रश्न था कि उनके साथ लड़ा जा सकेगा, या नहीं। अतएव, उनसे बच निकलनेके लिए वह और भी तेजीसे आगे बढ़ने लगा। कुछ देरमें पीछे आनेवालेके तैरनेकी छपछपाहट कम हो गई; अतएव देवप्रसादने अपनी गति धीमी कर दी। पीछेकी ओर महालय नहीं दिखलाई पड़ रहा था। पर, उसकी लपटे आकाशतक पहुँचती दिख रही थीं। किनारे किनारे दस-बारह घुड़सवार भी उसे देखते देखते पीछे आ रहे थे। देवप्रसादने उन्हे देखा। मंडलेश्वर बड़बड़ाया, 'कोई हर्ज नहीं।' जलमें घंटों तैरनेकी बाल्य-कालकी टेवने उसकी सहायता की।

मनमें एक विचार आया और उसकी छाती धड़क उठी। हंसाको उसने अपने समीप खींच लिया, "हंसा! हंसा!" कहकर पुकारा, उसके मुखपर दृष्टि गड़ाकर देखा, और उसपर भयंकर अचलता देखकर वह व्याकुल हो गया। उसने बड़ी कठिनतासे उसकी नाकपर हाथ रखा, उसके हृदयपर हाथ रखनेका प्रयत्न किया; पर अस्थिर जलमे धीमी नाड़ीकी गति देखना सहज नहीं था। उसने हंसाके विचित्र हो गये होंठ देखे, बन्द पलकोंमें काचकी-सी स्थिर आँखें देखीं। उसे चक्कर आ गया। होठ चबाकर उसने अपनी प्रकृतिको स्थिर किया। कारण, कि पीछे आ रहे व्यक्तिके तैरनेकी छपछपाहट फिर सुनाई दी। देवप्रसादने महान् प्रयत्न करके हृदयकी खिन्नताको दूर किया। वह ज़ोरसे तैरने लगा। पर अब उसका साहस टूट गया था। यह शंका उसका हृदय चीरे डाल रही थी कि हंसा जीवित है या मर गई। परिणामस्वरूप उसके हाथ-पैर पहलेकी भाँति अच्छा काम नहीं कर सके।

पूर्वमें कुछ कुछ अरुणोदय होने लगा। देवप्रसादने घूमकर देखा, तो पीछे केवल एक ही आदमी दिखलाई पड़ा। वह बिलकुल समीप आ गया था।

मंडलेश्वरने उसकी ओर घूमकर कहा, " किसकी मृत्यु निकट आ पहुँची है ?"

एक हाथसे मुखपरका पानी पोंछकर आनन्दसूरिने हर्ष-नाद किया। उसे अपने इकहरे शरीर और जोशके कारण अधिक परिश्रम न पड़ा था। उसकी शक्ति ज्योंकी त्यों थी। वह दो हाथ मारकर निकट आ पहुँचा।

" तुम्हारी, मंडलेश्वर ! "

" यति ! आनन्दसूरि ! चांडाल ! यहाँ तक मेरे पीछे लगा हुआ है ? तेरी भी मृत्यु निकट आ पहुँची है। "

यतिको इसी समय ध्यान हुआ कि मंडलेश्वरके साथ पानीमें द्वन्द्व-युद्ध करना मूर्खतासे खाली नहीं। हारा थका भी देवप्रसाद उसे चुटकियोंमें मसल सकता था। उसने युक्तिसे काम लिया, वह घूम पड़ा और मंडलेश्वरको अपने पीछे पीछे किनारेकी ओर ले जाने लगा।

" देख रहे हो उन सवारोंको ? "

" बहुत देखा है तुम जैसे कायर हत्यारोंको। "

" मैंने कहा न था ! भूल गये गुरुदेवकी आज्ञाको ? "

अचानक वैरका उन्माद मन्द पड़ गया और देवप्रसादको यतिका वचन स्मरण हो आया, " हाँ आनन्दसूरि, तूने मुझे उस दिन वचन दिया था, स्मरण है ? "

" हाँ, स्मरण है। क्या चाहते हो ? तुम्हें जीवित नहीं छोड़ूँगा, इसके अतिरिक्त जो कहोगे, करूँगा। "

" अपने प्राणोंके लिए भिक्षा नहीं माँगूँगा। मंडलेश्वर मरते मरते भी सोलंकी रहेगा। तुझे वैद्यक आता है ? देख, हंसा जीवित है ? "

" मुझे भुलाकर विश्वासघात करना चाहते हो ? "

" अरे कुत्ते ! मंडलेश्वरने कभी किसीके साथ विश्वासघात किया है ? देख यह है। " कहकर मंडलेश्वरने हंसाका शरीर उसकी ओर कर दिया।

यति निकट आ गया। हंसाकी नाकपर हाथ रखा और वह तुच्छतासे हँस पड़ा, " मंडलेश्वर, अब इसमें क्या रह गया है ? "

" मर गई ? " देवप्रसाद मरते हुए सिंहकी भाँति दहाड़ पड़ा। पल-भर उसने हंसाकी ओर देखा। इस समय तक बातें करते करते यति उसे किनारेके निकट ले आया था। यतिने हाथ उठाकर किनारे खड़े सवारोंको पुकारा। तुरन्त तीन-चार तीर छूटे, पर सब पानीमें जा गिरे। केवल एक तीर आया

और मंडलेश्वरकी गरदनमें आधा धुस गया। वह पानीमें उछला और यतिकी ओर झपटा, " नीच ! दगाबाज़ ! "

यतिको भागनेसे पहले ही देवप्रसादने पकड़ लिया। दाँत पीसते हुए मंडलेश्वरने उसका दम घोंट देनेका प्रयत्न किया। यति छूटनेके लिए तड़फड़ाने लगा और किनारेपरके सिपाहियोंको पानीमें आनेके लिए सूचित करने लगा।

उस समय किनारेपर कोलाहल मच गया। अचानक साँढ़नियोंपर वल्लभ अपने दल-सहित आ पहुँचा और चिल्ला उठा, ' जय सोमनाथ ! ' एक हाथसे यतिके साथ गुत्थमगुत्था करते और दूसरे हाथसे हंसाके शवको ऊपर रखते हुए मंडलेश्वरने उक्त रण-गर्जनका उत्तर दिया।

वल्लभने पानीकी इस लड़ाईको देखा, मंडलेश्वरको पहचाना और उसकी गरदनमें लगे हुए तीरपर दृष्टिपात किया। उसी क्षण उसने साँढ़नीको बिठाया और उसपरसे कूद कर वह जलकी ओर दौड़ा, अपने भारी शस्त्रोंको अलग फेंक कर वह कूद पड़ा।

इतनी देरमें देवप्रसादने यतिकी गरदन अपने हाथमें पकड़ ली थी और अपने हाथसे खिसकते हुए शवको समीप ले लिया था। उसका माथा फटा जा रहा था, पैर ऐंठ रहे थे, हाथोंमें थकावट मालूम हो रही थी; तीरके प्राणघातक घावसे बहुत अधिक रक्त बह गया था; और उसके शरीरमें आसन्न मृत्युकी शिथिलता मालूम हो रही थी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई उसकी ओर आ रहा है।

वल्लभने पुकार लगाई, " महाराज, मैं आया। "

देवप्रसादने सुना, स्वरको पहचाना, " वल्लभ, अब आवश्यकता नहीं है। " देवप्रसादको गहरा घाव लगा था; उसे प्रतीत हुआ, जैसे क्षण क्षणमें उसका जीवन-दीप बुझ रहा है। पलक मारते ही उसने एक निश्चय कर लिया, " वल्लभ, यहाँ आवश्यकता नहीं है। त्रिभुवनके पास जाओ, उसे देखना। "

" परन्तु महाराज ! "

" अब हंसाके बिना जीवित नहीं रहा जा सकता। वह गई, मैं भी जाता हूँ। " कहकर मंडलेश्वरने गौरवसे, अभिमानसे, पूर्वदिशामें उगती सूर्यरश्मियोंकी ओर

देखा और नाद किया, " जय सोमनाथ ! " दूसरे ही क्षण एक हाथमें तड़फड़ाते हुए यति और दूसरेमें हंसके शवको लेकर मंडलेश्वरने डुबकी लगा दी।

वल्लभ ' महाराज ! महाराज ! ' कहते हुए ऊपर रह गया। उस स्थानपर पहुँचनेसे पहले ही मंडलेश्वर पानीके नीचे चला गया। गुजरातका सर्वश्रेष्ठ महारथी कपटी शत्रुओंके विश्वासघात और प्रेमके पागलपनका भोग बनकर संसारसे ऊबकर माता सरस्वतीकी गोदमें जा बैठा। वल्लभसेनने कई डुबकियाँ लगाईं, परन्तु कुछ भी हाथ न लगा; अतएव निराश होकर वह लौट आया। उसकी भवें चढ़ी हुईं थीं। एक भी अक्षर बोले बिना एक सैनिकसे उसने धनुष्य और बाणोंका तरकश ले लिया और वहाँ पकड़े गये यतिके एक एक सैनिकको बिना क्षण-भर विचार किये अपने अचूक बाणोंसे बेध डाला।

" जाओ, दौड़ो, निकटके किसी गाँवसे मल्लाहोंको बुलाकर लाओ और इसी समय नदीमें जाल डलवाओ। तीनों शव मिलने चाहिएँ। "

" महाराज, देखिए तो वह क्या है ? कोई पानीमें डुबकियाँ ले रहा है ! "

वल्लभ घूम पड़ा। पानीमें कोई डुबकियाँ ले रहा था। तुरन्त ही वह और उसके दो-तीन साथी जलमें कूद पड़े और डुबकियाँ खाते आनन्दसूरिको बाहर घसीट लाये। जब उसे मंडलेश्वरने पकड़ लिया और उसने समझ लिया कि मृत्यु निकट आ गई है, तब श्वास रुद्ध करके प्राणायाम आरंभ कर दिया; और ज्यों ही मंडलेश्वरने डुबकी लगाई और उसके हाथ शिथिल हुए कि वह छूट गया। प्राणायाम पूर्ण होनेपर उसे भान हुआ कि वह छूट गया है। हाथ मारकर वह पानीकी सतहपर आ गया।

जब बाहर निकाला गया, तब वह थककर लोथ हो गया था। फिर भी उसने नदीकी ओर देखकर कहा, "जिनप्रभुका शत्रु समाप्त हो गया ! चलो, गुरुदेवका वचन पूर्ण हुआ।" हाथके एक ही झटकेसे वल्लभने यतिको भूमिपर पटक दिया और उत्तरमें यति मूढ़की भाँति हँस पड़ा। अपने क्रोधको शान्त करके वल्लभने उसे साथ ले लेनेका आदेश किया और अपने दलके साथ वह मेरलकी ओर लौट पड़ा।

कुछ लोग, मल्लाहोंसे जाल डलवाकर, नदीमें लाशोंका पता लगानेके लिए रह गये।

३३–त्रिभुवनपाल महाराजकी जय !

वल्लभ जब रुद्रमहालयके निकट आया, तब उसे अपने घुड़सवारोंमें निराशा और भगदड़ मची दिखी। मंडलेश्वरका नाम गुजरातके गॉवमें जादूका-सा असर रखता था, और इस समय दो हजार आदमियोंकी सेना उसकी आज्ञासे ही खड़ी हो सकी थी। परन्तु अब वह जादू न रहा। उस वीरके लिए लड़ना समाप्त हो गया। उसके बाहु-बलका प्रताप गया। उनके हृदयोंमें उत्साह प्रेरित करनेवाला देवांशी समझा जानेवाला महारथी अदृष्ट हो गया। इतने वर्षोंसे आशा लगाये हुए सब लोग निराशामें डूब गये। वल्लभको ऐसा प्रतीत हुआ कि अब इन लोगोंको वशमें रखना कठिन है, फिर भी उसने साहस करके मेरलकी ओर कूच करनेका हुक्म दे दिया। लौटते समय पॉच सौ सैनिकोंने मंडुकेश्वरके उस पवित्र धामकी ओर दृष्टिपात किया, जहॉ क्षेमराजदेवने अपना संन्यस्त जीवन व्यतीत किया था और जहॉ उसके प्रभावशाली पुत्रकी ऐसी अद्भुत मृत्यु हुई थी। सभी लोगोंके नेत्रोंमें जल भर आया। भूख, प्यास, गर्मी, जाड़ा और युद्धके अनेक कष्टोंको साहससे सहनेवाले योद्धाओंके हृदय, अपने नायककी मृत्युसे रो उठे। वज्रहृदय अल्पभाषी वल्लभसेन सॉढनीपर चुपचाप बैठा रहा। जब वहॉसे चलनेका समय हुआ, तब उसने माथेको छातीपर झुका दिया और एक हिचकी ली। उसके हाथ थर थर कॉप रहे थे। उन्हीं कॉपते हुए हाथोंसे उसने अपने पास बैठे हुए गंभीरमल्लका हाथ जोरसे पकड़ लिया। गंभीरने ऊपर देखा और वल्लभमें इतनी भावुकता देखकर वह चकित हो गया।

"मेरे पिता चले गये!" वल्लभने ऐसे स्वरमें कहा, जैसे उसकी छाती फटी जा रही हो।

"आपके ही नहीं महाराज, सारे गुजरातके। परन्तु, अब हमें देखना यह है कि पिताके मरनेपर पुत्रकी देहस्थली न चली जाय। अब सभी शत्रुओंकी चढ़ बनेगी, और मंडलोंका पतन हो जायगा। कहिए क्या किया जाय? वहॉ पहुँचते ही सब कहने लगेंगे, सेनाको भंग कर दो, या मीनलदेवीकी शरणमें चलो।"

"त्रिभुवनपाल, सोलंकी अभी जीवित है।"

"हॉ, जीवित है; परन्तु उसपर न जाने क्या बीती होगी। परसों, जब मंडुकेश्वरमें महाराज मुझे मिले थे, तब कहा था कि त्रिभुवनपाल पाटनमें कैद है।"

" परन्तु रानी मधुपुरमें है, और बहुत करके चन्द्रावतीकी सेनाको पाटनकी ओर ले जा रही है ।"

अब तो दो ही बातें करनेकी हैं । एक तो हमें यहाँ देहस्थलीको तैयार करना चाहिए; कारण, कि रानीके हाथोंमें अधिकार आया कि वह पहले मंडलोंको लेगी, और दूसरी बात यह कि पाटनकी ओर जाना भी आवश्यक है। वहाँका रंग भी देखना चाहिए । वहाँ हमारे बहुत-से मित्र हैं । त्रिभुवनपालको वहाँसे लानेमें कठिनाई न होगी ।"

" गंभीरमल्ल, पाटनकी गद्दीपर त्रिभुवनपाल बैठे, तो कैसा हो ?"

" वल्लभसेनजी, मुझे तबसे पता है जब आप महाराजको यह सलाह दिया करते थे और यह बहुत उत्तम और सहज भी है; परन्तु जब पिताने नहीं माना, तो पुत्र मानेगा ? सोलंकी इस बातमें अडिग हैं कि वे पराई गद्दीको हज़म नहीं करेंगे ।"

" मैं जानता हूँ । अच्छा, तुम इन सैनिकोंको लेकर देहस्थली जाओ । मैं मेरलको सँभालता हूँ, और पाटन जाता हूँ ।"

" ठीक है । जो इच्छा ।"

" जरा आगे बढ़नेपर मैदान आ गया, वहाँ वल्लभसेनने साँढनियोंको रुकवा दिया । चारों ओर सब सैनिक इकट्ठे हो गये । वल्लभने उच्च स्वरमें कहा—

" बहादुर सैनिको, शत्रुने अभी अभी हमारे पिताको कपटसे मार डाला है । अब उसकी देहस्थलीका कोट तोड़ना शुरू होगा । उसके पुत्रको पाटनमें बन्द कर रखा है । हमें अब अपने घर नहीं जाना है, महाराजकी हत्याका बदला लेना है, उनकी देहस्थलीको खड़ा रखना है और त्रिभुवनपालको छुड़ाना है। आप सब लोग तैयार हैं ?"

सभीके हृदयोंमें सहानुभूति थी । निराश होते हुए भी उन्होंने कहा, " हाँ, सब, सब तैयार हैं ।"

" गंभीरमल्लजी, आप इन बहादुरोंको लेकर देवस्थली सँभालिए । मैं त्रिभुवनपालको छुड़ाकर लाता हूँ ।"

साँढ़नीको बिठाकर गंभीरमल्ल उतर गया और दूसरी साँढनीपर जा बैठा । एक सैनिकने समय बदला हुआ देखकर खुशामदके ढंगपर पुकार लगाई, " वल्लभसेन महाराजकी जय !" और लोग इस जयकारमें शामिल होने जा रहे थे कि

वल्लभसेनने सॉढ़नीपरसे ही चिल्लाकर कहा, "चुप रहो! क्यो, क्या महाराजके वंशमें कोई नहीं रहा? बोलो, महाराज त्रिभुवनपालकी जय!"

प्रत्येक सैनिकने दोहरा दिया, "त्रिभुवनपाल महाराजकी जय!" गंभीर-मल्लके साथ वे सब देहस्थलीकी ओर चले गये। कुछ सैनिकों और हाथ-पैरे बँधे हुए यतिको साथ लेकर वल्लभसेन मेरलकी ओर रवाना हो गया।

मध्याह्नके समय वह मेरलकी सीमापर पहुँचा। उसकी धारणा थी कि वहाँ भी निराशा और खिन्नता व्याप्त हो रही होगी; परन्तु इसके बदले वहाँ उत्साह और जोश दिखलाई पड़े। समस्त सैनिक पाटनकी ओर कूच करनेको तैयार हो रहे थे। वल्लभसेनकी गैरहाज़िरीमें मधुपुरसे, विखराटसे और पाटनसे भी त्रिभुवनके भेजे हुए लोग आये थे और रानीकी प्रवृत्तिसे मुंजालके बन्दी होनेके और पाटनके विद्रोहके समाचार लाये थे। त्रिभुवनपालने वल्लभसेनके पास सन्देश भेजा था कि वह जल्दीसे पिताजीको लेकर पाटनकी ओर आए। इस सन्देशसे भी उत्साह बढ़ गया था।

वल्लभको आया देखकर सब आतुरतासे उसके आस-पास जमा हो गये और उसका शोक-ग्रस्त मुख देखकर समाचार पूछने लगे।

"महाराज मर गये। इस चाण्डालने उन्हें मार डाला।" कहकर उसने यतिकी ओर संकेत किया। यति आत्म-संतोषसे हँस रहा था। आसपास खड़े सैनिकोंमेंसे क्रोधकी एक भयंकर चीख सुन पड़ी। परन्तु उनकी रक्तकी प्यास बढ़नेसे पहले ही वल्लभसेनने यतिको वहाँसे हटा ले जानेका हुक्म दे दिया।

एक सामन्तने पूछा, "अब हमें क्या करना चाहिए?"

"त्रिभुवनपाल महाराजके हुक्मको माथे चढ़ाना चाहिए। गंभीरमल्लजी देहस्थलीकी रक्षाके लिए वहाँ गये हैं और हम लोग यहाँसे पाटन जाकर अपने स्वामीके वैरका बदला लेंगे।" वल्लभसेनकी यह बात सबको पसन्द आई। प्रत्येक सैनिक तैयारी करने लगा और कुछ ही समयमें सेनाने विखराटकी ओर प्रयाण किया।

३४–अविश्वास

जिस समय मंडलेश्वरकी सेना,–मेरलमें, उनकी मृत्युके लिए शोक और क्रोधका अनुभव कर रही थी, उस समय पाटनके राजमहलमें म्लानमुख प्रसन्न-कुमारी पीपल-पूजा कर रही थी। एक ही दिनमे उसके नेत्रोंका तूफानी तेज, रसीली चाल, हँसता हुआ चेहरा और आशावान् स्वभाव,—सब अदृश्य हो गये थे। कल सवेरे जो बातचीत हुई थी, उसके बाद त्रिभुवन भी बदल गया था। होठोंको दबाए, उन्माद-पूर्ण आँखोंसे सबकी ओर देखते हुए, कपालपर भयंकर बल डालकर वह इधरसे उधर घूमता था, सबको हुक्म देता था और पाटनपर अपनी सत्ता जमा रहा था। वह इने-गिने ही शब्द बोलता। उसे थकावट मिटानेकी भी फ़ुरसत नहीं थी। सारे दिन वैद्यजी गिड़गिड़ाये, फिर भी घावोंके पुरनेकी उसने परवा नहीं की। प्रसन्न सारे दिन, जहाँतक हो सका, उसके पीछे पीछे घूमती रही, उसके लिए आवश्यक वस्तुओंकी व्यवस्था करती रही; परन्तु त्रिभुवनने एक शब्द या एक हास्यसे भी उसे सम्बोधित नहीं किया। वह समझ गई कि त्रिभुवनके क्रोधने उसके हृदयको रोक रखा है और उसमे दूसरी किसी भी अनुभूतिके लिए स्थान नहीं है। त्रिभुवनका ऐसा भयंकर व्यवहार उसने आज ही देखा, और वह इस प्रकार मुर्झाने लगी जैसे सूर्यके प्रखर उत्तापसे कोई लता मुर्झा रही हो। पीपलकी पूजा करते करते प्रसन्नकी आँखोंमें आँसू भर आये। 'सुखके दिन कब आयेंगे? इसके लिए क्या करना होगा? त्रिभुवन इसी प्रकार रहा, तो उसकी क्या दशा होगी?' प्रसन्न अकुलाई हुई-सी लौट पड़ी। त्रिभुवनकी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेके लिए वह सब कुछ करनेको तैयार थी। परन्तु त्रिभुवनका इस प्रकार अलग-थलग रहना कैसे सहा जाय? इसी समय लीलाधर वैद्य दिखलाई पड़े।

"वैद्यजी! ए वैद्यजी! कहाँ जा रहे हैं? सोलंकी कहाँ हैं?"

"मैं तो हार गया बेटी, उसके माथेपर भूत सवार हो गया है। न जाने कितना समझाया है तब कहीं आनेके लिए राजी हुआ है। तुम खाने-पीनेकी कुछ तैयारी कराओ।"

"अच्छी बात है" कहकर हर्ष प्रकट करती हुई-सी प्रसन्न वहाँसे चली

गई। उसने अपने हाथों सब तैयारी की और राह देखती खडी रही। कुछ देरमें वैरकी अग्निसे निरंतर जलता हुआ त्रिभुवनपाल आ पहुँचा और विना कुछ बोले चौकीपर बैठ गया। थोड़ा-सा खाया और उठ गया। भोजनके पश्चात् वैद्यजी उसे पट्टी बाँधनेके लिए ले गये। प्रसन्न भी उसके पीछे पीछे गई। कुछ देरमें, चतुर वैद्य कोई दवा लानेके मिस वहाँसे चल दिये। हाथपर सिर टेककर त्रिभुवन बैठा रहा। जब प्रसन्नने निकट आकर कन्धेपर हाथ रखा, तब उसने सिर उठाकर देखा, " क्यों ? "

प्रसन्नने कुछ प्रयत्न करके आवाज़में आई हुई कँपकँपीको दूर किया, " इस तरह कबतक चलेगा ? "

" क्या ? "

" इस प्रकार कष्ट उठाओगे, तो अपने व्रतका पालन कैसे कर सकोगे ? दो ही तीन दिनोंमें फिर बिस्तर पकड़ लोगे।" कहते कहते प्रसन्नकी आँखें डबडबा आईं।

"मेरा व्रत पूर्ण हो जाय, बस, फिर मुझे और किसी बातकी परवा नहीं है ?"

कुछ दुखी मनके साथ हँसते हुए प्रसन्न कुमारीने कहा, " यह मैं जानती हूँ, परन्तु बिस्तरपर पडे पड़े क्या कर सकोगे ? अब तो जरा विश्राम कर लो। कल सब कुछ तो ठीक हो गया, अब पाटनमें घुसनवाला कौन है ? "

" ऐसा ! आज शान्तु मेहतासे मेरी जो बातचीत हुई, उससे तो कुछ दालमें काला प्रतीत होता है। मैंने उदासे पता लगानेको कहा अवश्य है; पर मेरी समझमें कुछ आ नहीं रहा है। बारह दरवाज़े हैं, उनमेंसे कब कान आ जाए, इसका क्या पता ? "

त्रिभुवनके साथ यह साधारण-सी बात करनेसे प्रसन्नका हृदय हर्षित हो गया। ' चुप्पीसे कलह भी अच्छी। ' और फिर इस बातमें वह पूरी दिलचस्पी भी ले सकती थी।

" परन्तु सभी दरवाज़े तो बन्द कर दिये गये हैं। "

" बन्द करनेसे क्या होता है ? न दरवाज़ोंका ठिकाना है, न खिड़कियोंका। काकाजी (कर्णदेव) तो यह समझते थे कि इस संसारमें खा-पीकर खुश रहनेके सिवाय और कुछ भी नहीं रह गया है; परन्तु किसीके पास एक कुंजी हो, या

किसीने दरबानको मिला लिया हो, तो बस, सब समाप्त हो जाय।" कहकर त्रिभुवनने तीक्ष्ण दृष्टिसे प्रसन्नकी ओर देखा।

"परन्तु, कोई ऐसे ही थोड़े घुस आ सकता है और फिर उसे बन्दी करते क्या देर लगेगी? इसमें इतना घबरानेकी क्या आवश्यकता है?"

त्रिभुवनकी दृष्टि और अधिक तीक्ष्ण हो गई। "मुंजाल मामा या कुमार जयदेवमेंसे कोई एक भी नगरमें आ जाए, तो यहाँ सभी बदल जायँगे। फिर मेरी प्रतिज्ञा कैसे टिकी रहेगी? अब तो यह निश्चय है कि त्रिभुवनके गिरनेपर ही मीनल काकी यहाँ आ सकती हैं।"

प्रसन्न कुछ समझी। क्या त्रिभुवन इस समय उससे मेदकी बातें जानना चाहता है? क्या उसे कुछ संदेह हो गया है? "अजी, ऐसे कहीं जयदेव आ सकता है?"

"कोई ले आवे तो?"

"परन्तु यहाँ ऐसा कौन है?"

"सेठ शान्तिचन्द्र और दूसरे बहुत हैं। आजकल तो रास्ता चलनेवाला भी पाटन बेचनेको तैयार हो सकता है।"

"नहीं, नहीं, पट्टनी कहीं ऐसे बिल्कुल विना टेकके हो सकते हैं!" प्रसन्नने यह जाननेके इरादेसे कि त्रिभुवन क्या विचार कर रहा है; बातको लम्बी करना शुरू किया।

"परन्तु, यहाँ सभी पट्टनी थोड़े हैं? मीनलदेवीने बहुतसे भाड़ेके टट्टुओंसे नगर भर दिया है।" अकुलाते हुए, स्पष्ट तिरस्कारके साथ उसने कहा।

प्रसन्न निकट आ गई, उसने कंधेपर फिर हाथ रख दिया और अपने नेत्रोंका तेज उँड़ेलते हुए, स्नेहार्द्र, दयनीय स्वरमें कहा, "त्रिभुवन, मुझपर अभीतक अविश्वास है, क्यों?

त्रिभुवन जरा पिघला। "सच कहूँ? हाँ, मुझे सन्देह है।"

"मुझपर? मुझपर? क्यों? इतने वर्ष बीत जानेपर भी?"

"प्रथम तो यह कि तुम पाटनकी नहीं हो।"

प्रसन्नने तनिक चिढ़कर कहा, "हाँ, हाँ, मै चन्द्रपुरकी हूँ, जैन हूँ, और मीनलदेवीकी भतीजी हूँ, उनकी पुत्रीके समान हूँ। धन्य हो त्रिभुवनपाल! धन्य!

यह भूल गये कि मैंने अपना सारा जीवन पाटनमें व्यतीत किया है। यह भूल गये कि सामल बारहटके शब्दोंने हमें साथ साथ वीरताकी शिक्षा दी है और यह भी भूल गये, कि कल ही मैंने सोलंकी वीरकी पत्नी बनना स्वीकार किया है! मैंने नहीं समझा था कि इतने वर्षोंके बाद भी त्रिभुवनपाल सोलंकी याद दिलाएगा, कि मैं परदेसी हूँ!"

प्रसन्नका दबा हुआ क्रोध बाहर आने लगा। उसके नेत्र क्रोधसे चमक उठे, उसके म्लान मुखपर क्रोधका तीक्ष्ण प्रकाश छा गया। त्रिभुवनका मन चिन्तासे, क्रोधसे, अशक्तिसे दबा हुआ था फिर भी वह प्रसन्नके लावण्यको निहारने लगा।

"तुम्हें मैं पति मान बैठी हूँ; फिर भी तुम मुझे ऐसी शंकाओंसे जला रहे हो, क्यों?"

ज़रा नरम होकर त्रिभुवनने कहा, "नहीं, परंतु अपनी मूर्खतासे अपना व्रत भंग कैसे होने दूँ! तेरा ढंग बिल्कुल जुदा हो गया है। तू पहले जैसी निष्कपट कहाँ है? पहलेकी-सी स्नेहालु कहाँ रह गई है?"

"मैं त्रिभुवनके साथ भी निष्कपट नहीं! मैं अपना स्नेह किसपर उड़ेलूँ? तुम्हें कहाँ फ़ुरसत है कि उसे स्वीकार करनेका कष्ट उठाओ? कल मैं तरसती रही, तड़पती रही कि पल-भरके लिए ही तुमसे भेंट हो जाय; परन्तु तुमने तनिक भी यह सोचा कि प्रसन्न कहाँ है?"

"मैं पागल हो गया हूँ, प्रसन्न! परन्तु तुम सच कहती हो कि तुम कुछ भी नहीं जानतीं? और पहले जैसी थीं वैसी ही हो?"

"अभी पाँच बार और पूछो, तो तुम्हें अधिक शान्ति मिलेगी। तुम्हारे लिए पाटन कौन दौड़ता आया? बार बार कहते तो मुझे लाज आती है।"

"तब कल कहाँ गई थीं?"

प्रसन्नको क्रोधमें ही हँसी आ गई। उसके हँसमुख स्वभावने प्रधानता ग्रहण कर ली, "ओहो! यह सारा झगड़ा इसीपर है! तो तबसे क्यों न कहा?"

"सच कहना किस लिए गई थीं?"

"हाँ, हाँ, सच कहूँगी। तुम्हारी धारणा ठीक है। मीनलदेवी आज सन्ध्या-समय चुपचाप यहाँ आना चाहती हैं और बहुत करके चाँपानेरी दरवाज़ेसे आयेंगी।"

सुनते ही त्रिभुवनने आतुरतासे कहा, "ऐं!"

"हाँ, एक आदमी उन्हें लानेको सन्ध्या समय जानेवाला है।"

" वह कौन ? "

" अभी किसीसे कहना मत, क्योंकि यदि बात मालूम हो गई तो मामला बिगड़ जायगा। मुरारपाल—"

" ऐं! और इसीलिए वह पाजी आगे होकर दरवाज़ेपर रहा है। मैं अभी—"

" नहीं, इस समय कुछ नहीं करना। मैं इसकी तजवीज करती हूँ।"

" तुम क्या कर सकोगी ? "

" इसे जाननेकी चिन्ता तुम्हें कहाँ है ? परन्तु मुरारपाल एक बड़ा सामन्त है, इस समय लोग उसे बहुत मानते हैं; उसे कुछ होगा, तो जनतामें व्यर्थ ही असन्तोष बढ़ जायगा। जो लोग आज तुम्हारी पूजा करते हैं, वे ही कल तुम्हें पूरा करनेको तैयार हो जाएँगे। इस समय यहाँ जरा भी हो-हल्लेका काम नहीं है।"

त्रिभुवनने उससे जुदा पड़कर और शंकित होकर पूछा, "परन्तु तुम बातको उड़ाती हो, क्यों ? न कहना हो तो तुम्हारी इच्छा।"

"फिर सनक गये ? ज़रा दम तो ले लो। कल सन्ध्या समय मैं मुरारपालके पास गई थी।"

" किसलिए ? मुझसे बिना पूछे ? "

" जी हाँ, अभी मैं तुम्हारी पत्नी नहीं बनी। मेरी और मुरारपालकी कुछ जान-पहचान हो गई है। परसों रातको हम लोग साथ ही पाटन आये हैं।"

" ऐं! "

" हाँ—आँ—आँ! तुम अपनी तरफसे ईर्ष्या किया करो। मैं उसे रिझाने गई थी!"

" तुम!" त्रिभुवन गंभीरता और कठोरताके अतिरिक्त और किसी भी भावका अनुभव करनेमें असमर्थ हो गया।

" हाँ, कलसे काम होता हो, तो बलसे क्यों किया जाय ? बन सका तो उसे समझा लेती हूँ। आगे जो हो।"

" सचमुच ? "

" तुम्हारी जो प्रतिज्ञा है, वह मेरी भी तो है। मैं क्या तुमसे जुदी हूँ ? अब सन्तोष हुआ कि नहीं ? "

" शाबास प्रसन्न! मैं इधर बड़ा अविश्वासी हो गया हूँ क्षमा करना। मैं आज-कल अस्वस्थ हूँ।"

" इसीसे तो सोते भी नहीं, और पट्टियाँ भी नहीं बाँधने देते, ठीक कहती हूँ न ? "

त्रिभुवनका हृदय कुछ प्रफुल्लित हो गया था। वह उठा और प्रसन्नके दोनो हाथ अपने हाथमें लेकर बोला, "प्रसन्न, एक दूसरे कारणसे मै अपने आपमे नहीं रहा हूँ।"

" भला वह और क्या है ? "

" तुम 'सोलंकी' क्यों कहने लगीं ? " त्रिभुवनने बड़ी मुश्किलसे, केवल प्रसन्नको रिझानेके लिए, कृत्रिमतासे हँसते हुए यह मज़ाक खोज निकाला।

नेत्रोंसे हृदय-भेदी बाण फेंकते हुए प्रसन्नने कहा, "तब क्या कहूँ ? "

' त्रिभुवन ' क्या बुरा है ? ' सोलंकी ' पराये जैसा प्रतीत होता है। "

" ठीक है, अब न कहूँगी। आज शामको मैं मुरारपालको रिझानेके लिए जाऊँगी, साथ चलोगे ? नहीं तो तुम घबरा जाओगे कि मैं कहीं भाग गई ! "

" अवश्य। सभव है, तुम्हे कुछ हो जाय। "

" अहा ! संभव है, मुझे कोई ले जाय ! त्रिभुवन, अब ज़रा शान्त होकर सो जाओ। "

" नहीं, ज़रा बातचीत करे। तुम मेरे पास यहाँ बैठो। आज कितने दिनोंमे—" कहकर त्रिभुवनने प्रसन्नका हाथ दबाया।

कुछ देरमें वैद्य लीलाधरजीने आकर दोनोंको निश्चिन्त होकर वार्त्तालाप करते देखा। सोलंकियोंकी तीन पीढियाँ उन्होने देखी थी और उनके कुटुम्बको वे अपना ही समझते आ रहे थे। उसी वंशके वीर-रत्न और उसके योग्य जोडीको देखकर उनका हृदय फूल उठा। कुछ देर विगलित नेत्रोंसे वे उनको देखते रहे। वे दोनो गंभीर रूपमे आवेशके साथ पाटनके गौरवकी बातें कर रहे थे और ऐसी युक्ति खोज रहे थे कि किस प्रकार मीनलदेवीको तंग किया जाय। बात ही बातमें प्रसन्नने त्रिभुवनके हाथको अपने नेत्रोंसे लगा लिया। बूढे वैद्य लजाकर वहाँसे चले गये।

३५—मोहिनी

दोपहर बीत गया और सन्ध्या होने लगी। पाटनमे थोड़ी बहुत शान्तिका प्रसार हो गया था। धन्धा-व्यापार, आनन्द-विलास, पहलेके समान अभी सरलतासे चालू नहीं हुए थे, फिर भी लोगोको विश्वास हो गया था कि उनके गौरवकी रक्षा योग्य व्यक्ति कर रहे हैं। सारे लड़वैये कोटकी रक्षा करने और बाहरी सेनाके घेरा डालने पर उसे बचाव करनेको तत्पर हो रहे थे। मोढेरी दरवाज़ेपर मंडलेश्वर खेंगारने अपना मोर्चा खड़ा किया था और केवल उसी दरवाज़ेकी खिड़की खुली रखी गई थी। खेंगार ही इसपर दृष्टि रखते थे कि उस दरवाज़ेसे कौन आता है और कौन जाता है। और कोई आवश्यक समाचार होता था तो उसे वे त्रिभुवन तक पहुँचा देते थे। यह समाचार सारे नगरमे फैल गया था कि मीनलदेवी बिखराटमें चन्द्रावतीकी सेना लिये पड़ी है, और इससे लोग उसपर बहुत ही नाराज़ हो रहे थे।

सन्ध्या होनेको आई। राजमहलके पिछले द्वारसे तीन व्यक्ति बाहर निकले। आगे शालमे लिपटी हुई एक लड़की, फिर ढाटेसे मुँह बाँधे हुए एक राजपूत जो कपड़ोपरसे नीचे दर्जेका मालूम होता था और कुछ दूरीपर मूँछोंपर बल देता हुआ डूँगर नायक। तीनो वेगपूर्वक चॉपानेरी दरवाज़ेकी ओर चले और उदाका घर आनेपर रुक गये। लड्की राजपूतकी ओर घूमकर बोली, "देखो, तुम खडे रहो। मैं आती हूँ। आज मेरा राज है।" लड़कीकी ऑखें हँस रही थीं।

ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे यह मज़ाक़ राजपूतको भला न लगा। वह ज़रा कठोरतासे देखता रहा, "तुम्हारी बात यदि उसने न मानी, तो? न मानेगा, तो मैं बल-प्रयोग करूँगा।

"तुम्हें अपना काम करना है, या बल-प्रयोग? अप्सराएँ कभी किसीसे परास्त हुई हैं?"

"ठीक है, मैं ज़रा दूर खड़ा रहूँगा। वह अभी आएगा।" कहकर राजपूत वहाँसे दूर हट गया।

इस प्रकार अभिसारिका बनकर बाहर निकलनेमें प्रसन्नकी संस्कारशील आत्माको दुःख तो अवश्य हुआ; फिर भी उसने अपने निश्चयके आगे अन्य

विचारोंको दूर कर दिया और वह सामनेवाले शिवालयमें घुस गई। संध्या हो जानेके कुछ देर बाद ही मुरारपालने आनेके लिए कहा था।

धोंढ़के इस सेनापतिने चाँपानेरी दरवाज़ेकी रखवाली करनेका काम अपने ऊपर ले लिया था और किस कारणसे उसने वह लिया था यह न जाननेसे खेंगार और त्रिभुवनने उसे लेने दिया था। इतनेमें जिस बालाके पीछे वह पागल हो गया था और जिसके स्मरण उसके मनमें रम रहे थे, उसने भी अनायास इसी शिवालयमें मिलनेका संकेत किया; अतएव मुरारपालके हर्षका पार न रहा। रानीके लिए दरवाज़ा खोलनेमे अभी विलम्ब था; अतएव इस बालाके साथ घड़ी दो घड़ी विनोदमे बितानेका उसे अच्छा अवसर मिल गया। प्रसन्नको अन्दर गये अभी कुछ ही देर हुई थी कि वह आया और शिवालयमें प्रविष्ट हुआ। उसे अपनी वीरताका जितना गर्व था, अपने रूपका भी उससे कम न था! इस अवसरके लिए उसने अपने सशस्त्र और सुन्दर शरीरपर सादे और स्वच्छ वस्त्र धारण किये थे और अपनेको धन्य-भाग्य समझकर वह मन ही मन मुस्करा रहा था।

वह भीतर गया, आस-पास देखने लगा, दर्शन किये, घंटा बजाया और भगवान् शिवके समक्ष चौकीपर बैठकर बोला, "जय शंभो! भोलानाथ!"

शिवालयके पीछे प्रदक्षिणाके बरामदेसे निकलते हुए प्रसन्नने कहा, "माँगो माँगो, जो माँगोगे, वही दूँगा।"

"ओहो! आप आ गईं?"

"वचनका पालन आप जैसे व्यक्ति ही नहीं करते। मैंने मना कर दिया था, फिर भी आपने यह पता लगाया न कि मैं कौन हूँ?"

"मेरा मन न माना, तो मैं क्या करता?"

कल प्रसन्नने मुरारपालसे महलमें भेंट करके इस समय मिलनेके लिए कहा था। परन्तु उसे यह जाननेकी बड़ी आतुरता थी कि यह सुन्दरी कौन है; अतएव उसने उदासे पूछ लिया और उदाने वह बात प्रसन्नसे कह दी।

"इसी तरहसे क्या आप भले लोगोंकी इज्जत रखते हैं? यह तो ठीक हुआ कि मैंने किया नहीं है।"

प्रसन्नको शान्त करनेके विचारसे उसने कहा, "मैंने यह किसीसे नहीं कहा कि हम लोग साथ आये हैं।"

उतावलीका ढोंग करती हुई प्रसन्न बोली, "बड़ा अनुग्रह हुआ। अच्छा, अब मैं जाती हूँ।" मुरारपालने बाहर आकाशकी ओर देखा। अभी पूरा अन्धकार नहीं हुआ था; अतएव उसे समय था।

"नहीं, नहीं, अभी आई और अभी चली जाओगी? इतनेके लिए ही मुझे बुलाया था?"

"मैंने आपको क्या वचन दिया था? दूसरी बार मिलनेका। सो, मैं मिल ली। रात्रिके समय मुझे कोई लौटते हुए देख ले, तो क्या कहे?"

"कुछ देर तो बैठो। इन उपद्रवके दिनोंमें कौन देखने बैठा है? और फिर तुम्हारी बुआ तो हैं नहीं।"

"अच्छा, लीजिए, कुछ देर बैठ जाती हूँ।" कहकर वह दो खंभोंके बीच जड़ी हुई लकड़ीपर चढ़कर बैठ गई, "कहिए, अब क्या कहते हैं?"

"उस दिन महारानीजीको छोड़कर तुम भाग क्यों आईं?"

"वह निजी बात है, किसीके कहने जैसी नहीं है।

"परन्तु मैंने एक बात सुनी है, वह क्या ठीक है? तुम्हारा विवाह अवन्तीमें करना चाहती हैं।"

महत्त्वाकांक्षी मुरारपाल मन ही मन कुछ स्वप्न देख रहा था। जबसे उसने यह जाना कि उसके साथ आनेवाली बाला मीनलदेवीकी दुलारी भतीजी है, तबसे उसकी आशाओंका पार नहीं रहा था। यदि मीनलदेवी समस्त राजसत्ताको अपने हाथमें ले ले और देवप्रसादकी शक्ति क्षीण हो जाय, तो मालवाके साथ युद्ध आरम्भ हो सकता है। और तब मुझ जैसे होशियार और अनुभवी योद्धाको अग्र-स्थान प्राप्त हो सकता है, यह स्वाभाविक है। और प्रसन्नका विवाह यदि मालवामें न हो, तो फिर इस नये उत्साही योद्धासे वह सुन्दरी क्यों न विवाह करेगी! पूछताछसे उसने यह भी सुना कि देवप्रसादके पुत्रसे उसके विवाहकी बात चल अवश्य रही थी, परन्तु मीनलदेवीके कारण रुक गई। इस समय भगवान्‌की कृपासे मीनलदेवीपर उपकारका भार चढ़ानेका अच्छा अवसर मिला है। यदि वह रानीको नगरमें लाकर राजमहलमें छोड़ आए, तो दूसरे ही क्षण नगरकी अशान्ति दूर हो जाय, सत्ता पुनः ज्योंकी त्यों स्थापित हो जाय; सत्ताके तेजकी रक्षा करनेवाला मुरारपाल गुर्जरेश्वरीका दाहिना हाथ बन जाय और फिर प्रसन्नसे विवाह करना एक सरल कार्य हो जाय। इन स्वप्नोंका समर्थन करनेके लिए वह

प्रसन्नकुमारीको रिझाने लगा। धीरे धीरे यह जाननेका प्रयत्न करने लगा कि वह मालवराजसे विवाह करनेको राज़ी है या नहीं। परन्तु प्रसन्नकुमारी यों ठगी जानेवाली न थी, वह भी मुरारपालको तारे दिखलाने लगी!

कुछ देरमें शिवालयका रक्षक दीपक जलानेको आया और मुरारपाल उठ खड़ा हुआ, "चलो, अब तुम्हे विलम्ब हो रहा होगा।"

"वाह खूब! 'गरज सरी कि वैद्य वरी।' अब क्या करूँगी? राजमहलके द्वार तो बन्द हो गये होंगे, और जिससे खिड़की खोल रखनेको कहा था, वह भोजन करनेको चला गया होगा।"

"मुझे ज़रा काम है, जहाँ आप कहे, वहाँ पहुँचा आऊँ।"

"इस समय कहाँ जाओगे? तुम्हारा पहरा तो सारी रातके लिए चाँपानेरी दरवाज़ेपर है। सामने उदाके घरपर ही तो सोते हैं न?"

मुरारपालने उलझनम पड़कर कहा, "हाँ, परन्तु इस समय मुझे ज़रूरी काम है।" अँधेरा अधिकाधिक होता जा रहा था।

"तब मैं यहीं रहती हूँ। तुम अपना काम निपटा आओ, मुझे फिर पहुँचा-आना।"

"मैं तुरन्त नहीं लौट सकूँगा।"

प्रसन्नने जरा चिढ़कर कहा, "तो क्या एक दिनको भी वह काम नहीं टाला जा सकता?"

"नहीं।"

गुस्सेका डौल करते हुए प्रसन्नने कहा, "अच्छा, जाओ। मैं यहीं बैठूँगी और जब मेरी इच्छा होगी तब जाऊँगी। तुम अपना काम करो।"

"नहीं, नहीं परन्तु—"

"परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं, मुझे स्वार्थी आदमीका मुँह नहीं रुचता।"

"ऐसा कहती हो?"

"जाओ या न जाओ। मैं पहले ही जानती थी कि पाटनकी सभ्यता घोड़में पड़े पड़े जंग खा गई है।"

"मैं एक ऐसे आवश्यक कार्यसे जा रहा हूँ कि यदि तुम उसे जानो, तो तुरन्त मुझे जानेको कह दो।"

ज़रा आजिज़ी करते हुए प्रसन्नने कहा, "मुझे बताओ न ऐसा कौन-सा काम है?" उसके हाव-भाव क्षण क्षणमे इस प्रकार बदल रहे थे कि देखकर किसीका भी हृदय पिघल जाता, फिर यह तो पिघल जानेके लिए तैयार हुआ मुरारपाल था। "मुझे क्षमा करो, वह कहने लायक नहीं है। कल सवेरे बताऊँगा। जब जानोगी तब समझ जाओगी, कि मै ठीक कह रहा था। मुझे जाने दो, समय हो रहा है।"

"ये खुले है दरवाजे। मुझपर विश्वास न हो, तो मुझे सुननेकी भी कहाँ परवा है!"

"यह तुम क्या कर रही हो प्रसन्नमुखी? तुम चतुर हो, सयानी हो और इतनी-सी बात नहीं समझ सकतीं?"

"मेरी अकल मारी गई है। जाओ, देख क्या रहे हो?"

"मेरे हृदयको चीरे डाल रही हो, जानती हो?"

"मेरा हृदय भी तो चिर चिरकर कमीसे टुकड़े हो गया है, समझे?" कहकर प्रसन्न नीचे कूद पड़ी। पैंजनियोंकी झंकारने योद्धाके हृदयको जीत लिया।

"प्रसन्नमुखी, तुम मुझे बड़ी उलझनमें डाल रही हो। देखो, बाहर आओ, मैं तुम्हे बता देता हूँ, परंतु गुप्त रखना।"

"मुझे कुछ सुनना ही नही।" कहकर प्रसन्न शिवालयके अन्दरके कमरेकी ओर जाने लगी।

मुरारपालने निराश होते हुए कहा, "प्रसन्नमुखी!"

तिरस्कारसे गरदन मरोड़ते हुए प्रसन्नने पूछा "कहो, क्या है?"

"इधर आओ, मै कहता हूँ।"

"क्या कहते हो?"

"चलो, बाहर चलो, मैं कहता हूँ" कहकर वह प्रसन्नके साथ साथ शिवालयके द्वार तक आया। वह रोबसे नथुने फुलाये चुप खड़ी रही। "प्रसन्नमुखी, मुझे तुम्हारी बुआजीने एक आवश्यक कार्य सौंपा है।"

लापरवाहीसे प्रसन्नने पूछा, "क्या?"

"उन्हें मुझे नगरमे ले आना है। वे इसी समय इस दरवाज़ेपर आएँगीं।"

प्रसन्नने इस प्रकार पूछा, जैसे कुछ जानती ही न हो, " पर अन्दर कैसे आएँगीं ? दरवाज़े तो सब बन्द हैं, और कुंजियाँ त्रिभुवनपालके पास हैं । "

" मेरे पास भी एक कुंजी है । किसीसे कहना मत । "

" तुम कहाँसे लाये ? "

" रानीने दी है । चलो, दरवाज़ेके पास, इसी समय कोई बाहरसे खटखटाएगा । दरवाज़ेके पहरेदारोको मैंने छुट्टी दे दी है; अतएव वहाँ कोई न होगा । "

" परन्तु खेंगारसिंह, त्रिभुवनपाल और सब लोग क्रोधित होंगे, तो ? "

" तुम क्या बात करती हो ? यह सारा उपद्रव तो इस कारण है कि चद्रावतीकी सेना सामने पड़ाव डाले है । जहाँ रानी अन्दर आई और लोगोंने जाना कि तुरन्त शान्ति हो जायगी । फिर त्रिभुवनपालसे कहा जायगा कि अब तुम हवा खाओ । "

अन्तिम शब्दोंको सुनकर प्रसन्नकी इच्छा हुई कि मुरारपालकी नाक पकड़कर खींच ले, " परन्तु, तुम तो पट्टनी हो ? "

" हाँ, पट्टनी तो सात पीढ़ियोंसे हूँ । क्यों, इससे क्या हुआ ? "

" तुम ऐसे मौकेपर अपने नगरवासियोंकी नाक काटोगे ? "

" लोगोंके भला नाक क्या ! और हो, तो भी मीनलदेवीके शब्द मेरे लिए शिरसा वन्द्य हैं । पर तुम ऐसा क्यों कहती हो ? रानीका यहाँ आना तुम्हें पसन्द नहीं है ? "

"यहाँसे गई न होतीं तो पसन्द होता, परन्तु, शोक छोड़कर, सूतकको त्यागकर, पाटनसे बाहर होकर चन्द्रावतीके दलमें जा मिलीं; इससे वे मेरे मनसे उतर गईं । पाटनकी रानी पाटनके प्रभावकी मूर्ति होनी चाहिए या उसे पराधीन बनानेवाली ? "

" प्रसन्नमुखी, तुम्हारा कहनेका ढंग तो सामल बारहटके ढंगसे टक्कर ले रहा है ! "

" बारहटजीके चरणोंकी रजके समान भी अभिमान तुममें होता तो अच्छा था । पर तुम यह क्या करते हो ? "

"खिड़कीके पास खड़ा होता हूँ कि कोई बाहरसे आए, तो पता चल जाए।"

इस समय चाँपानेरी दरवाज़ेके पास लोगोंका आना जाना बन्द था, इस लिए वे निश्चिन्त होकर बातचीत कर सके।

"मुरारपालजी, तुम किसके हो? पाटनके या उसकी रानीके?"

"पाटनकी रानी मेरी स्वामिनी हैं।"

"तुम्हारा नगर बिक रहा है और तुम यह देखते रहोगे? रानी या राजा तो आज आये और कल चले गये, परन्तु गई हुई टेक फिर आ सकती है? तुम्हारी नज़रमें तो पृथ्वीमें पाटन ही पहले होना चाहिए।"

"सो तो है ही। परन्तु, इससे कहीं रानीकी आज्ञाका अनादर किया जा सकता है?"

"परन्तु एक निर्जीव आज्ञाके आनादरके लिए तुम अपने जीवित पट्टनियोंको बेच डालोगे? उनके गौरवपर,—उनकी स्वतन्त्रतापर पानी फेर दोगे?"

"तुम व्यर्थ नाराज होती हो। स्वामीकी आज्ञाका पालन ही राजपूतके लिए शोभा देता है।"

"तुम्हारे पूर्वजोंकी भी यही धारणा होती, तो इस समय पाटनपर गज़नीके सामन्त राज करते होते। मुरारपाल, तुम शूरवीर हो और ईमानदार हो। मैं कोई रास्ता चलनेवाली नहीं हूँ, राजाओंकी कन्या हूँ। मैं आँचल पसारकर भीख माँगती हूँ कि तुम लौट चलो और जिस रानीने पाटनको छोड़ दिया, मुंजाल और मंडलेश्वरके साथ दगा किया, उस रानीको भटकती रहने दो। अपने नगरकी नाक काटकर उसे संसारमें तिरस्कारका पात्र न बनाओ।"

"मैंने नहीं जाना था कि तुम बुआ-भतीजीमें इतनी शत्रुता है।"

"मैंने भी न जाना था कि घोंडका सेनापति इतना खुशामदी है।"

"प्रसन्नमुखी, मैं किसकी प्रशंसा करूँ? तुम्हारे शब्दोंकी या तुम्हारे जोशकी? मुझे ऐसा लगता है कि जीवन-भर तुम्हारे वचन और तुम्हारे नयनोंकी विद्युत्को सहा करूँ; परन्तु तुम्हारा यह सब कथन पत्थरपर पानी ढोलनेके समान है।"

इसी समय खिड़कीको किसीने बाहरसे खटखटाया। मुरारपाल तुरन्त घूम पड़ा,

कान लगाकर सुनने लगा और कुंजी निकालनेके लिए उसने अपनी जेबमें हाथ डाल दिया। प्रसन्नने उसका हाथ थाम लिया।

"मुरारपालजी, तुम टेकवाले राजपूत होकर यह क्या कर रहे हो?"

"मुझे रोको मत, मैं अडिग हूँ।" कहकर मुरारपालने कुंजी निकाली, खिड़कीपर ठोकी और फिर अर्गला खोलनेके लिए उसपर हाथ रखा।

प्रसन्नने उतावलीसे कहा, "तुम ऐसा अधम काम करोगे? तनिक सुनो तो।"

मुरारपालने अर्गला खोली; अतएव खिड़कीका दरवाज़ा केवल सॉंकलसे ही बन्द रहा और उसके और बड़े दरवाज़ेके बीच दरार दिखलाई पड़ी, अतएव बाहरके मनुष्यने दरारमेंसे पूछा, "कौन, मुरारपालजी?"

सॉंकलपर हाथ रखकर मुरारपालने कहा, "हॉं, महारानीजी आई हैं?"

"हॉं, कुछ दूर हैं, मैं ले आता हूँ।"

"जाओ, जल्दी करो।" कहकर मुरारपालने ताला खोलना स्थगित कर दिया। प्रसन्नको धीरज बँधा।—अभी कुछ समय है।

"मुरारपाल, तुम न मानोगे?"

"नहीं।"

"क्यों? रानीको प्रसन्न करनेसे क्या लाभ है? मुझसे कहो, मैं तुम्हें जो कहो वही दिलवा दूँ।"

"लाभ?" बेचारा मुरारपाल प्रसन्नको नाराज़ करके अलग नहीं कर सकता था; अतएव वह उत्तरमें कहने लगा, "अपना धर्म—"

प्रसन्नने तिरस्कारके साथ कहा, "नगर खोना, टेक छोड़ना, आबरू और स्वतन्त्रता गँवाना, यही तुम्हारा धर्म है कि और कुछ?"

प्रसन्नके तेजस्वी मदमाते सौन्दर्यकी ओर निहारते हुए मुरारपालने कुछ हँसते हुए कहा, "तुम मुझे क्या लाभ पहुँचाओगी?" प्रसन्नने उस दृष्टिको देखा और उसे ऐसा लगा कि यह जितना सोचा था, उससे भी अधिक स्वार्थी और तुच्छ है। अतएव उसने जैसे बने तैसे उसे परास्त करनेका निश्चय कर लिया।

"तुम्हें क्या चाहिए? मुझसे जो बनेगा सब कुछ दूँगी। मैं पाटन-निवासियोंकी ओर हूँ। इस समय तुम रानीको नगरमें ले आओगे, तो फिर मैं तुमसे बात भी न करूँगी। कायर, खुशामदी तथा नगरद्रोहियोंका मैं नाम लेना भी पसन्द नहीं करती मुरारपाल!" नेत्रोंसे अद्भुत काम-बाण छोड़ते हुए प्रसन्नने कहा,

" रानीको खुश करके क्या पाओगे ? पदवी ? वह तो है। सत्ता ? वह भी है। कीर्त्ति ? वह द्रोहियोको नही मिलती। तब और क्या मिलेगा ? "

"सुन्दरी, लाभ कहो, धर्म कहो, जो चाहे कहो; परन्तु तुम मुझे सीधे मार्गसे क्यों खींचे लिये जा रही हो ? तुम्हे क्या फायदा होगा ? "

" मुझे ? " प्रसन्नने निकट आकर कहा, " तुम जैसा शूरवीर योद्धा द्रोही न बन जाय, यही मुरारपालजी ! रानी सब कुछ दे देगी, परन्तु जो कुछ मैं दे सकती हूँ वह वे नहीं देंगी। "

प्रसन्नके नेत्रोंके तेजके समक्ष नीचे देखते हुए उसने पूछा, " वह क्या ? "

प्रसन्नने मगरूरीसे कहा, " पद्मिनीका हाथ। " उसके सुन्दर मुखपर मदभरे नयनोंमें अभिमान प्रकाशित हो उठा। मुरारपाल इस तरह चौंकपर पीछे हट गया, जैसे उसके मस्तकपर घाव लगा हो।

" तुम्हारा ?

" हॉ, मेरा, प्रसन्नमुखीका। पद्मिनी बिना सारा संसार सूना है, समझे ? संसार बनाओगे, या बिगाड़ोगे ? " कहकर प्रसन्नने अपने दोनो हाथ मुरारपालके कन्धेपर रख दिये। साहसी प्रसन्न अपना अन्तिम पासा फेंक रही थी। उसके विशाल नेत्रोंकी चमक मुरारपालके हृदयमे ज्वाला उत्पन्न कर रही थी। प्रसन्नके स्पर्शसे वह कॉप उठा। उसकी सुध-बुध जाने लगी।

" प्रसन्नमुखी, तुम मुझे कहॉ घसीट ले जाओगी ? सच कह रही हो ? "

" अपनी कुंजी मुझे दे दो, फिर जो कहोगे, मुझे सब स्वीकार होगा। "

प्रसन्नके हाथ थामकर बड़ी उमंगसे वह बोला, " सचमुच ? "

" हॉ लाओ। " मुरारपालके शिथिल हाथोसे प्रसन्नकुमारीने कुंजी ले ली।

" वह अर्गला लगा दो। "

कॉपते हाथो मुरारपालने अर्गला लगा दी।

तनिक हँसते हुए प्रसन्नने कहा, " मुरारपालजी, आज आपने पाटनको जीवन-दान दिया है। "

" और अब तुम मुझे जीवन-दान कब दोगी ? "

प्रसन्नने अचानक अपने स्वरूपको बदलकर धिक्कारसे कहा, " मुरारपाल, मेरा वश हो, तो चौरासी जन्मोंमें भी नहीं। "

" ऐं। "

" ऐं क्या ! जो कार्य तुमने पाटनके लिए नहीं किया, उसके गौरव, उसके स्वातन्त्र्य तथा अपने पूर्वजोंकी टेकके लिए नहीं किया, वह इस मिट्टीकी पुतलीके लिए किया ! और अब मैं तुमसे विवाह करूँ ? अजी, तुम्हारा स्पर्श भी मैं न करूँगी। यहाँ सब धाँडकी भिल्लनियाँ नहीं है।" कहकर प्रसन्न साहससे कमरपर हाथ रखकर खड़ी हो गई और मुरारकी ओर देखने लगी।

लज्जासे, क्रोधसे, निराशासे मुरार दिङ्मूढ़ होकर देखने लगा, " क्या तुम सच कह रही हो ? "

" हाँ, सच कह रही हूँ; एक बार नहीं, हज़ार बार। तुम्हारा मुख देखकर मेरी आँखें लजा रही हैं। तुम जैसे द्रोहियोंको कोल्हूमें पिलवाकर समाप्त कर देना चाहिए। तुमने मेरी बात मान ली होती और पाटनकी प्रतिष्ठाके लिए, टेकके लिए कुंजी दी होती, तो मैं तुम्हें अपने भाईसे भी अधिक समझती। परन्तु अब ! अब मैं तुम्हारी छायासे भी अपवित्र हो रही हूँ। "

" विश्वासघातिनी ! मेरी सज्जनताका यह परिणाम ? तुझे ख़बर है कि तेरे हाथसे कुंजी छीन लेना कितना सहज है ! "

" मग़दूर हो तो ले लो, देखूँ ! अब चुपचाप चले जाओ, नहीं तो लोगोंके सामने तुम्हारी फजीहत होगी। "

" ऐसा ! " कहकर मुरारपाल एकदम प्रसन्नकी ओर झपटा।

प्रसन्न जानती थी कि दरवाजेकी आड़मे त्रिभुवनपाल और डूँगर नायक धीरेसे आकर खड़े हो गये हैं। इससे वह पीछे खिसक गई और बीचमें त्रिभुवनकी तलवार खिच गई।

त्रिभुवनका शान्त और सत्तापूर्ण स्वर सुनाइ पड़ा, " मुरारपाल, एक राजपूत वीरकी यही शिष्टता है ? यह क्यों नहीं कहते कि प्रसन्नने आज तुम्हे पाप करनेसे बचा लिया ! "

मुरारपालने सारा खेल देखा और उसे अपनी मूर्खताका पूरा पूरा खयाल हो आया। वह समझ न सका कि अब क्या करे, किस प्रकारके व्यवहारसे काम ले। उसे ऐसा लगा कि अब चारों ओरसे कृतघ्नता, द्रोहीके रूपमे लज्जा और फजीहत मिलेगी। वह ज्योंका त्यों खड़ा रहा।

" त्रिभुवनपाल, मुझे नगरसे बाहर चले जाने दो, अब मै यहाँ नहीं रहना चाहता। "

" सवेरे मोंढेरी दरवाजेसे चले जाना। आज्ञा दे दूँगा। इस समय घर जाओ। प्रसन्न, मुरारपालसे अब कुछ काम है ?"

दूर खड़े खड़े अपनी साड़ी ठीक करते हुए प्रसन्नने कहा, "नहीं, जाइए!"

" डूँगरनायक, तुम इस दरवाजेकी रक्षापर रहो, संभव है कोई उत्पात खड़ा हो जाय।"

प्रसन्नने कहा, " त्रिभुवन, यह डूँगरनायक तुम्हारी बड़ी अच्छी सेवा कर रहे हैं। यह सब निबट जाय तो इन्हें एक छोटी-सी जागीर दे देना।"

हर्षित होते हुए डूँगरने कहा, " आपको अखंड सौभाग्य प्राप्त हो बहनजी!" उसका हृदय फूलकर फटा जा रहा था।

प्रसन्न और त्रिभुवन एक ओर चले गये और मुरारपाल सिर झुकाकर धीरे धीरे दूसरी ओर चला गया।

कुछ देरमें बाहरसे किसीने दरवाज़ा खटखटाया। दूसरी बार खटखटाया। तीसरी बार खटखटाया। इस ओर मुखपर हाथ रखे डूँगरनायक हँसता रहा। आखिर थककर उसने दरवाज़ा खटखटाना बन्द कर दिया।

३६—पट्टनियोंका क्रोध

जब प्रसन्न और त्रिभुवनपाल राजमहलकी ओर गये, तब उनके चित्त कुछ प्रफुल्लित हो रहे थे और प्रसन्नके मज़ाक़ सुनकर त्रिभुवन इतना पिघल गया था कि हँस सके। जब वे महलमें लौट आये तब कल्याणमल्लने सूचित किया कि दो-तीन आदमी कुछ समाचार लेकर आये हैं। त्रिभुवनने उन्हें अपने पास बुलवाया। पहला सैनिक पाटनकी एक टुकड़ीका था और यह कहने आया था कि कल सन्ध्यासमय विखराटकी सेनाके कुछ सैनिकोंके साथ मार पीट हो गई है। दूसरा सैनिक मालवराजके गुजरातमें प्रवेश करनेका समाचार लेकर आया था। तीसरा सैनिक ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे बड़ी मुश्किलसे आ पाया है।

" महाराज, क्या आप मुझे नहीं पहचानते ? मैं—"

" कौन, रामसिंह!" कहकर त्रिभुवनपाल आगे बढ आया, " क्यों, क्या बात है ? क्या नये समाचार हैं ? पिताजी, वल्लभ—"

"मुझे वल्लभसेन महाराजने भेजा है।"

"वे कहाँ हैं?"

"अन्नदाता, वे मेरलकी सेना लेकर खिखराटके समीप आ पहुँचे होंगे। मुझे समाचार देनेको आगे भेज दिया है।"

प्रसन्नकी ओर घूमकर त्रिभुवनने कहा, "शाबास! अब तुम्हारी बुआजीसे कहा जाय, कि चखो मज़ा। पिताजीका पुण्य-प्रताप अभी तप रहा है। हाँ, पिताजी—"

घबराते हुए रामसिंहने कहा, "परन्तु मुझे एक बात और कहनी है।"

त्रिभुवनको एक धक्का-सा लगा, उसने उसकी ओर घूमकर कहा, "क्या?"

रामसिंह अधिक घबरा गया। उसकी समझमें न आया कि वह क्या कहे।

"मैं गंभीरमल्लजीके साथ था।"

"हाँ, मुंडुकेश्वरमें, पिताजी तो वहाँ समयपर पहुँच गये होंगे, वे कहाँ हैं? घबरा क्यों रहे हो? तुम्हारी आँखोंमें आँसू क्यों आ रहे हैं? बताओ।" रामसिंहको ज्यों ज्यों घबराते देखा, त्रिभुवनने त्यों त्यों अधिक अकुला कर पूछा।

रामसिंह रो पड़ा, "अन्नदाता, क्षमा करो। मुझसे नहीं रहा जाता। मंडलेश्वर महाराज...स्वर्ग...सिधार गये।"

त्रिभुवनके मुखपर कल जो कठोरता, उग्रता आ गई थी, वह फिर लौट आई। अपनी समस्त अनुभूतियोंको वशमें रखकर उसने पूछा, "कहाँ, कब?"

"कल रात्रिके समय, सरस्वतीमें!"

"सरस्वतीमें! और माताजी?"

रामसिंहने मंडलेश्वरके उनसे मिलने तथा निराश वल्लभके मेरल लौट आनेतकका इतिहास संक्षेपमें कह सुनाया। त्रिभुवनने सुना। इसी समय महलमें रहनेवाले लीलाधर, उदा आदि सब लोग भी आ पहुँचे। सभी शोकसे व्याकुल हो उठे। प्रसन्नने लीलाधरको त्रिभुवनके साथ रहनेके लिए सूचित किया। बात सुनकर त्रिभुवन कुछ देर मौन रहा। उसके नेत्रोंमें आँसू नहीं थे, उसके मुखपर शोक नहीं था, उसका मुख शवके समान जड़ हो गया था। उसके नेत्र केवल दो अंगारोंकी भाँति चमक रहे थे।

कठोर स्वरमें उसने कहा, "उदा सेठ, नगरमें ढिंढोरा पिटवा कर यह ख़बर करा दो, और पंडितों, शास्त्रियों, सामन्तों और महाजन-संघके सेठोंको

तुरन्त बुलवाओ।" कहकर त्रिभुवन वहाँसे चला गया। किसीने उसके पीछे जानेका साहस नहीं किया, केवल प्रसन्न ही गई। इस समय उसे भी त्रिभुवनके क्रोधका बड़ा भय हो रहा था; फिर भी त्रिभुवनको आश्वासन देना उसे आवश्यक प्रतीत हुआ। त्रिभुवन अन्दरके कमरेमें पहुँचकर, बिना किसी ओर देखे, गद्देपर जाकर पड़ गया।

प्रसन्न क्षण-भरके लिए उलझनमे पड़ गई और खड़ी रही। इन दोनो निर्दोष साथियोंने इतने वर्ष एक साथ उठते, बैठते, ऊधम करते व्यतीत किये थे। पिछले दो दिनोंसे इनके पारस्परिक संबन्धमें कुछ परिवर्तन हो गया था। उन्हे इसका ज्ञान हो गया था कि आगे क्या संबंध,—क्या सम्पर्क होगा। इस ज्ञानने प्रसन्नकी मानसिक स्थितिमे बड़ा परिवर्त्तन कर दिया था। त्रिभुवनको स्पर्श करना,—ऊर्मि-योमे बहकर उसके हाथको अपने हाथमे लेकर दबाना ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे यह कोई भगीरथ कार्य हो, बड़ेसे बड़ा सुख या लाभ हो। इसके लिए आज वह विचित्र रूपसे लजा गई। ऐसी परिस्थितिमे उसके साथ पहलेकी भाँति स्वतंत्र-तासे व्यवहार करना उसे असम्भव ज्ञात हुआ। ऐसे समय, स्त्रियोंको जो सहज ज्ञान होता है उससे उसे ऐसा लगा कि त्रिभुवन भड़क गया है। उसकी अनु-भूतियाँ इतनी उत्तेजित हो गई हैं कि साधारण मार्गसे उनका प्रवाह बाहर नहीं निकल सकता, एक स्थानपर इकट्ठा होकर उसे सूम और विकराल बनाये दे रहा है। यह अवस्था बहुत बुरी है, और उससे त्रिभुवनको बचानेका कार्य वही कर सकती है। उसने लज्जा, मर्यादा आदि सबको दूर कर दिया और वह त्रिभुवनके निकट बैठ गई तथा उसके हाथ अपने हाथमे लेनेका प्रयत्न करने लगी। त्रिभुवनने उसके हाथोंको ज़ोरसे झटक दिया और अपने विकराल नेत्रोंसे प्रसन्नकी ओर देखा। प्रसन्न ज़रा भी न डरी और बोली, "त्रिभुवन!"

"तुम यहाँसे चली जाओ, मुझे किसीकी आवश्यकता नहीं है।" कहकर वह उठ बैठा। प्रसन्न अधिक समीप आ गई और उसका हाथ थाम कर दूसरे हाथसे उसका सिर अपनी गोदमे लेनेका प्रयत्न करने लगी।

"जाती हो या नहीं?" कहकर त्रिभुवनने धक्का देकर प्रसन्नको वहाँसे दूर ढकेल दिया। "इस समय भी मज़ाक़!"

प्रसन्नको चोट लगी, फिर भी वह निकट आ बैठी और त्रिभुवनके कंधेपर हाथ रख कर बोली, "तुम क्या करना चाहते हो, यह तो कहो?"

त्रिभुवन अधिक उबल पड़ा और उसने आवेशसे हाथकी मुट्ठी बाँधकर ऊपर तान दी ! परन्तु प्रेमालु प्रसन्नकी सुधा-पूर्ण, अश्रु-पूर्ण, आँखें देखकर हाथको फिर नीचे डाल दिया।

उसने कहा, "प्रसन्न, मुझे क्यों इस समय चिढ़ा रही हो ? तुम देखतीं नहीं कि पिता गये, माता गई और अब संसारमें मैं अकेला हूँ।" रुकी हुई ऊर्मियोंका प्रवाह एकदम बह निकला, त्रिभुवनकी सख्ती चली गई, वह ज़ोरसे रो पड़ा। हिचकियोंने उसके सारे शरीरको हिला डाला, "पिताजी ! हाय पिताजी !"

बिना एक शब्द उच्चारण किये प्रसन्नने उसे अपने हाथोंमें ले लिया और इस प्रकार उसके माथे और कपालपर हाथ फेरने लगी जैसे वह कोई छोटा-सा बालक हो। दुःखके प्रबल भारसे दबा हुआ त्रिभुवन उसके अधीन हो गया। स्त्री-जातिमें हर उम्रमें मातृत्वका अंश रहता है; और वही अंश उनमें सहिष्णुता, क्षमा और स्नेहको प्रेरित करता है, दुःखको कम करनेकी शक्ति लाता है, और इसीसे उनका दिग्विजय इतना सरल हो जाता है।

ज्यों ही नगरमें समाचार फैला कि यतिने रुद्र-महालयको जलाकर मंडलेश्वरको जला देनेका प्रयत्न किया और उससे बचकर, सरस्वतीमें कूदकर, तैरकर भागते हुए भी यतिके विश्वासघातसे वे मारे गये, त्यों ही लोगोंमें खलबली मच गई। चारों दिशाओंसे विलापके स्वर सुनाई पड़ने लगे। बहादुर पट्टनी शौर्यके भक्त थे; और मंडलेश्वर और चाहे जैसा हो पर शौर्यकी तो मूर्ति था। उसका स्वभाव, उसकी कीर्ति, उसका बाहुबल, उसके विवाह और मृत्युकी घटनाएँ बिल्कुल नीरस व्यक्तिका हृदय भी प्रशंसासे—भक्तिसे भर-पूर कर देनेवाली थीं। सारे नगरमें ऐसी ग्लानि फैल गई जैसे आज ही सबके पूज्य पिताकी मृत्यु हो गई हो। सभीके हृदयमें रानी तथा चन्द्रावतीसे बदला लेनेके संकल्प उठने लगे। उदाने सवेरे निमंत्रण भेजकर प्रत्येक जातिके अग्रणी मुखियाओं, प्रतिष्ठित सेठ-साहूकारों और सामन्तोंको बुलाया था। सभी शोकग्रस्त और क्रोधसे भरे हुए दरबारमें आये। जब सब आ गये तब मंडलेश्वर खेंगार त्रिभुवनपालको बुला लाये। त्रिभुवन बहुत ही नरम हुआ जान पड़ता था। केवल उसके नेत्रोंमें ही रक्तका प्यासा तेज चमक रहा था। जब वह पहुँचा, तब सबने खड़े होकर स्वागत किया। उनके बैठ जानेपर त्रिभुवनपाल कहने लगा। उसका स्वर शान्त और धीमा था।

"बन्धुओ, आप सबको यह ज्ञात हो गया होगा कि गुजरातके सिंहासनको

किस प्रकार कलंकित किया गया है। मैंने जो आप सबको बुलाया है, उसका एक ही कारण है। मेरी माता और मेरे पिताको मार डालनेवालेके लिए पुत्रके रूपमें मेरा एक ही धर्म है और उस धर्मका मेरी तलवार पालन करेगी; परन्तु आप सब लोग इसे पसन्द करेंगे ? अभीतक हम लोग इसलिए लड़ते थे कि यहाँ परदेशी न घुस पाएँ, पर अब मै राजद्रोही बन गया हूँ, क्या आप लोग भी बननेके लिए राज़ी हैं ? मेरे विचारसे, मीनलदेवीके लिए एक ही मार्ग रह गया है, और वह यह कि वे अब फिर चन्द्रपुर लौट जायँ। उनके चले जानेपर ही कुमार जयदेव सोलंकियोंके सिंहासनपर बैठ सकेंगे; अन्यथा मैं अपने जीतेजी मीनलदेवीको पाटनमें प्रवेश न करने दूँगा। यदि आप लोगोंका विचार इसके विपरीत होगा, तो मैं यहाँसे चला जाऊँगा। मेरी सेना पड़ी हुई है, वह मेरी प्रतीक्षा कर रही है और अपने स्वामीकी मृत्युका बदला लेनेको तड़प रही है। आप सब लोग नगरके बड़े-बूढ़े हैं, विचार कर देखिए। अपने मंडलेश्वरके वैरका बदला लेंगे या चुप होकर बैठ रहेंगे ? ”

सब लोग एक दूसरेकी ओर देखने लगे। त्रिभुवनपाल समझ गया।

“ मैं जाता हूँ। मुझे आप लोग विचार करके कहला देना। मैं फिर आ जाऊँगा। ” यह कहकर वह अन्दरके खंडमें चला गया।

* * *

वहाँ राजकुलकी कुछ स्त्रियाँ और महाराज कर्णदेवकी दो पुरानी रानियाँ खड़ी थीं कि जिनका काम चैनसे खा-पीकर राज्यके झगड़े-झंझटोंका तमाशा देखते रहना था। कोई भी सोलंकी आए, वे निश्चिन्त थीं। उनमें प्रसन्न नहीं दिखलाई दी, अतएव त्रिभुवनपाल वहाँसे आगे चला गया। देखा कि प्रसन्न बड़ी शीघ्रतासे अपने वस्त्रों और आभूषणोंका ढेर कर रही है।”

“ क्या कर रही हो इस समय ? ”

“ पाटनसे बाहर जानेकी तैयारी। ”

त्रिभुवन निकट आ गया। उसकी कठोरता कुछ पिघल गई। उसने प्रसन्नका हाथ पकड़कर कृतज्ञतासे दबा दिया। प्रसन्नका हाथ अज्ञात रूपसे त्रिभुवनकी कमरसे लिपट गया। कुछ देर दोनो इसी तरह चुपचाप खड़े रहे।

वहाँ सभी अग्रणी लोगोंमे कुछ देर बड़ी सख्त बातचीत होती रही। वे सब दो-एक बातोंमें बिल्कुल एकमत थे। एक तो यह कि देवप्रसादकी मृत्यु बहुत ही

करुण हुई, पाटनके गौरवके लिए बड़ी अपमान-जनक हुई, और इसके लिए कुछ करना चाहिए। दूसरे, मीनलदेवीके प्रति किसीका कोई सद्भाव नहीं दिख-लाई पड़ा। पंडित-मंडलीमें पं० लीलाधर और गजाननके अतिरिक्त सभी रानीके विरुद्ध थे। सामन्तोंमें भी अधिकांश या तो मंडलेश्वरके कारण, या चन्द्रावतीकी सत्तासे अप्रसन्न रहनेके कारण, रानीके विरोधी थे। सेठ लोगोंमें पहले तो कुछ मत-भेद मालूम हुआ, परन्तु कुछ देरके वार्तालापसे सबको ज्ञात हो गया कि जबतक मीनलदेवी है, तबतक पाटनको क्षण-भरके लिए भी शान्ति न मिलेगी। इन सब कारणोंसे वे लोग एक निर्णयपर आ गये और खेंगार और लीलाधर त्रिभुवनके पास पहुँचे।

खेंगारने कहा, "महाराज, चलिए हमने निर्णय कर लिया है।"

"क्या?"

"सारा पाटन आपके पक्षमें है, आपके साथ है। जहाँ आप हैं, वहाँ हम सब हैं, चलिए।"

त्रिभुवनकी चिन्ता मिटी, वह वहाँसे बाहर आया। प्रसन्न भी वस्त्राभूषणोंको एकट्ठा करना छोड़कर उसके पीछे हो गई।

कुछ देरमें सब लोग अपने अपने घर चले गये। त्रिभुवनने सारा अधिकार अपने हाथमें ले लिया और उदाको मुरारपालके पास भेजा कि वह उसे रानीके पास जानेके लिए समझाए। मुरारपालने त्रिभुवनका सन्देश ले जाना स्वीकार कर लिया; कारण कि पाटनमें रहना अब उसे बहुत खल रहा था।

त्रिभुवनने दूसरा सन्देश वल्लभके पास भेजा कि पाटन अब मेरे अधीन है, अतएव सेनाको तैयार रखकर वल्लभको वहीं पड़ाव डाले रहना चाहिए।

३७—रानीकी निराशा

जब मीनलदेवीको चाँपानेरी दरवाज़ेसे कोई उत्तर न मिला, तब उसके क्रोध और अकुलाहटका पार न रहा। उसने कभी सोचा भी न था कि मुरारपाल इस प्रकार फँसा देगा। वह समझ न सकी कि किसपर क्रोध प्रकट किया जाय, अतएव उसका क्रोध अधिकाधिक भड़कता गया। सन्ध्याके अन्धकारमें वापस

लौटकर निराश हुआ रिसाला अधिक रात बीतनेपर, जहाँ डेरे-तम्बू खड़े करके लश्करने पड़ाव डाला था वहाँ पहुँचा। रानी अपने डेरेपर चली गई। सौभाग्यसे सेनापतिके अतिरिक्त कोई नहीं जानता था कि रानी पाटन जानेके लिए बाहर निकली थी।

इस समय किसकी सलाह ली जाय ? आनन्दसूरि अभीतक आया नहीं था। घबराहटमें रानी उसे कोसने लगी। अन्य लोगोंमे कोई ऐसा नहीं था कि जिससे वह सहायता ले। एक मुंजाल था; पर रानी नाक नीची करके उससे कैसे पूछने जाय ? मुंजाल कैदी बनकर पहरेदारोंके साथ घूमा करता और एक शब्द भी न बोलता था। उसकी सलाह इस समय सोनेसे भी क़ीमती होती, परन्तु अपना अभिमान त्यागकर वह उससे पूछने जाए ? रानीने इस विचारको मस्तिष्कसे अलग कर दिया। इस समय उसे अपनी परिस्थितिका कुछ ज्ञान हुआ। मुंजाल जब कहा करता कि मेरी ही बुद्धिसे तुम्हारी सत्ता टिक रही है, तब रानी उसकी बातोंपर हँस दिया करती, और विचारती कि जान-बूझकर ही मुंजाल उसकी सत्ताको जल्दी स्थापित नहीं होने देता है। इस समय उसे उसकी राजनीतिकी महत्ताका ख्याल आया। सामने पाटन दरवाज़े बन्द किये बैठा था, पीछेकी ओर मंडलेश्वर अपनी सेना लिये जमा होगा। केवल चन्द्रावतीका आश्रय लेकर, परदेशी रानीकी भाँति, परायी सेनाके सहारे वह यहाँपर राज लेनेके लिए पड़ी थी। ज्यो ज्यों वह अधिक विचार करती गई, त्यो त्यो उसकी उलझन बढ़ती गई। अपनी असहाय अवस्थाका चित्र अधिकाधिक स्पष्ट रूपमें उसके मनश्चक्षुओंके समक्ष खड़ा हो गया।

" माताजी, एक दूत कुछ समाचार लेकर आया है। सेनापतिजीने उसे भेजा है। "

रानीने ऊपर देखा। अपने चोबदारको देखकर उसके नेत्रोंमे आँसू भर आये। यह स्वामि-भक्त चोबदार सदा रानीके पीछे पीछे घूमा करता था। " अन्दर बुलाओ। "

" जो आज्ञा। " कहकर वह उस दूतको अन्दर बुला लाया।

" माताजी, यहाँसे दो योजनकी दूरीपर वल्लभसेनकी सेना आ पहुँची है। "

" ऐ ! तब मंडलेश्वर भी साथ होगा ? "

" नहीं माताजी, मंडलेश्वर तो सरस्वतीमे डूबकर मर गये और यह भी समा-

चार है कि मंडुकेश्वरके शिवालयको यतिजीने जला डाला।"

रानी चौंक पड़ी, "तुमने कैसे जाना! क्या यह सत्य है?"

"माताजी, मैं तो यह समाचार सुनकर ही यहाँ आया हूँ।"

"अच्छा, और कुछ कहना चाहते हो? नहीं तो जाओ।"

"नहीं माताजी, पता लगानेको विजयपालजीने सैनिक भेजे हैं।"

"ठीक है।" कहकर रानीने उसे विदा कर दिया।

रानी और भी विचारोंके चक्करमें पड़ गई। मंडलेश्वर मर गया और वल्लभसेन सेना लेकर यहाँ आया है! विश्वपालने अटल वल्लभसेनकी सारी कथा रानीसे कही थी। विचारोंमें मग्न सोये हुए जयदेवकी ओर जब तब देखते और अश्रुपात करते हुए रानीने सारी रात बिता दी। उसके विचारसे एक एक क्षण अधिकाधिक भयंकर होता जा रहा था। प्रातःकाल अधिक प्रामाणिक समाचार मिला। 'वल्लभ अपनी सेना लेकर शान्तिके साथ दो योजन दूर ही रहनेका विचार रखता है और बन्दीके रूपमें आनन्दसूरि भी उसके साथ है।' गुप्तचरोंने जो समाचार दिये थे, उनसे प्रकट होता था कि मंडलेश्वरके मर जानेपर भी उसकी सेना टूटना नहीं चाहती और चन्द्रावतीकी सेना बहुत बड़ी है, इस कारण वल्लभसेनने इस प्रकार बैठ रहनेका मार्ग ग्रहण किया है।

कुमार जयदेवने कहा, "माताजी, हम कल लौट क्यों आये? पाटन चलो न!"

मीनलदेवीने सान्त्वना देते हुए कहा, "चलेंगे बेटा, चलेंगे। अभी जरा विलम्ब है।" परन्तु जयदेवको इन परदेसियोंमें चैन न पड़ती थी और उसे भी ऐसा लगा कि इस समय परिस्थिति अधिक गंभीर हो गई है। वह अधिक कुछ न बोलकर चुप रहा।

जब दिन चढ आया, तब मीनलदेवीने विश्वपाल और अन्य दो-एक विश्वस्त सामन्तोंको और सेठ शान्तिचन्द्रके पुत्र विनयचन्द्र तथा चन्द्रावतीके सेनापति विजयपालको अपने पास बुला भेजा। मंडलेश्वरकी मृत्युके समाचारसे सेनामें कुछ हर्ष छा गया था और कलके रानीके अनुभवसे अपरिचित होनेके कारण विजय प्राप्त करना सबको एक साधारण-सी बात हो रही थी। यह समाचार यहाँ पहुँच चुका था कि 'पाटनके लोग बिगड़ खड़े हुए हैं।' परन्तु सभीकी यह धारणा थी कि अब वहाँ कोई बुद्धिमान् व्यक्ति नहीं रह गया है और लोगोंका

आवेश भी क्षणभंगुर होता है। अतएव, कुछ न होगा। इसलिए जब बुलाये हुए योद्धा आये, तब वे आशाके पूरमें बह रहे थे।

सब लोग बैठ गये और विचार करने लगे कि 'अब क्या किया जाय?' रातकी बात रानीने किसीसे नहीं कही थी। विनयचन्द्र और विश्वपाल साथ थे; अतएव केवल वे ही जानते थे। और किसीने उस बातको नहीं उठाया।

विजयपाल अनुभवी योद्धा था। उसने विचार करके कहा, "महारानीजी, और सब बातें ठीक हैं। हमारे सैनिक विश्वासपात्र हैं, और उनकी संख्या भी अधिक है; परन्तु इस समय हम दो ओरसे फँसे हुए-से हैं। एक ओर पाटन है, और दूसरी ओर वल्लभ। अतएव, जिस प्रकार भी हो, शीघ्रतासे दोमेंसे एक भयको दूर करना चाहिए। आपकी यह धारणा हो कि पाटन हमारे पक्षमें है, तो उसे प्रसन्न कीजिए। खेंगार या किसी अन्य व्यक्तिके द्वारा हमें पाटनका भय दूर करना चाहिए या फिर पाटनपर घेरा डालिए। इस प्रकार बैठे रहनेसे सैनिकोंका उत्साह भंग होता जा रहा है।"

रानी, विश्वपाल और विनयचन्द्रने एक दूसरेकी ओर देखा। पाटनके प्रति उनका विश्वास क्षण क्षण घटता जा रहा था, परन्तु इस समय कहा किससे जाय? वार्तालाप करते हुए कुछ समय बीतनेपर समाचार मिला कि पाटनसे एक सामन्त सन्देश लेकर आया है। सबने आतुरतासे बुलानेका आदेश दिया और सब लोग चुपचाप द्वारकी ओर टकटकी लगाये देखते रहे। कुछ देरमें शरमसे गड़ा हुआ, अपनी बेवफाईसे क्षुभित और पाटनमें मिले हुए अनुभवोंसे काँपता हुआ मुरारपाल आ खड़ा हुआ।

उसे देखकर रानी हर्षसे पुकार उठी। ऐसे अनीके मौकेपर अपने बहादुर स्वामि-भक्त सामन्तको देखकर उसे बहुत आनन्द हुआ, "मुरारपाल, आओ, आओ, बोलो क्या समाचार हैं?"

"महारानीजी, केवल दुःखके समाचार लाया हूँ।"

"चिन्ता नहीं, बैठो।" कहकर रानीने अपने आसनके समीप ही उसे बैठनेको सूचित किया और केवल नेत्रोंसे ही संकेत कर दिया कि कल सन्ध्या समयकी बातको इस समय प्रकट करनेकी आवश्यकता नहीं है। मुरारपाल यह समझ गया।

"महारानीजी, मैं पाटनसे सन्देश लेकर आया हूँ।"

विनयचन्द्रने पूछा, "पाटनसे ! पाटनसे महारानीजीको संदेश भेजनेवाला कौन है ?"

"और कौन होगा ? इस समय जो पाटनका मालिक बन बैठा है वह त्रिभुवनपाल सोलंकी।"

"ऐ ! ऐ ! ऐ !" सब एक साथ बोल उठे।

विश्वपालने कहा, "वह लौंडा क्या करेगा ?"

"महारानीजी, अब वह लौंडा नहीं है। आपको, मुंजाल मेहताको या और किसीको क्या राज करना आता है ? वह तो आज सचमुच एकचक्र राज कर रहा है और आपको संदेश भेजता है। कह सुनाऊँ ?" कहकर मुरारपालने सेनापति विजयपालकी ओर देखा।

"हाँ, कहो। यहाँ कोई पराया नहीं है।"

त्रिभुवनपालने कहलाया है कि जबतक मीनलदेवी रहेंगी तब तक कुमार जयदेव पाटनमे पैर नहीं रख सकते। या तो मीनलदेवी नहीं रहेंगी या पाटन न रहेगा।"

क्षण-भरके लिए सब एक दूसरेकी ओर देखने लगे। रानीने बड़ा प्रयत्न करके अपनेको प्रकृतिस्थ किया और पूछा, "क्यो, क्या सभीकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई ?"

"महारानीजी, यदि सत्य कहूँ, तो क्षमा कीजिएगा; परंतु पिछले तीन दिनोंमे मुझे न जाने कितने नये नये अनुभव प्राप्त हुए हैं। ऐसा प्रसंग किसी कालमे भी नहीं आया होगा।" कहकर उसने सारी कथा कह सुनाई। सुनने-वाले सब चकित हो गये। रानी अधिकाधिक निराश होती गई। स्वप्नमें भी न सोची हुई विपत्तियाँ उसके समक्ष आ रही थीं। जब सब लोग पाटनके गौरव और पाटनकी जनताके नगर-प्रेमकी बाते करते थे, तब रानी हँसा करती थी। अपनी सत्ता, अपने अधिकारके आगे पाटनके बुद्धि-चातुर्यका उसकी दृष्टिमे कोई मूल्य नहीं था। परन्तु इस समय पाटनका बुद्धि-चातुर्य उसकी सत्तासे अधिक शक्तिशाली सिद्ध हो गया। बात करते करते मुरारपालने प्रसन्नकुमारीकी भी कुछ चर्चा की। रानी चौंक पड़ी, "कौन ? मेरी भतीजी प्रसन्न ?"

मुरारपालने मन ही मन लजाते हुए कहा, "हाँ, महारानीजी, वह भी बड़ी वीरांगना हो गई हैं।"

रानीको बड़ा विस्मय हुआ। जब बातें हो चुकीं, तब सब लोग फिरसे विचार

करने लगे कि 'अब क्या किया जाय ?' मुरारपालको सब कुछ असम्भव प्रतीत हुआ। अन्तमें कोई निश्चय न होनेपर भी सब लोगोंको ऐसा तो लगा कि किसी प्रकार पाटनवालोंको प्रसन्न करके वशीभूत करना चाहिए।

जब सब लोग चले गये तब रानी मुरारपालको बुलाकर पूछने लगी कि कल दरवाज़ा क्यों नहीं खोला। मुरारपालने अपने पकड़े जानेका कुछ बहाना बनाकर बातको उड़ा दिया।

"मुरारपाल, त्रिभुवन और प्रसन्नमें परस्पर बड़ा स्नेह था, आज-कल क्या हाल है ?"

"मुझे ज्ञात नहीं, पर वैसा ही होगा।" कुछ न सूझनेपर मुरारपालने कहा। बेचारेकी कलकी चाबुककी चोट ताज़ी हो गई।

"यदि प्रसन्नके द्वारा कोई प्रयत्न किया जाय, तो त्रिभुवन मान जायगा ?"

मुरारपालने निराशासे सिर हिला दिया। कारण तो वह स्पष्ट रूपसे नहीं बतला सकता था, नहीं तो रानीकी सब आशाएँ उसी समय नष्ट हो जातीं।

"मुरारपाल, तुम घबरा गये हो; परन्तु मैं अभी विनयचन्द्रको भेजकर पाटनसे कुछ दूरीपर प्रसन्नको मिलनेके लिए बुलाती हूँ।"

"यह आपकी इच्छा; पर मुझे इसमें कोई सार नहीं दिखलाई पड़ता।"

"अच्छा, देखा जायगा।" कहकर कुछ आशा होनेसे रानी ज़रा खुश हो उठी। परिस्थिति भयंकर थी। जिस प्रकार डूबता हुआ मनुष्य पल पलमें बचनेकी आशा रखता है, उसी प्रकार आशा रखकर वह अपना कार्य कर रही थी।

दोपहरके बाद विनयचन्द्र पचीस सवार अपने साथ लेकर पाटनकी ओर रवाना हुआ और मोंढेरी दरवाजेपर जा पहुँचा। वहाँ कुछ देरमें मंडलेश्वर खेंगारसिंहसे मिला। 'मीनलदेवी प्रसन्नमुखीसे वार्त्तालाप करना चाहती हैं।' बहुत देर प्रतीक्षा करनेपर त्रिभुवनपाल आया और उसने विनयचन्द्रका आमंत्रण स्वीकार कर लिया। यह निश्चय हुआ कि दोनों ओरसे पचीस पचीस शस्त्र-हीन सैनिकोंको साथ लेकर, बिल्कुल मध्य स्थानपर, क्षेमराज देवकी बावड़ीके पास मीनलदेवी और प्रसन्नमुखी भेट करेंगीं।

मीनलदेवीके हृदयमें यह निश्चय दृढ़ होता गया कि पाटनके साथ लड़ाई कभी न की जाय। उसे दबाकर, फुसलाकर वशीभूत करना ही उत्तम है। इसका कारण यह था कि सारे गुजरातमें उसके पक्षके यदि कोई नगर थे, तो वे

केवल दो थे : पाटन और कर्णावती। मोंढेराकी ओर उसने अनेक दूत भेजे थे; पर वहाँसे कोई स्पष्ट उत्तर नहीं आया था; ऐसी स्थितिमें यदि वह एक बार पाटनपर घेरा डाल दे, तो फिर देश-भरमें उसके लिए नाममात्रको भी कुछ न रह जाय। और यदि कहीं वह परास्त हो जाय, तब तो चन्द्रपुर लौट जानेके अतिरिक्त और कोई मार्ग ही न रहे। दूसरा कारण यह था कि चन्द्रावतीके अग्रणी पाटनके साथ शत्रुता करनेको तैयार हैं या नहीं, इसका रानीको ठीक पता न लगा था। इस समय चन्द्रावतीका सेनापति विजयपाल घेरा डालनेको अवश्य तैयार था, पर कल किसी भी समय कुछ भी करनेसे इन्कार कर सकता था। और, आख़िर घेरा डालनेसे पाटन परास्त हो जायगा, यह भी कैसे कहा जा सकता है?

फिर भी यह निश्चय बनाये रखना सहज नहीं था। रानीने यह कभी न सोचा था कि पाटनमे विद्रोह उठ खड़ा होगा। अब इस विद्रोहके कारण पाटनने यह स्पष्ट दिखला दिया कि या तो रानीको घेरा डालना होगा, या अपना गौरव खोना पड़ेगा। परन्तु रानी घेरा न डालकर भी अपने गौरवकी रक्षा करना चाहती थी।

३८—पुरानी आँखों नया तमाशा

दूसरे दिन प्रातःकाल पाटन और विंखराटके बीचवाली क्षेमराजदेवकी वावड़ीके पास एक मन्दिरमे पाटनकी पदभ्रष्ट रानी बैठी थी। उसके बुद्धिदर्शक कपालपर चिन्ताकी हलकी रेखाएँ खिंची थी। उसकी छोटी आँखें और भी गहरी हो गई थीं। चारो ओरसे कठिनाइयोका आक्रमण होनेपर भी, उसकी गर्दन अभिमानसे तनी हुई थी और उसके होंठ भिंचे हुए थे। कर्णदेवकी मृत्युके अनन्तर ही उसने अपने संकल्पोंको दृढ़ कर लिया था, फिर भी उनमे परिवर्त्तन हो जानेके भयसे उसे अधिक दृढ़ता धारण करनी पड़ी थी। धीरे धीरे उसका मान भंग होता चला आ रहा था; और इस समय जिसे वह तुच्छ समझती थी, उस भतीजीकी राह देखना उसे बहुत अखर रहा था। पर चाहे जिस तरह हो उसे काबूमे भी करना था।

मुरारपालके यह शब्द उसके कानोंमें भयंकर नाद कर रहे थे कि या तो मीनलदेवी नहीं या फिर पाटन नहीं। क्या इतने वर्षोंके पश्चात् मीनलदेवी पाटनसे चली जाय?

इसी समय समर चोबदार रानीके विचारोंके बीच आ पड़ा। किसी भी अवसर पर, कहीं भी, राजभक्त समर रानीका वही सम्मान किया करता था जो राजमहलमें होता था, "माताजी, ऐसा दिखता है कि पाटनके लोग आ पहुँचे हैं।"

"ठीक है। आते ही प्रसन्नको अन्दर भेज देना।"

"जो आज्ञा।" कहकर समर चला गया।

कुछ देरमें, घोड़ोंकी टापें सुनाई पड़ी। उन्हें ठहरते सुना, पैंजनियोंकी झंकार भी कानोंमें पहुँची, और समर प्रसन्नको लेकर अन्दर आया। मीनलदेवीने प्रयत्न करके अपने मुखपरसे चिन्ताके चिह्न दूर किये और सत्ता-सूचक गंभीरता धारण कर ली। वह रोबके साथ प्रसन्नकी ओर मुड़ी और ज़रा फीकी पड़ गई। उसने सोच रखा था कि इस समय उसे वही निर्दोष बाला दिखलाई पड़ेगी जो कुछ दिन पहले उसके शब्दोंसे काँपती थी, उसकी आँखोंके इशारेसे ही बात मान लेती थी। पर, इसके बदले उसे प्रसन्नके नेत्रोंमें, उसके मुखपर, उसके पदपदमें गर्व और अधिकार दिखलाई पड़ रहा था। रानीका हृदय पहलेसे ही हारने लगा। प्रसन्न आई और मीनलदेवीके पैरों लगी। "बुआजी, कैसी हो? आपकी तबीयत तो ठीक नहीं दिखाई देती!"

"नहीं, यात्रासे थकावट-सी आ गई है।"

ऐसे ढंगसे बोलनेवालेको पहले मीनलदेवी बिना बन्दी किये न छोड़ती। आज उसे ही नम्र शब्दोंका प्रयोग करके प्रसन्नको रिझानेका प्रयत्न करना पड़ा, "तुम कैसी हो? बैठो।" रानीने समरकी ओर दृष्टिपात किया; अतएव वह वहाँसे चला गया।

"जी, मज़ेमें हूँ। कहिए, इस समय मुझे किसलिए बुलाया?"

प्रसन्न बाहरसे साहसी दिखलाई पड़ रही थी, फिर भी मीनलदेवीके साथ बात करते भीतरसे घबराती थी। मीनलदेवी उसे किस समय धर दबाएंगी, इसका उसे भरोसा न था; इसलिए उसने एकदम कामकी बात आरंभ कर दी।

"बेटी, मैंने तुझे इस समय अपनी समझकर बुलवाया है। पाटनवालोंने यह नया प्रपंच क्या खड़ा कर दिया है? मेरे लिए तो वे मेरे पुत्रके

समान हैं। किस लिए वे इस प्रकार कपूत बनना चाहते हैं ? मुझे खिजाकर क्या लेंगे ?"

प्रसन्नने रानीकी चतुराईकी सराहना की, " बुआजी, इसके लिए मुझसे आप कह रही हैं ? मुझसे कहनेसे क्या होगा ?"

" प्रसन्न, मैं जानना चाहती हूँ कि वहाँ क्या हो रहा है ? मुझे बता कि किसलिए लोग वहाँ व्यर्थ ही उत्तेजित हो गये हैं ? अपने पाटनवासियोंका तनिक भी रक्तपात होनेसे पहले, मैं समझ तो लूँ कि वे क्या चाहते हैं ?" मीनलदेवीने धीरे धीरे एक एक शब्द उच्चारण करते हुए कहा।

प्रसन्नने कोई उत्तर नहीं दिया और रानीने नीचे झुककर फिर कहना आरंभ किया, "कोई कुछ कहता नहीं, कहलाता नहीं, फिर भी इस प्रकार पागलोंका सा व्यवहार किया जा रहा है। यह तो अच्छा हुआ कि अभी तक कोई जानता नहीं है, अन्यथा पाटनकी कितनी हँसी होती ?"

प्रसन्न प्रयत्न करके धीरे धीरे मीनलदेवीके शब्दोंका जादू दूर करने लगी। परन्तु उसके भयंकर तीक्ष्ण नेत्र, उसके मधुर गौरव-पूर्ण शब्द, प्रसन्नकी बुद्धिके आसपास घिरने लगे। उसने यह देखा कि मीनलदेवीका प्रभाव किस स्थानपर अप्रतिम है। वह प्रभाव कहीं मुझपर असर न कर जाय; इसलिए उसने कुछ तुच्छतासे उत्तर देना आरम्भ किया, " बुआजी, मुझसे यह सब क्यों कहती हैं, आपने ही तो यह सारा उपद्रव खड़ा किया है।"

" क्या ? कोई बताए ? तुम्हारे राज्यके लिए, तुम्हारे देशकी शान्तिके लिए अपना शोक-सूतक त्यागकर मैं बाहर निकली। यह किसीको खबर है कि यदि मैं न गई होती तो मुंजाल और मडलेश्वर लड़ मरते, और इसपर किसीने विचार किया है कि मैं न गई होती, तो मंडलेश्वरकी सेना इस समय यहाँ पड़ी होती ?"

" बुआजी, यह कोई नहीं मानता। सब लोग तो कहते हैं कि आपने परदेसियोंको बुलवाया, और मंडलेश्वर महाराजको मरवा डाला।"

रानीने 'महाराज' शब्दका नया प्रयोग देखा और कुछ अकुलाकर कहा, " चद्रावतीके लोग तुम्हारे लिए पराये हैं, क्यों ? देवप्रसादको मैं क्यों मरवा डालती ? मैंने तो सुना है कि रुद्रमहालय जल उठा और वह जल मरा।"

" बुआजी, आपके साथ बात करनेमें मैं पेश नहीं पा सकती। आपने मुझे

किसलिए बुलाया है, सो कहिए न ! " प्रसन्नने सोचा कि इस प्रकार सुनते सुनते तो बात समाप्त ही न होगी।

" बेटी, मैंने तो तुझे इसीलिए बुलाया है कि देशका यह विरोध-भाव मुझसे नहीं देखा सहा जाता। मेरे और पट्टनियोंके बीच न जाने किस कारण यह दुर्भाव उत्पन्न हो गया है। तू बीचमे पड़कर इस विरोधको मिटा दे।"

" मैं कैसे मिटा दूँ ! यह कोई मेरे हाथकी बात है ? "

" हाँ, है। जैसा मैंने सुना है, त्रिभुवनपाल सारी सत्ता अपने हाथमे ले बैठा है।"

प्रसन्नने सुधारकर कहा, " वह सत्ता समस्त पाटन-निवासियोंने सौंपी है।"

होठ चबाकर मीनलदेवीने कहा, " ठीक, यही सही। और त्रिभुवनको वशमे करना तेरे हाथमें है।"

प्रसन्न हँसी और अब उसे उत्तर देना सूझा, " यह कैसे जाना कि वे मेरी बात मानेंगे ! उनकी माताको क़ैद करके जीवन-भर आपने पतिसे जुदा रक्खा। अपनी माताका सुख उन्हें भोगने नहीं दिया और आखिर उनके पिता और माताको आपने जलवा डाला। अब वे क्यों कर मानेंगे ! "

" लड़की, एक बात सारी दुनिया मानती है।"

" क्या ! "

रानीने धीरेसे कहा, " अपनी प्रियतमाका कहा हुआ।"

प्रसन्न चौंक पड़ी। अब वह सब कुछ समझ गई, " बुआजी, सच्ची प्रियतमा पतिप्रतिज्ञाके आड़े नहीं आती।"

" यह प्रतिज्ञाके आड़े आना कैसे है ! त्रिभुवनको क्या चाहिए ! जा, मै अपनी राजी-खुशीसे तुझे उसके साथ ब्याह दूँगी। फिर और क्या बाकी रह जाता है !"

प्रसन्न ठठाकर हँस पड़ी, " बुआजी, गये तीन दिनोंमे तो तीन भव बदल गये, इसका भी कुछ विचार किया है ! "

" क्या ! "

"अब पहले जैसी प्रसन्न नहीं रही। जबसे आप मुझे अनजानमे नशा खिलाकर अपने साथ ले गई तबसे मैं बदल गई हूँ, समझीं ! आप राज़ी हों या न हों, मै त्रिभुवनपालको तो ब्याहूँगी ही, बल्कि ब्याह चुकी हूँ।" यह कहकर प्रसन्न फिर हँसी। अन्तिम शब्दोंका उच्चारण करते करते उसके गालोंपर ललाई आ गइ।

मीनलदेवीकी भवें तन गईं। दूसरे ही क्षण उसने भी कृत्रिमतासे हँसकर कहा, " प्रसन्न, अब तो मेरा काम तुझे पहले करना चाहिए। बेटी, जो तू कहेगी, वही त्रिभुवनको दूँगी, फिर क्या रहा ? "

" बुआजी, इस समय, इस अवस्थामें मुझे कुछ कहना न चाहिए; फिर भी आप मुझे उत्तेजित करती हैं तो कहती हूँ कि इस समय त्रिभुवनपालको देने योग्य आपके पास कुछ नहीं रह गया है। उलटे वे ही आपको कुछ दे सकते हैं। "

रानीने बड़ा प्रयत्न करके क्रोधको दबा दिया, " यह बात है ! तो फिर और क्या चाहिए ? परन्तु तू भी तो कुछ कर, जिससे सारे देशमें नाम हो जाय। "

सिर हिलाकर प्रसन्नने कहा, " मुझे नाम नहीं चाहिए। परन्तु, आप जो चाहती हैं वह हो नहीं सकता। "

निराशा छिपानेका व्यर्थ प्रयत्न करते हुए रानीने पूछा, " क्यों ? "

" त्रिभुवनपालने प्रतिज्ञा की है। "

" क्या ? "

" पाटनमें या तो आप नहीं, या वे नहीं। "

रानीको कँपकँपी आ गई, " और तूने—"

" जहाँ मेरे स्वामी वहाँ मैं। "

मीनलदेवीने होंठ दबाकर स्वस्थता प्राप्त की, अपना सत्तादर्शक सीना फिर तान लिया और गुस्सेसे पूछा, " लड़की, तुझे इस प्रतिज्ञाके अर्थका ज्ञान है ?"

" हाँ, प्रतिज्ञा करनेवालेने ही मुझे समझाया है। "

" जहाँ बड़े मंडलेश्वरका पता न लगा, वहाँ तू समझती है कि तेरे त्रिभुवनका लगेगा ? "

" बापसे बेटा सवाया निकला हुआ क्या नहीं सुना ? "

" लड़की, तू भी पछताएगी। तू समझती होगी कि मीनलदेवीके हाथ पीछे पड़ गये हैं; परन्तु तू भूलती है। यह विखराटमें पड़ी हुई सेना देखी ? लाटसे भी कुछ दिनोंमें सेना आएगी। पन्द्रह दिनोंमें पाटनके कोटकी एक ईंटका भी पता न लगेगा। "

प्रसन्न भयसे काँप उठी, फिर भी बाहरसे साहस दिखाकर बोली, " बुआजी, यवनोंकी सेना तारों जितनी थी, फिर भी पाटनका कोट खड़ा है। "

" अच्छी बात है, देखना, अभी विचार करनेका समय है। कल सवेरे तक

विचार हो जाय, तो कहला भेजना।"

"बुआजी, उत्तर तो वही आयगा जो मैंने दिया है।"

मीनलदेवीने क्रोधसे कहा, "तब अपने कियेको भोगना।"

"ठीक है, तब मैं जा रही हूँ। कुमार जयदेवसे याद करना कहना।"

"जयदेव तो कभीसे तुझे याद कर रहा है।"

एक खयाल आ जानेसे प्रसन्न घूम पड़ी और विनीत स्वरमें बोली, "बुआजी, मेरी एक बात मानोगी?"

"क्या कहती है?"

"कुमार जयदेवको मेरे साथ भेज दीजिए और आप रेवा-तटपर जाकर रहिए। कल प्रातःकाल ही जयदेवका पट्टाभिषेक करा दूँगी।"

मीनलदेवीने मगरूरीसे जवाब दिया, "लड़की, ज़रा विचार कर बोलना सीख। मीनलदेवी रहेगी तो पाटनकी राजमाता बनकर; नहीं तो मैं नष्ट हो जाऊँ या पाटन मिट जाए इसकी मुझे परवाह नहीं।"

"ठीक है, तो फिर आपकी इच्छा।" कहकर प्रसन्न वहाँसे सगौरव चली गई।

उसके जाने पर, न जाने कब तक रानी द्वारकी ओर देखती रही और बड़बड़ाई, "हे भगवान्! यह क्या होने जा रहा है? बित्ते-बित्तेभरके बालक किस प्रकार ऐसे हो गये? आज मेरी ओर कोई देखता भी नहीं है।" उसकी आँखोंमे अँधेरा छाने लगा। उसने हथेलीसे आँखे ढँक लीं। यह सोचनेका साहस उसमे नहीं था कि भविष्यमें क्या होगा? किससे कहा जाय? किससे सलाह ली जाय? क्या किया जाय? मैं कौन-सा मुँह लेकर फिर विखराट जाऊँ?

बड़ी मुश्किलसे साहस इकट्ठा करके वह उठी, फिर समरसेनको बुलाया और लौट चलनेकी आज्ञा दे दी।

३९—हृदयका पुनर्जन्म

जब रानी विखराटको लौटी, तब उसकी अकुलाहटका पार नहीं था। प्रसन्नके आगे भी उसकी कुछ नहीं चली। अब क्या किया जाय? अब और कौन-से अपमान, कौन-सी अधमाताका स्वाद चखना बाकी है? लौटते हुए

महारथीका इतना सम्मान क्यों करते थे? और इस समय उसके पुत्रको ईश्वर समझकर क्यों वे उसकी आज्ञाका पालन करनेको तत्पर हो रहे हैं? देवप्रसादमें जो शक्ति थी, क्या वह उसमें थी? इसका कारण क्या है? रानी अधिक गहरे विचारोंमें उतर गईं। मुंजाल इतना मगरूर था, फिर भी लोग उससे इतना स्नेह क्यों रखते थे? विचार ही विचारमें रानीकी दशा पागलोंकी सी हो गई; और जब सन्ध्या समय मुरारपाल आया, तब कहीं उसकी सुधबुध ठिकाने आई।

"क्यो माताजी क्या हुआ? कुछ सफलता मिली?"

रानीने सिर हिला दिया।

"मैंने क्या कहा था? आपकी भतीजी बड़ी विकट है।"

"यह तो ठीक। बैठो, मुरारपाल, अब मुझे कुछ सलाह दो। मैं तो उलझनमें पड़ गई हूँ। मुझे कुछ सूझ नहीं रहा है।"

"मैं क्या सलाह दूँगा माताजी, मैं तो पाटनके उपद्रवको देखकर दिङ्मूढ हो गया हूँ। अब मैं समझा कि गुजरातमें पाटन, सारे नगरोंपर क्यों सरदारी कर रहा है?"

"क्यो कर रहा है?"

"कारण कि प्रत्येक पाटननिवासीके हृदयम बड़े बड़े योद्धाओं जैसा साहस, गौरव और स्वातन्त्र्य समाविष्ट है। मैंने अनेक नगर देखे, पर यह तो अनुपम है।"

"मुरारपाल, तुम भी कटेपर नमक छिड़क रहे हो? पाटन जब मेरा था, तब तो किसीने कुछ नहीं कहा, और अब सब बुद्धिमान् बन गये हैं।"

"नहीं माताजी, मैं इसलिए नहीं कहता। मैं तो यह बतलाता हूँ कि कठिनाइयाँ क्या क्या हैं।"

"किस प्रकार? स्पष्ट कहो न। मेरा तो मस्तिष्क उलझनमें पड़ गया है।"

"पाटनवालोंको समझाना हो, तो किसी ऐसे आदमीको भेजना चाहिए जिसे वे चाहते हों, तब कुछ काम बने।"

खीझकर रानीने कहा, "पर वह लाया कहाँसे जाय? जो कुछ हो, तुम्हीं तुम हो।"

"दो दिन पहले तो मैं काम आ सकता था, पर आज मैं निकम्मा हूँ। विश्वपाल किसी गिनतीमें नहीं है, और शान्तु सेठको भी कोई नहीं पूछता। फिर विनयचन्द्रकी बात कौन मानेगा?"

" यह सब तो मैं जानती हूँ। कोई नई बात न कहनी हो, तो बस करो। "

" माताजी, और मैं क्या कह सकता हूँ ? आप आज्ञा दें, तो मैं पाटनपर घेरा डाल दूँ। "

" नहीं, नहीं, इससे तो बात बढ़ जायगी और यदि थोड़ी-सी भी हार खाई, तो फिर कहाँ जायँगे ? "

मुरारपालने सिर हिलाते हुए कहा, " इन सब बातोंका मैंने विचार किया है, और माताजी, मुझे एक और भी भय है। "

" वह क्या ? "

" इस चन्द्रावतीकी सेनाका कोई भरोसा नहीं है। मालूम होता है, कुछ लोगोंमे घबराहट उत्पन्न हो गई है और यदि इस प्रकार दस-पन्द्रह दिन हम पड़े रहे, तो बहुतसे लोग भाग भी जायँगे। यों पडे पड़े उनका उत्साह बिल्कुल कम हो गया है। वह यति होता, तो इस समय बड़ा काम आता। "

रानी और भी ज्यादा घबराई। " यह तो आखिरी बाज़ी भी हाथसे जाना चाहती है ! "

मुरारपालने रानीका उतरा हुआ मुख देखकर कहा, " महारानीजी, घबराइए नहीं। विजयपाल होशियार है; अतएव अभी समय है। परन्तु मंडलेश्वर गया कि जैनोंको तो ऐसा ही लग रहा है कि अब तो तीनो लोक जीत लिये। किंतु—"

" किन्तु क्या ? "

" किन्तु, उनका पुत्र उनसे भी जबरदस्त है। मंडलेश्वर तो केवल योद्धा ही था; परन्तु इसमे तो अपने मामाके गुण भी उतरे हैं। "

मुंजालका नाम सुनकर रानीके सारे शरीरमे सनसनी फैल गई। उसके कपाल-पर बल पड गये। मुरारपाल कुछ समझा और बोला, " जी, आपको बुरा लगे तो माफ करना, परन्तु आप सलाह माँग रही हैं, इसलिए कह रहा हूँ। भानजेको समझानेके लिए मामाको क्यों नहीं भेजती ? "

गौरवका डौल करते हुए रानीने कहा, " मुरारपाल, इस बातको जाने दो। जियूँगी तो रानीकी भाँति, नहीं तो मर जाऊँगी; परन्तु द्रोहियोंका मुख न देखूँगी। "

" जैसी आपकी मर्जी " कहकर मुरारपाल चुप हो गया।

कुछ देर रानी चुपचाप बैठी रही। वह फिरसे निराश हो गई। मुरारपालने

फिर एक नई बात कही थी, और एक नई चिन्ता खड़ी कर दी थी। क्या यह सारा लश्कर बिखर जायगा? फिर क्या होगा? उसे एक विचार आया, "मुरारपाल, तब सच पूछो तो कोई भी मंडलेश्वर या कोई भी नगर हमारे साथ नहीं है।"

"चन्द्रावतीको छोड़कर—"

"हाँ, हाँ। मुरारपाल, मैं तुमपर पूरा पूरा विश्वास रखूँ? तुम दगा तो न दोगे?"

"माताजी, जो कुछ कहना हो, निश्चिन्त होकर कहिए।"

रानीने धीरे-से पूछा, "मालवराज यहाँसे कितनी दूरीपर हैं?"

"घोड़ेपर चार दिनोंमे पहुँचा जा सकता है।"

"ठीक है, जरूरतपर वह भी काम आयेंगे।" मुरारपाल कितने पानीमे है, इसका माप निकालनेके लिए रानीने कहा। परन्तु इस बातका तात्पर्य समझकर मुरारपालकी भवें चढ गई, वह तनकर खड़ा हो गया।

"माताजी, आपकी सेवामे जीना और उसमे ही मरना चाहता हूँ; परन्तु मैं गुर्जर हूँ। मालवाके साथ किसी अयुक्त सम्बन्धकी बात होगी, तो मैं यहाँ खडा न रहूँगा।"

रानीने अकुलाकर होठ चबा लिये। प्रत्येक सामन्त अपनी टेक रखनेवाला और देशाभिमानी था।

बात उड़ाते हुए उसने कहा, "नहीं, नहीं, यह बात मैं कब कह रही हूँ। अच्छा, अब कल देखा जायगा।"

मुरारपालने आज्ञा ली। रानीको सारी रात नींद न आई। उसे प्रत्येक योजना व्यर्थ-सी प्रतीत हुई। यदि चद्रावतीकी सेना छिन्न-भिन्न हो गई और त्रिभुवनने पाटनको बन्द कर रखा, तो क्या होगा? मुरारपालकी बातपरसे यह भी प्रकट हुआ कि यदि वह मालवाकी सेनासे सहायता लेनेको प्रस्तुत हो गई, तो एक भी गुजराती उसकी सहायताके लिए खड़ा न रहेगा। हाथोंसे राज्य निकल जाय, यह तो सहन न होगा, पर यह तो हलका दिखेगा और राज्य भी जायगा। रानीको बिछौनेपर करवटे बदलते बदलते अपनेपर तिरस्कार हो आया। राज्य था, मन्त्री थे, थोड़ी-बहुत सत्ता भी थी, तब उसे छोड़कर अधिक सत्ताका लोभ क्यों किया? लोगोंके प्रति विश्वास रखनेके बदले अविश्वास क्यो किया? मण्डलेश्वरको रिझानेके बदले, छेड़कर क्यो खिझाया? क्या मरकर भी अब मण्डलेश्वर अपने

वैरका बदला ले रहा है !

विचारोंमे उलझे हुए रानीके हृदयमे एक मूर्ति खड़ी हो गई। जो रूपमें, बुद्धिमें, इच्छा-शक्तिमें, ईश्वर जैसी दिखती थी। वह पिछले पन्द्रह वर्षोंकी पीड़ाके परदेमेंसे उसे उलहना देती थी, उसके नेत्रोंका अकल्प्य तेज उसे मूर्खता करनेसे रोकता था; उसका अद्वितीय वाक्चातुर्य प्रेमके, उपदेशके, उलहनेके, क्रोधके शब्द कहकर उसे नाच नचाता था। उस मूर्तिको निहारकर रानी उसमें तल्लीन हो गई। उसके हास्य, उसके शब्दोंको वह फिरसे अनुभव करने लगी। ऐसा लगा जैसे उस क्षणकी पीड़ाओंको भूलकर मीलनदेवी रानीसे स्त्री बन गई है। उसके हृदयपर उस मूर्तिका अटल अधिकार प्रतीत होने लगा।

वह मन ही मन कहने लगी, '.यह मूर्खता है, यह मूर्त्ति एक नगण्य मंत्रीकी है, वह द्रोही है और उस द्रोहीको मैंने कैद कर रक्खा है।' पर हृदयने इन शब्दोंकी कोई परवा न की। वर्षों पहले पूरे हुए नाटकोंके पर्दोंको उठाकर, हृदय उस मूर्तिको प्रभु समझने लगा और समझता था, यह कहने लगा। सोलह वर्षोंके समयको नष्ट करके हृदय चन्द्रपुरके निर्दोष आनन्दका अनुभव करने लगा। पिताके दरबारमे भोगे हुए सुखोंको फिर भोगने लगा। वह स्वच्छन्द, आकांक्षा-पूरित हृदय कुमार्यावस्थामें था और किसी स्वामीके लिए तरस रहा था। उसने दरबारमें उपस्थित दूर देशसे व्यापारके लिए आये हुए एक नर रत्नको देखा; नई मोहक उमगके वश होकर उसके चरणोंमें प्रणिपात किया। उस क्षणके आह्लाद, और फिर अनुभव किये हुए प्रसंगोंके अवर्णनीय सुख हरे हो गये। उस नर-रत्नकी विदासे हृदय रो उठा। उससे मिलनेके लिए उसने इन्द्रधनुषके रंगसे रंगी हुई सुदूर भूमिकी ओर प्रयाण किया। उस भूमिके नरेशसे विवाह करके उस नर-रत्नके समीप रहना स्वीकार किया। हृदयने पूर्व आह्लादोंको हरा करते हुए एक अविस्मृत क्षणके अनुभवोंका फिरसे अनुभव करा दिया। उसके हृदयके चारों ओर कुछ लिपट गया; उसका मुख--

रानी चौंककर जाग पड़ी और बैठ गई। उसका शरीर काँप रहा था, हृदय उछल रहा था, आँखें बावली बन गई थीं, उसके मुखपर नवोढाका-सा प्राण-हारक तेज फैल रहा था।

उसने हाथोंको बढ़ा दिया, हृदयकी गहराईमेंसे आवाज़ आई, ' मुंजाल मुंजाल ! ' मीनलदेवी उठ खड़ी हुई। उसे वास्तविक जगत्का भान हुआ, वह

स्मरण आया कि मुंजाल बन्दी है और वह असहाय अवस्थामे है। वह अपनी ओर धिक्कारसे देखने लगी। उसे अपने सतीत्वका स्मरण हुआ। वह मन ही मन बोल उठी, 'कर्णदेव! प्रभु! नाथ! स्वामी!' पास ही बिछे हुए दूसरे पलंगकी ओर घूमकर उसने जयदेवका मुख देखा। उसकी एक एक रेखाकी जॉच की। उस मुखपर, उन रेखाओमें कुछ अपरिचितता, कुछ बेढंगापन दिखलाई पड़ा। तुरन्त ही उसकी दृष्टिके आगे त्रिभुवनका मुख आ गया, उसके मुखकी रेखाएँ दिख गईं। उन रेखाओंको देखकर हृदय क्यों भीग आया? उन रेखाओमें दूसरे किस नर रत्नकी मुख-रेखाएँ दीखती थीं? उसके मनमे जो है उसकी? इन विचारोको निष्फल प्रयत्नोंसे पीछे हटाते हुए उसने कहा, "नहीं, नहीं, भगवान्! यह क्या करने बैठे हो?" वह फिरसे बैठ गई; माथा फट रहा था। ऐसा लगता था कि वह अभी पागल हो जायगी। किस लिए उसका मन मुंजालकी रट लगाये था, नेत्र उसका मुख देख रहे थे, कान उसके शब्दोंको सुन रहे थे? क्या मुंजालके बाल्य-कालकी सखी और गुजरातकी रानी एक ही थी? रानीने चिल्लाकर कहा, 'नहीं, नहीं,' पर हृदयमे केवल 'हॉ' की प्रतिध्वनि होती रही।

जब प्रातःकाल हुआ, तब सूर्यकी किरणोने कल सन्ध्या समय जिस मीनलदेवीको अन्धकारके अधीन किया था, वह उन्हें वापिस नहीं मिली। उसके बदले रानी मिटकर स्त्री बनी हुई; और अभिमानिनी महत्त्वाकाक्षिणी योगमायाके बदले हृदयके भावोंसे नम्र बनी हुई मीनलदेवी दिखलाई पड़ी। उसके मुखपर सत्ताकी और चिन्ताओंकी कठोर रेखाएँ मिटकर स्नेहकी, दुःखकी मृदुता आ गई थी। रूपवती न होते हुए भी उसपर छाया हुआ बुद्धिका तेज मनोहर हो उठा था। तेतीसवें वर्षमें भी पहलेकी बीसीकी घबराहट आ गई थी। उसकी दृढ़ता जाती रही थी; ऑसुओने अपना अधिकार जमा लिया था।

जब सवेरे समरसेन आया तब मीनलदेवीके मुखपर रातके रोते रहनेके चिह्न स्पष्ट दिखलाई पड रहे थे। बूढ़ा सेवक कुछ देर खड़ा रहा और सिर हिलाते हुए बोला, "मा, चिन्ता न करो, भगवान् सोमनाथ सब भला करेगे।"

"समर, भगवान् जो करें सो सही।"

"मा, मैं तो एक गरीब आदमी हूॅ, मुझमें कुछ अक्ल नहीं है, पर मेरी सलाह मानोगी?"

"क्या? जो कहना हो, ज़रूर कह। तुझ जैसे स्वामि-भक्त मनुष्य कहॉ हैं

आज-कल ? ”

“मा, तो ऐसे समय मुंजाल मेहतासे क्यों नहीं पूछतीं ? वे मार्ग बतलाएँगे।”

मीनलदेवीको ऐसा लगा, जैसे चोट लगी हो। सभी ‘ मुंजाल मुंजाल ’ कह रहे हैं ! यह क्या बात है ? उसका हृदय धड़क उठा।

“ समर, मैं भी यही सोच रही हूँ। पर वह सहायता न करेगा। ”

“मुंजाल मेहता चाहे जैसे हों; पर ऐसे नहीं हैं। ” समरने विश्वास दिलाया। इतनेमें कुमार जयदेव आ गया और बात अधूरी रह गई।

“ माँ, तुम क्यों रो रही हो ? ”

मीनलदेवीको इस लड़केपर कुछ अरुचि-सी पैदा हुई। अज्ञात रूपसे उस मुखकी रेखाओंकी ओर उसकी दृष्टि चली गई। उसे कँपकँपी आ गई। प्रयत्न करके उसने जयदेवको अपने समीप खींच लिया, “ कुछ नहीं बेटा, जब तू राजा बनेगा, तब क्या अपनी माताको याद करेगा ? ”

“ माँ, माँ, जयसिंह महाराजकी आन जहाँ जहाँ फिरेगी, वहाँ वहाँ मीनलदेवीकी पूजा होगी। ऐसी घबरा क्यों रही हो ? ” बाल भूपने इस प्रकार कहा, जैसे वह अनजाने इतिहासको आदेश दे रहा हो।

“तेरा मुख मीठा हो बेटा ! ” कहकर रानीने उसे अलग कर दिया, और कहा, “ अब घूमने जाओ। समर, किसीको महाराजके साथ भेज। ”

“मैं तो यहाँ घूमते घूमते ऊब गया हूँ, मैं पाटन जाऊँगा। ” होठपर होठ चढ़ाते हुए जयदेवने कहा और वह समरको लेकर बाहर चला गया।

रानीमें अभी अभिमान शेष रह गया था। ‘ मुंजालके पास जाकर सहायता माँगना ? स्वाभिमान त्यागकर उसके पैरोंमें सिर झुकाना ? ’ इस प्रकारकी उधेड़-बुनमें जब सन्ध्या हो गई, तब विजयपाल आया। दूसरी बहुत बातें करके उसने मुद्देकी बातें कहना शुरू किया।

“ महारानीजी, कई सामन्त रातको अपने सैनिकोंको साथ लेकर भाग गये और अधिकांश वल्लभसे जा मिले। अब कुछ करना चाहिए। आप कहें, तो पाटनपर घेरा डाला जाय, अन्यथा लौटकर वल्लभसे लड़ा जाय। परन्तु यों खाली बैठे बैठे तो सब चले जायँगे। ”

“ मैं कल तुमसे कहूँगी। कल सायंकालके पूर्व ही मेरा निश्चय हो जायगा। ” अपने गौरवकी रक्षाके लिए अन्तिम प्रयत्न करते हुए रानीने कहा।

"अच्छी बात है।" कहकर विजयपाल चला गया।

रानीने देखा कि निश्चय करनेमें अब विलम्ब नहीं किया जा सकता; अतएव यथासम्भव शान्तिसे वह उपाय गिनने लगी। उसका जोश बहुत कुछ ढीला पड़ गया था; इससे वह ज्यादा बुद्धिमानीसे विचार कर सकी। पाटनपर घेरा डालने या मालवराजसे मिल जानेसे सम्भव है कि विजय प्राप्त हो जाय; परन्तु पराजित होनेसे तो जयदेवका सिंहासन भी हाथसे चला जायगा। इसके अतिरिक्त और कौन मार्ग है? इसी समय उसे प्रसन्नके शब्दोंका स्मरण हो आया कि 'रेवा-तट पर जाकर रहो।' तब क्या मेरे ही लिए यह सब उपद्रव है? रेवा-तटपर चली जाऊँ? या चन्द्रपुर चली जाऊँ? नही, नहीं, नहीं, यदि मेरे जानेसे जयदेव सुखी होता हो, तो मर क्यों न जाऊँ? कर्णदेवके पश्चात् सती क्यो न हो जाऊँ? यह उपाय ठीक मालूम हुआ। मेरी लाज, मेरे कुलकी गद्दी अग्निदेव बचाएँगे।

परन्तु क्या जीवित नहीं रहा जा सकता? किसके लिए मरूँ? जिसकी वफादार स्त्री रहते हुए भी जो हृदयमे बस नहीं सका, उसके पीछे?' तुरन्त ही मुंजाल याद आ गया; मुरारपाल, समर और अपने हृदयकी सलाह याद आ गई। 'मरते मरते इस अन्तिम उपायसे काम क्यो न लिया जाय?' मीनलदेवी स्वार्थिन थी, उसकी आकाक्षाएँ बड़ी बड़ी थीं, उसे जीवित रहने और राज करनेकी लालसा थी, तब ऐसा उपाय क्यों छोड़ दिया जाय जिससे सभीका तुष्टि हो? और फिर कल रातसे तो उसका हृदय मुंजालको देखनेके लिए तरस रहा था, उससे मिलनेको पागल हो रहा था।

मीनलदेवी एकदम उठ खड़ी हुई और उसने पुकारा, 'समर!' समरसेन आ गया; रानीमे अचानक परिवर्त्तन देखकर वह चकित होगया, "समर, मुंजाल मेहताको मेरे पास भेजो।"

समर प्रसन्न हो उठा और "जो आज्ञा" कहकर चला गया।

४०—हृदय और हृदयेश्वर

मीनलदेवी छातीपर हाथ रखकर अपने उछलते हृदयको शान्त करते हुए खड़ी रही। वह काल, वस्तुस्थिति, प्रसंग, सब कुछ भूल गई। उसे केवल यही भान रह गया कि उसका मुंजाल आ रहा है। पंद्रह वर्ष पीछे खिसक गये; चन्द्र-

पुरमे जो मीनल थी अधिकांशमें वह वैसी ही बन गई। वर्षों बीत गये थे, दुःख पड़े थे; फिर भी हृदयमे कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ था।

बहुत देरतक वह ज्योंकी त्यों खड़ी रही। 'क्या न आयेगा? आयेगा तो क्या कहेगा? किस प्रकार वह बात आरम्भ करेगा?' किसीके पैरोंकी आहट सुनाई पड़ी। उसने मुंजालके पैरोंकी आहटको पहचाननेका प्रयत्न किया, परन्तु लाभ कुछ हुआ नहीं। आहट निकल गई; और उसका हृदय अधिक खिन्न हो गया। फिर किसीके आनेकी आहट हुई। उसने सोचा, यह अवश्य वही होगा।

इतनेमे समरसेन आ गया और बोला, "माता, मुंजाल मेहता आ गये, बाहर हैं।"

"अन्दर भेजो, और जबतक मैं न कहूँ, किसीको अन्दर न आने देना।"

"जो आज्ञा" कहकर समर गया और मुंजालको अन्दर ले आया। समर फिर चला गया और सावधानीसे द्वार बन्द करके बाहर खड़ा हो गया।

मुंजालके हाथ और पैरोंसे हथकड़ी और बेड़ियाँ निकाल दी गई थीं। इससे वह खुला हुआ ही आया। उसकी चाल पहले ही जैसी दृढ़ तथा सत्तादर्शक थी। उसका मस्तक पहलेसे भी अधिक गर्वसे गगनमें विहार कर रहा था। केवल उसके मुखपर अत्यंत ग्लानि छाई हुई थी। उसके होठ भयंकर दृढ़तासे दबे हुए थे। आँखोंमे अप्रसन्नता दिख रही थी, पर साथ ही दया भी थी। वह सिर झुकाकर खड़ा हो गया।

उसे देखकर रानी उलझनमें पड़ गई, 'अब कैसे बोला जाय?' उसको धक्का-सा लगा और वह सिर उठाकर ऊपर न देख सकी। रानीने सोचा था कि वह बोलेगा; परन्तु एक अक्षर भी उसके मुखसे न निकला। कुछ देरमें रानीने नीचेसे ऊपर देखा। मुंजाल निर्विकारिताकी मूर्ति बना हुआ नीचे ही देख रहा था।

"मुंजाल, मैं किस तरह बात शुरू करूँ? मैंने तुम्हें बड़ा दुःख दिया है, मुझे क्षमा करोगे?" रानी उत्तरकी आशासे कुछ ठहर गई।

मुंजालने केवल नीचेसे ऊपर ही देखा।

"तुम मेरी ओर तिरस्कारसे देख रहे हो? भले देखो। मेरा गर्व गल गया है, मैं अपनी मूर्खताको समझ गई हूँ, मेरी गई हुई सुबुद्धि फिर लौट आई है। मैं तुम्हारे तिरस्कारकी पात्र हूँ; परन्तु मुझे क्षमा न करोगे?"

मुंजाल ज्योंका त्यों खड़ा रहा।

" तुम क्या देख रहे हो ? क्या विचार कर रहे हो ? बोलते क्यों नहीं ? "

" मैं सुन रहा हूँ। " उसका प्रभावशाली स्वर नरम पड़ गया था।

" मुंजाल, तुम बुद्धिमान् हो। तुम्हे बनाना फ़िज़ूल है, अब तुम यह मान लो कि तुम्हें समझानेकी शक्ति मुझमें नहीं है। तुम चतुर हो, पाटनमें तुम्हारे समान और कोई नहीं है। तुम्हारे हाथमें मेरा राज और मेरे लड़केका ताज है। तुम जाओ और पाटनको मना आओ। "

" मैं बन्दी हूँ, क्या पता कि पाटनमें क्या हो रहा है ? "

" पाटनमें ! पाटनसे मैं बाहर हुई कि जनताने हुल्लड़ खड़ा कर दिया, शान्तु मेहताके हाथसे दरवाज़ोंकी कुंजियाँ ले लीं और तुम्हारा भानजा त्रिभुवनपाल नगरका राजा बन गया। इसके सिवाय मंडुकेश्वरका रुद्र महालय जल गया, उसमें देवप्रसाद और हंसा जल मरे। "

" हंसा ! " मुंजालके स्वरमें कुछ अनुभूति आने लगी।

" हाँ, हंसा। आखिर मैंने उसे मंडलेश्वरके पास भेज दिया था। त्रिभुवनकी धारणा है कि उसके माता-पिताको मैंने मरवा डाला; अतएव वह प्रतिज्ञा लेकर बैठा है—"

मीनलने 'क्यों' पूछनेकी प्रतीक्षा की; परन्तु कोई प्रश्न नहीं हुआ। वह आगे कहने लगी, " कि, या तो मीनल न रहेगी, या पाटन न रहेगा। " रानीने मुंजालकी ओर देखा। वह तो निर्विकार खड़ा था; अतएव वह थककर और आगे कहने लगी, " इस समय चन्द्रावतीकी सेना दो ओरसे फँसी हुई है; एक ओर वल्लभसेन देवप्रसादकी सेना लेकर पीछे पड़ा है और उधर त्रिभुवन पाटनके दरवाज़े बन्द किये बैठा है। पाटनकी ओर देखूँ ? वल्लभके साथ युद्ध ठानूँ, तो संभव है जयदेवका सिंहासन समूल ही चला जाय। इसकी अपेक्षा पाटनके साथ समझौता हो जाय, तो अच्छा। परन्तु वह कैसे करूँ ? "

मुंजाल मौन रहा।

" कहते क्यों नहीं कि तुम्हारी क्या सलाह है ? "

" बन्दियोंकी सलाह कैसी ? "

" मुंजाल, तुम मेरी एक भूलको बार बार आगे करते रहोगे ? मैं मूर्ख हूँ। पिछले तीन दिनोंमे मुझे बहुत कुछ ज्ञान हुआ है। मैं समझ गई कि मेरी मूर्खताकी कोई सीमा नहीं रही है। " कहकर मीनलदेवी सिरपर हाथ रखकर चौकी-

पर बैठ गई।

" मुंजाल, मैंने तुम्हारी बात न मानी, इसके लिये मैं पछता रही हूँ। तुम सोचोगी कि मैं ढोंग कर रही हूँ। परन्तु नहीं, मैंने देख लिया कि जनताके जिस विश्वासको तुमने और मंडलेश्वरने प्राप्त किया, उसे मैं क्यों न प्राप्त कर सकी। "

रानीने अब तक बहुत-कुछ मनमें रख छोड़ा था; पर विचारोंने, दुःखने, मुंजालके लिए उमड़ रही अनुभूतियोंने हृदयके द्वार खोल डाले थे; और एक बार जहाँ विचारों और अनुभूतियोंका प्रवाह आरम्भ हुआ कि उसे रोकना कठिन हो जाता है; अतएव उसने मुंजालके बोलनेकी प्रतीक्षा न करके आगे कहना जारी रक्खा, " तुम्हारी अपेक्षा मैं अपनेको बुद्धिमती समझती थी और दूसरे लोगोंको वशमें रख कर, उन्हें शतरंजकी गोटें मानकर खेलना चाहती थी। तुम दोनों, गुणमें और दोषमें जनताके आदर्श थे, और इसीसे उनका तुमपर प्रेम था। इसमें तुम जीते और मैं हारी। यह मुझे बहुत पीछे ज्ञान हुआ कि निरंकुश सत्ता एक स्वप्न है। "

" ऐसा ? " मुंजालने पूछा। उसके नेत्रोंमें तिरस्कार चमक रहा था।

" हाँ, अब तुम भी कुछ कहोगे ? मेरी बाज़ी बिगड़ गई है। मेरे सिंहासनका ठिकाना नहीं रह गया है। सब कुछ सुधारना तुम्हारे हाथ है। किसी भी प्रकार अपने भानजेको समझाओ। मैं सब कुछ देनेको राज़ी हूँ। केवल मेरे पुत्रके मुकुटको अमर रखो, और मुझे राज-माताके रूपमें पाटनमें रहने दो। "

मुंजालने लापरवाहीसे पूछा, " वह क्या कहता है ? "

" वह न जाने क्या क्या कहता है। मेरी बित्ते-भरकी भतीजी मुझसे आकर कह गई कि मैं रेवा-तटपर जाकर रहूँ, तो वह जयदेवका पट्टाभिषेक करा देगी! क्या करूँ, मुझमें शक्ति नहीं है, और कोई नगर भी मेरी पीठपर नहीं है, नहीं तो उस लड़की और उसके त्रिभुवनकी जीभ खिंचवा लेती! मैंने सुना है कि उस लड़केने प्रतिज्ञा की है कि पाटनमें या तो मैं न हूँगी, या वह न होगा। अब क्या किया जाय ? तुम कुछ बोलते क्यों नहीं हो ? तुम्हारी बुद्धि कहाँ चली गई ? "

मुंजालने चिढ़कर कहा, " जबतक मैं मंत्री था, तबतक बुद्धि थी, अब नहीं है। "

" बुद्धि नहीं है ? मुंजाल, तुम क्या कह रहे हो ? तुम्हारे सिवाय इस समय

मुझे और कोई अवलंब नहीं है।—नहीं, तुम्हारे सिवा और कोई अवलंब न मुझे पहले था और न अब भी है। तुम कोई मार्ग दिखलाओ। तुम्हारी बुद्धि काम न दे, यह कहीं हो सकता है? छुटपनमें तुम ही कहा करते थे कि मैं नहीं समझ पाता कि मैं क्या नहीं कर सकता?"

"हाँ, मैं सब कुछ कर सका। स्त्रीको मरने दिया, बहनको मार डाला, एक तरहसे बहनोईको भी मार डाला, नगरका गला घोंट दिया; परन्तु अब भानजेको मार डालनेकी बुद्धि नहीं रह गई है।" पदभ्रष्ट मंत्रीने इस प्रकार कहा, जैसे कोई साधारण-सी बात कह रहा हो।

"तब मैं मर जाऊँ? मुंजाल, इन सबकी जड़ मैं हूँ, सबके बीच पड़नेवाली कील मैं हूँ। मैं मर जाऊँ, यह भी मैंने विचार किया है। अन्तमें अग्निदेव तो मेरा तिरस्कार नहीं ही करेंगे। परन्तु उनकी शरणमें जानेसे पहले, सोचती हूँ, कि क्या कोई उपाय है? तुम कुछ बताओगे?"

मुंजालने कठोर स्वरमें कहा, "मरी और जीतीके बीच मुझे तो कोई अन्तर नहीं दीखता।"

"तुम्हे कैसे दिखेगा? मैं तुम्हारी शरणमें आई हूँ, इसलिए तुम जो कहोगे ठीक होगा; परन्तु कोई मार्ग बताओ।"

मुंजालने तिरस्कारसे कहा, "ईश्वरकी इच्छाके अधीन हो जाओ।"

"अर्थात्, मैं मर जाऊँ? अपने बेटेके राज्यको हाथसे चला जाने दूँ?"

मुंजालने भयंकर रूपमें कुछ हँसकर कहा, "योगमाया जो ठहरीं और सोलंकी कुलका उच्छेद करनेके लिए जो पैदा हुई हो।"

रानीको लगा कि यदि उसे पिघलाना ही है तो वह मौन रहे, इसकी अपेक्षा तो गाली दे, यही अच्छा है। अतएव वह बोली, "हाँ, मैं उच्छेद करनेके लिए अवतरित हुई हूँ। तुम किसलिए बोलोगे? एक सोलंकी जायगा, तो दूसरा आ जायगा। तुम्हारा तो भानजा चक्रवर्ती होगा।"

मुंजालने थोड़ेमें बात समाप्त कर दी, "दुनियाकी चढ़ती-पड़तीके साथ मेरा कोई संबंध नहीं।" वह इस प्रकार मीनलदेवीकी वाक्चातुरीमें फँस जानेवाला नहीं था।

"तब तुम कुछ न करोगे? मुंजाल, इन पन्द्रह वर्षोंके पश्चात् भी तुम इतना न करोगे?"

उत्तरमें मुंजाल कठोर रूपमे हँस पड़ा। रानीने अकुलाकर कहा, " हँसो, हँसो, प्रसन्न होओ। मै इतना इतना कह रही हूँ, पर तुमपर ज़रा भी असर नहीं होता ? एक वार क्षमा न करोगे ? अब तुम्हारे कहे बिना एक पैर भी न रखूँगी, कुछ तो मार्ग बतलाओ। "

" मैं मार्ग बतलानेका धन्धा छोड़ चुका हूँ। "

" यह क्या करते हो ? तुम्हें तनिक भी दया नहीं आती ? मैंने तुम्हारा मंत्री-पद छीन लिया, मैंने तुम्हे बन्दी कराया, मैं कृतघ्न सिद्ध हो गई, जो कुछ तुम्हें कहना हो, कहो। परन्तु एक बार, कृपा करके कुछ कह तो दो। तुम कहो तो तुम्हारे पैरों पड़ जाऊँ। " ज्यों ज्यो रानीको अपने प्रयत्न निष्फल होते प्रतीत होने लगे, त्यों त्यो वह अधिक प्रयत्न करने लगी; और प्रयत्न करते हुए, उसमे जो कुछ स्वाभाविक गंभीरता तथा अभिमान था, वह चला गया और अपने असली स्वभावमे जो कुछ भाव थे, वे प्रकट होने लगे। गतरात्रिसे, वह इसी मार्गपर चल रही थी। अब प्रतिक्षण ज्यों ज्यो वह हृदयकी सीधी-सादी भाषा बोलने लगी, ज्यों ज्यों सामने खड़े प्रभावशाली पुरुषका व्यक्तित्व उसके पागल हृदयको निःशब्द रखकर भी अधिक पागल बनाता गया, त्यों त्यों उस मार्गका अन्त आने लगा। वह अनुभव-हीन, कृत्रिमता-रहित, अधिकारकी आकांक्षाके दाव-पेचोंसे रिक्त पन्द्रह वर्षों पहलेकी मीनल बनती गई। मीनलने हाथ जोड़ लिये।

" रानी, इसके सिवाय और कुछ न कहना हो, तो मुझे छुट्टी दो। इसमें मैं कुछ भी नहीं कर सकता। जिस दिन मैं आपके हाथों बन्दी हो गया, उस दिनसे मैं मुंजाल नहीं रहा। "

" रानी, एकदम उठ बैठी और मुंजालके सामने आ खड़ी हुई। अपने एक हाथमे दूसरा हाथ लेकर मरोड़ डाला और कहा, " फिर वही बात ! मैंने अपराध किया है, उसके बदले मुझे मारना हो, तो मार डालो। मुझे फिर पाटन ले चलो और चाहो तो कल प्रातःकाल मुझपर आरी चला देना। लौट-पलटकर वही वही बात क्यों कह रहे हो ? मुझे देखकर तुम्हें तिरस्कार उठता है ? घड़ीभर मुझसे वार्त्तालाप करनेमे भी तुम ऊब रहे हो, यह भी भाग्यकी बलिहारी है। मुंजाल, तुम कह रहे हो कि मैं मर जाऊँ ? क्या यही तुम्हारे अन्तिम शब्द हैं ? सचमुच क्या कोई और मार्ग नहीं रहा ? परन्तु आज तेतीस वर्षकी उमरमें मरना भारी लगता है। "

मुंजालने क्रूरताकी शान्तिके साथ कहा, " सेठानी पचीस वर्षकी उमरमें चली गई, और हंसा तीस वर्षकी उम्रमे । "

रानीने जोरसे सिर पीट लिया और कहा, " हॉ, हॉ, एक भाग्यवान् बन गई कि मुंजाल जैसे पतिके हाथों अग्नि-संस्कार पाया; दूसरी भी भाग्यवान् बन गई कि मंडलेश्वर जैसे महापुरुषके हाथोंके बीच प्राण त्यागे । फूटे भाग्य तो मेरे हैं कि मेरे साथ कोई भी न आएगा, मेरे पीछे कोई न रोएगा । मेरा कैसा दुर्भाग्य था कि पाटनके नामसे लुभाकर मैं यहॉ आई ? नहीं तो यह दिन न देखती । इस भूमिको तो शाप है, यह जिसे तिसे खा जाती है । "

" रानी, मुझे जितना दोष देना हो, दे लो; परन्तु मेरी माताको न देना । "

आक्रन्दन करते हुए मीनलने कहा, " दूँगी, क्यों न दूँ ? तुमने चन्द्रपुर आकर इस भूमिकी प्रशंसा न की होती, तो मैं यहॉ पैर भी न रखती । "

" अपनी जन्म-भूमिका कीर्तन करना मेरा धर्म है । मेरी इस भूमिके समान भूमि तो स्वर्गलोकमें भी मिलना मुश्किल है । " मुंजालने अपने सिरको और भी ऊँचा करते हुए कहा, " अपनी गल्तीपर दूसरेको क्यो दोष दे रही हो ? "

" ऐसा ही सही । मुझे हठ नहीं है । किसलिए ? " ऑंखोंसे अश्रुपात करते हुए रानीने कहा, " इस भूमिके स्वामीके पीछे मैं कल प्रातःकाल सती होऊँगी । इसके बिना इस बेचैनीसे निकलनेका रास्ता मिलनेवाला नहीं । मैं गौरव गवॉकर जीवित नहीं रहना चाहती । नहीं सोचा था कि कभी यह दिन भी देखना पड़ेगा । "

हृदयके उमड़ आनेपर रानी रोती रोती हिचकियॉ लेने लगी और बोली, "मुंजाल, अब तो जरा भीगी ऑखोंसे देखो ! तुम्हारी यह कठोर दृष्टि, तिरस्कारपूर्ण मुख, मेरे हृदयको चीरे डाल रहे हैं । मैं तुमसे और कुछ नहीं कहती, और कुछ नहीं मॉगती, सिर्फ दो बाते भी मुझसे न कहोगे ? यह मैंने कभी नहीं सोचा था कि तुम मेरे प्रति ऐसे बन जाओगे । "

मुंजालने अपना मस्तक छातीपर लटका लिया और वह बिना एक शब्द बोले खड़ा रहा ।

रानी जैसे पागल हो गई हो इस तरह रोते रोते, हिचकियॉ लेते लेते धीरे धीरे फिर कहने लगी, " मुंजाल, क्षण-भरके लिए तो भूतकालको भूल जाओ । तुम क्रोधित हो गये हो, तो दो चपतें जमा लो; इस समय मैं चन्द्रपुरकी राजकुमारी नहीं हूँ,

पाटनकी महारानी नहीं हूँ, नये महाराजाकी माता नहीं हूँ, मैं मीनल हूँ। पन्द्रह वर्ष पहले तुम्हे देखकर पागल बन जानेवाली बाला हूँ। मैं मरूँगी, पर मरनेसे पहले मुझे तुम्हारे दो शब्द तो अपने साथ ले जाने दो। मुंजाल, तुम वे दिन भूल गये ? तुम्हारी बातोंपर लुभाकर मैं गुजरातके लिए पागल हो गई थी, तुम्हें याद है ? तुम पाटनकी लीलाका कैसा वर्णन करते थे ? मुझे इस समय एक एक शब्द स्मरण आ रहा है। मुंजाल, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, एक-बस एक क्षण-भरके लिए सब कुछ भूल जाओ। जैसे किसी समय थे, एक क्षण-भरके लिए वैसे ही बन जाओ। मैं पागल हो गई हूँ, मेरी शान चली गई है। पन्द्रह वर्षोंतक जिनको मैंने स्वप्नमे भी नहीं याद किया ऐसी बालपनकी उमंगें ताजी हो रही हैं। " कहकर उद्वेगके कारण रानी पछाड खाकर गिर पड़ी।

मुंजाल उसे थामनेके लिए ज़रा निकट आया, बीचमें रुका और फिर तनकर खड़ा हो गया। उसने दुखसे ज़रा पिघली हुई आवाज़में कहा, " मीनलदेवी, यह आक्रन्दन किस मतलबका ? गत बातोंका स्मरण करनेसे क्या लाभ ? इस समय तो तुम महाराज कर्णदेवकी विधवा रानी हो। "

" ठीक कहते हो मुंजाल, मरते मरते भी सच्चे हृदयकी उमंगोको प्रकट करनेका मुझे क्या अधिकार है ? मैं पहलेसे ही जूठी हूँ। तुम्हारे देशमे आनेको, तुम्हारे निकट रहनेको, मैंने पराया हाथ स्वीकार किया। अब मेरा अपने हृदयके साथ क्या सम्बन्ध रह गया है ? मनसा-वाचा जिसका जीवन बेईमान रहा हो, उसे मरनेपर भी क्या सुख मिल सकता है ? "

" आप उल्टा अर्थ न लगावें। परन्तु इस समय इन मृत प्रसंगोंको जीवित करनेसे क्या लाभ ? "

" मुझे इस समय लाभकी चिन्ता नहीं है। मरनेवालेको लाभकी क्या परवा होगी ? जो कुछ हूँ, सो हूँ; परन्तु, मुंजाल, " पागल-सी होकर उठते हुए रानीने कहा, " मेरे मरनेसे पहले एक बार तो बोलो, मेरे सामने हँसो। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। मैं तो अपने मुंजालका मुख देखकर मरना चाहती हूँ। मुझे छूनेसे क्या विष चढ़ जायगा ? मुझसे वैर ले रहे हो ? हाँ, उस दिनका बदला ले रहे हो। अपने विवाहके दिन मैंने तुम्हें ठुकरा दिया, मैंने उस दिन तुमसे कहा कि अब मैं गुजरातकी रानी हुई, तुम्हारी माता बनी। मैंने तुमसे कहा कि क्षुद्र वासनाओंको त्यागकर हमें गुजरातका स्तंभ बनकर रहना चाहिए। मैंने तुम्हे

निकाल दिया, दुतकार दिया, उसका बदला ले रहे हो ? ”

इन वाक्योंको सुनकर मुंजालमें अद्भुत-सा परिवर्त्तन हो गया। उसकी भाव-हीनता दूर होने लगी, उसकी छाती श्वासोच्छ्वाससे ऊँची-नीची होती दिखी। उसके मुखपर, उसके नेत्रोंमे कोमलता आ गई। जब वह बोला तब उसका स्वर कॉप रहा था, “ मीनलदेवी, कृपा करके उन दिनोंकी यादको जाने दो। मेरा हृदय चिरा जाता है। ”

“ तुम्हारा चिरा जाता है और मेरा नहीं ? मुंजाल, मुझे स्वार्थी समझो, तुच्छ समझो, बेवफा समझो; तुमने कई बार मुझे हृदय-हीनताके लिए टोका भी है; परन्तु मैं वैसी नहीं हूँ। उन दिनोंको स्मरण करके ही मैं जी रही हूँ। उन दिनोंकी कुचली हुई हृदयकी उमंगोंने मेरे हृदयको स्वार्थी और शुष्क बना दिया है। मुंजाल, व्याह करके तत्काल ही संकेतकी रक्षा करने मैं राजमहलमे उतरी थी, याद है ? वह क्षण याद आते ही मैं एकदम बदल जाती हूँ। उस समय तुमने क्या किया—”

भर्राई हुई आवाज़से मुंजालने कहा, “ मीनलदेवी, बस करो। प्रत्येक मनुष्यके धैर्यकी भी सीमा होती है। मुझसे अब अधिक नहीं सहन होता। ”

“क्यों सहन कर रहे हो ? मैं वही तो चाहती हूँ। एक क्षणके लिए, उस रातको तुम जैसे मुंजाल थे, वैसे बन जाओ, मै सुखसे कल मर जाऊँगी। मुंजाल ! ओ मुंजाल ! ” कहकर रानी पास गई और मुंजालका हाथ पकड़नेको बढ़ी। वह एकदम पीछे हट गया। रानीकी फटी हुई ऑखों और ज्वलन्त मुखपर जो अग्नि दीखती थी उसने उसे भी जलाना शुरू कर दिया। उसके निर्विकार अंग कॉप उठे। उसकी दृष्टिके आगे पहलेकी मीनल आ खड़ी हुई। उसने होठ दबाकर शान्त होनेका प्रयत्न किया, परन्तु, कोई फल न हुआ।

“ रानी, क्या कर रही हो ? ”

“ मुंजाल, तुम मेरे क्यों न रहे ? ”

मुंजालने अपने हृदयके साथ सख्त द्वन्द्व युद्ध करते हुए कहा, “ आपने उस दिन मुझे दूर कर दिया और अभी परसों फिर अलग कर दिया। ”

“ परन्तु तुम क्यों बदल गये ? मुंजाल, मैं अधम हूँ, तुम नहीं हो। ” मीनलदेवीने बहुत ज़ोरसे हॉफते हुए कहा।

सिर हिलाकर मुंजालने हृदयमें उठ रही लपटोंको शान्त करनेका प्रयत्न करते

हुए कहा, " म नहीं बदला।"

" सचमुच ? " मीनलदेवीके नेत्रोंसे भयकर विद्युत् निकल पड़ी।

मुंजालने मस्तक झुका लिया, व्यर्थ प्रयत्न करना छोड़ दिया, " देवी! मीनल!—" असहाय होकर वह पुकार उठा। उसके स्वरमें पुष्पधन्वाके धनुष्यकी टंकार थी।

मीनल चुपचाप बावली बनी खड़ी रही। मानो पागल हो गया हो, इस तरह मुंजाल आगे बढ़ा, मीनलको अपने हाथोंमें ले लिया, मसला और दूसरे ही क्षण बल-पूर्वक धकेलकर भूमिपर पटक भाग खड़ा हुआ।

४१—पाटनकी माता

जब कुमार जयदेव बाहरसे घूमकर लौटा; तब उसने मीनलदेवीको बिस्तरपर पड़े देखा।

" मा, क्या हुआ है ? दोपहरको तो कुछ न था।"

उसका स्वर सुनकर रानी काँप उठी, " जयदेव, मेरा माथा बहुत दुख रहा है, चक्कर आते हैं। क्यों, तुम घूम आये ?"

" हाँ, आज बड़ा आनन्द आया। समर कहाँ गया ? यह बूढ़ा तो अब बिल्कुल निकम्मा हो गया है।"

" नहीं बेटा, पुराने लोगोंपर गुस्सा नहीं करना चाहिए।"

" समर! ए समर! कहाँ चला गया ?"

" आ रहा हूँ महाराज!" कहकर चोबदार अन्दर आया, उसके मुखपर कुछ अज्ञात-सा हर्ष दिखलाई पड़ रहा था।

" लो, यह मेरा मुकुट और तलवार, कहाँ था अभीतक ?"

" मुंजाल मेहताने बुलाया था।" कहकर उसने मुकुट और तलवारको ले लिया। जयदेव बाहर स्नानके लिए चला गया और तब वह रानीकी ओर घूमा, " महारानीजी, अब चिन्ताकी बात नहीं है। मुंजाल मेहताने संदेश कहलवाया है।"

निराशासे मन्द हुए स्वरमें रानीने पूछा, " क्या ?"

" उन्होंने कहलाया है कि 'जो कुछ करना हो, वह कल न करके परसों करना।' कल मुंजाल मेहता पाटन जा रहे हैं।"

उठकर बिस्तरपर बैठते हुए रानीने कहा, " क्या कहता है ?" खेदसे व्याकुल हो रहे उसके मुखकी अशान्ति कुछ कम हो गई।

" हाँ, कल सवेरे जायँगे। अब कोई चिन्ता नहीं है।" मुंजालकी शक्तिको दैवी समझनेवाले श्रद्धावान् चोबदारने कहा। उसके असंस्कृत स्वरमें भी विजयकी टंकार थी।

रानीका हृदय कुछ हर्षित हो गया। उसके मस्तिष्कमे आशाके कुछ अंकुर प्रस्फुटित हो गये। उसने अपनी अशान्ति दूर करनेके लिए कंनपटीपर हाथ रखा, फिर भी उसे जरा-सा उत्साह न आया, कारण कि उसका मन मर-सा गया था।

" महारानीजी, सदा ही भगवान् सोमनाथकी कृपा है।"

उत्तरमें रानीने परमात्माका स्मरण करके ऊपर देखा; परन्तु कुछ दूरीपर इस प्रकार कोलाहल सुनाई पड़ा, जैसे इस स्तुतिका उत्तर मिला हो।

उस समय पड़ाव सर्वदा किसी देवस्थानके निकट ही डाले जाते थे। रानीका पड़ाव महादेवके मन्दिरके निकट था और मंदिरकी कोठरियोंके चारो ओर कोट बना हुआ था। कोटके चारों ओर डेरा-तंबू तानकर विजयपालकी सेना पड़ी हुई थी। ऐसा ज्ञात हुआ कि यह कोलाहल वहीं हो रहा है।

" समर, देख तो यह क्या है ? इतना हो-हल्ला काहेका हो रहा है ?"

" मैं बाहर जाकर देखता हूँ।" समर तेजीसे बाहर गया और कुछ देरमें लौट आया, " माताजी, कुछ दूरीपर मशालें दिखलाई पड़ रही हैं। भला यह है क्या ? ठहरिए, मैं कोटसे बाहर जाकर पता लगा आऊँ।"

रानी फिर घबरा उठी। मुंजालके जानेकी बात सुनकर उसे कुछ आशा हुई थी; पर अब उसे ऐसा लगा कि यदि यह वल्लभकी सेना हो, तो वह आशा भी निष्फल हो जाय। कोलाहल निकट आ गया, उसमें युद्धकी गर्जनाएँ नहीं सुनाई पड़ रही थीं; परन्तु हर्षकी पुकारे थीं। रानी विचारमें पड़ गई; यह क्या है ? कुछ देरमें कोलाहल पड़ावके निकट आ पहुँचा। घोड़ोंकी टापे, रणसिंगोंका नाद, लोगोंका जय-जयकार : यह सब किसके लिए है ?

इतनेमें बाहरसे विश्वपाल और मुरारपाल आये। रानीने तुरन्त उन्हे अपनी कोठरीमे बुलाया।

" मुरारपाल, यह सब क्या है ? यह कौन आ रहा है ? "

" माताजी, यह तो आनन्दसूरि सेना लेकर आ रहे हैं । "

घबराहटसे रानीने पूछा, " क्या कह रहे हो ? " उसे ऐसा लगा, जैसे दुर्दैवकी अन्तिम चोट पड़ी हो ।

" परन्तु उसे तो वल्लभने बन्दी कर लिया था ? "

" कौन जाने—"

इतनेमें कोटके अन्दर आए हुए लोगोंकी आहट सुनाई पड़ी । दो-चार व्यक्ति वेगपूर्वक बरामदेमें आ गये और आनन्दसूरि तथा विजयपाल कुमार जयदेवको साथ लेकर अन्दर आये ।

" माताजी, महाराज जयदेवकी जय ! भगवान् महावीरकी जय । " आनन्द-सूरिका परिचित स्वर सुनाई पड़ा । इतने थोड़े दिनोंमें ही उसके मुखपर बड़ा विचित्र परिवर्त्तन हो गया था । उसके नेत्रोंमें, कपालपर, सारे शरीरके हावभावोंमें केवल एकाग्रता ही दिखलाई पड़ रही थी और नेत्रोंमे कोई अपार्थिव-सा तेज, कुछ उन्माद-सा भास हो रहा था । उसे उत्साहसे उबलते देख रानीमें कुछ अज्ञात खिन्नता-सी उत्पन्न हो गई ।

" आनन्दसूरिजी, आप यहाँ कैसे ? "

" मैं ? माताजी, मुझे वल्लभने बन्दी कर लिया था; परन्तु अन्तमे मैं सफल हुआ और उलटे उसकी कुछ सेनाको साथ लेता आया हूँ । अब हमारी विजय है । विजयपाल मुझसे कह रहे थे कि आप निराश हो गई हैं । परन्तु अब कोई चिन्ता, कोई बाधा नहीं है । कल सवेरे ही पाटनको अपने हाथ दिखाएँगे । " यतिने उतावलीसे उच्च स्वरमें कहा ।

रानीको सूझा नहीं कि क्या उत्तर दे । कोठरीके बाहर बहुत-से लोग यह जाननेको तड़प रहे थे कि अन्दर क्या हो रहा है ।

विजयपालने कहा, " माताजी, आपकी आज्ञा हो, तो द्वार बन्द करवा दूँ, हमारी बातचीत बाहर न जानी चाहिए । "

मुरारपालने समर्थन किया, " ठीक कहते हैं । " रानीने सिर हिलाकर संकेतसे स्वीकृति दी; अतएव समरने द्वार बन्द कर दिया ।

रानीने तनिक गौरव धारण करते हुए कहा, " बोलो, अब क्या कहते हो ? "

यतिने कहा, " कहना, क्या है ? कहनेको अब कुछ है ही नहीं, करना

बाकी है। कुमार जयदेव कल सवेरे गुजरातके सिंहासनपर आसीन होंगे। मैं कलसे भागा हूँ और पाटनका पता लगाता आया हूँ। केवल तीन दिनोंमें पाटन जीता जा सकता है। अब घबरानेका कोई कारण नहीं है। पीछे पड़ा हुआ वल्लभ भी दो दिनमें निराश होकर हट जायगा।"

सबने रानीकी ओर देखा। परन्तु, वह शान्त और ग्लानि-पूर्ण नेत्रोंसे देखती रही। इतनी आशापर भी उसे उत्साह नहीं हुआ था। मुंजालके साथ वार्त्तालापमें उत्तेजित हो जानेके पश्चात् उसका हृदय दब गया था।

जयदेवने बीचहीमे कहा, "माताजी, क्या विचार कर रही हो? अब हम पाटनको लेंगे।"

रानीने शान्त मुख और गंभीर स्वरमे कहा, "नहीं बेटा, मुझे यह नहीं करना। पाटन भले ही जो चाहे करे। वह भले ही कपूत निकले, मुझे अपना मातृत्व नहीं मिटाना है।"

सब लोग स्तब्ध होकर देखने लगे। विजयपालने कहा, "परन्तु महारानीजी, फिर और कौन-सा मार्ग है? कल तो हम लोग इतने विचारमें पड़े हुए थे।"

"विजयपालजी, कल हम लोग विचार कर रहे थे, पर आज मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं कुछ नहीं करूँगी। कल प्रातःकाल मुंजाल मेहता पाटन जा रहे हैं।" रानीने स्पष्टतासे कहा। जबसे उसके हृदयने वर्षोंकी बेड़ियोंको तोड़कर अपने प्रकृत स्वभावको अपने मार्गपर लगा दिया था, तबसे उसका कृत्रिम रोब नष्ट होकर विशुद्ध गौरव दिखलाई पड़ने लगा था; और सादगी तथा सरलतासे बोलनेकी रीति आ गई थी।

यह परिवर्त्तन देखकर यतिको विस्मय हुआ, और बीचमें मुंजालका नाम सुनकर तो वह बहुत अकुलाया। उसने पूछा "मुंजाल?"

"कौन माताजी, अपने मुंजाल?" जयदेव बोल उठा।

रानीने सुधारकर धीरे धीरे कहा, "हाँ, मुंजाल मंत्री पाटन जा रहे हैं। वे पाटनके अग्रणी व्यक्तियोंसे मिलेंगे; और इसपर भी कुछ न हुआ, केवल मेरे ही कारण पाटनकी जनता हठ पकड़े बैठी रही, तो मैं परसों अपने स्वामीके साथ स्वर्गकी ओर यात्रा करूँगी। मैं सती न हो रही थी अपने पुत्रके लिए, अपने देशके लिए, परन्तु यदि वे मेरे बिना सुखी हो सकते हैं; तो क्यों मैं व्यर्थ ही अपने पतिदेवका वियोग सहन करूँ? अपने कारण क्यों देशको डुबाऊँ?"

वहाँ खड़े सभी लोग इस प्रकार सन्देहमे पड़ गये, जैसे स्वप्नमें रानीकी बात सुन रहे हों। उनमे जितने पाटन-निवासी थे, उन्होंने सहर्ष रानीको इस प्रकार बोलते देखकर गौरवसे मस्तक ऊँचे कर लिये। स्वामि-भक्तिके लिए वे रानीके साथ थे, तथापि पाटन उन्हे प्रिय था। परन्तु, यतिके मुखपर भयंकर परिवर्त्तन हो गया। उसकी लाल आँखोमे खूनीका-सा चमकता हुआ तेज आ गया। वह दाँत पीसकर बोल उठा, "यह क्या कह रही हैं ? जब विजय केवल बित्ताभर दूर रह गई, तब ऐसी बाते कर रही हैं ? आप सारे जगत्की आशा हैं, आपकी महत्ता-पर ही सब श्रद्धा किये बैठे हैं। अर्हन्तोंकी कृपासे आपके हाथमे अधिकार है, स्यानपन है, बुद्धि है, विजय प्राप्त करनेकी शक्ति है, फिर भी ऐसा कह रही हैं ?" क्रोधके आवेशमें उसने पूछा।

आस-पास खड़े योद्धा बीचमे बोलना चाहते थे; परन्तु रानीने कहा, "सत्ता, बुद्धि, और विजय—इतनी सबकी अपेक्षा मुझे अपनी प्रजा अधिक प्यारी है। यतिजी, तुम यह भूले जा रहे हो कि गुजरातकी रानीके साथ वार्त्तालाप करते हुए कैसा अदब रखना चाहिए ?"

यतिने होठ चबा लिये, "नहीं, महारानीजी, मैं भूलता नहीं हूँ; परन्तु आपकी जिस राजनीतिके लिए मैं मर मिटा, वह जब परिपक्व होनेको आई, तब आप ऐसा कह रही हैं ? ऐसा क्षण इतिहास-क्रममें एक ही बार आता है, और उसे भी हम चूक जायँ ?"

"आनन्दसूरिजी, मेरा निश्चय दृढ़ है, वह बदल नहीं सकता। यदि मुंजाल कल अपने प्रयत्नमे सफल हो गये, तो मैं पाटन जाऊँगी।"

"आपको ज्ञात है कि त्रिभुवनपाल मजबूत होकर बैठा है ? एक नहीं, पाँच मुंजाल आ जाएँ तब भी वह विचलित नहीं हो सकता। तब क्या करोगी ?" रानीने सख्तीके साथ कहा, "तब मैं सती हो जाऊँगी। अपने पुत्रके राज्यकी अपेक्षा मेरे प्राण अधिक नहीं हैं।"

जयदेवने कहा, "माताजी, यह आप क्या कह रही हैं ?"

मीनलने कहा, "बेटा, क्षत्रियत्वकी टेक रखनेके लिए गुजरातकी रानीको तनिक भी विचार नहीं करना चाहिए।"

यतिने कहा, "परन्तु धर्मकी ध्वजाके आगे टेककी क्या गणना हो सकती है ? अकेली टेकने कभी राज्यकी रचना की है ? क्षत्रियोंकी टेकोंने ही तो समस्त

गुजरातको,—समस्त भारतवर्षको छिन्न-भिन्न कर डाला है; और यदि समय रहते एक धर्मकी सत्ता प्रबल न होगी, तो एकधर्मी यवन कल जल्द ही आपको दासों-का भी दास बना छोड़ेंगे। अब भी अच्छी तरह विचार कर लो, ऐसे मौकेको न गँवा दो। जगत्मे चक्रवर्ती बनना हो, तो यही मार्ग है; उसे क्यों छोड़ते हो?"

मीनलदेवीने लापरवाहीसे कहा, "आनन्दसूरिजी, आपके सम्प्रदायमे अब मुझे श्रद्धा नहीं है। चक्रवर्तित्व प्राप्त होगा तो प्रजाके उत्साहसे, उनकी महत्त्वाकाक्षाको सजीव करनेसे।"

"यह महत्त्वाकाक्षा इस समय जैनधर्म ही ला सकता है।"

"सारी प्रजा इसे स्वीकार करनेको तैयार नहीं है। अतएव मुझे भी नहीं चाहिए।"

"स्वीकार करनेको तैयार न हो, तो उसे तैयार करना राजाका कार्य है।" कहकर यतिने अपनी कमरसे बँधी हुई तलवारपर हाथ डाला।

रानीने उत्तर दिया, "अहिंसा परमो धर्मः।" यति गूँगा हो रहा। "यतिजी, जो भी हो, पर मेरा निश्चय अटल है। जीऊँगी, तो पाटनकी इच्छासे; मरूँगी, तो पाटनका गौरव बढ़ानेके लिए।"

यतिने तिरस्कारसे कहा, "पीछे व्यर्थ ही पछताओगी।"

कुमार जयदेव क्रोधित होकर बोलना चाहता था, उसे रानीने रोक दिया। रानीने कहा, "आनन्दसूरिजी, आप धर्मात्मा हैं, नहीं तो ऐसे शब्दोंके लिए आपकी जीभ खिंचवा लेती। जाओ!" द्वारकी ओर अँगुलीसे संकेत करके रानीने कहा और फिर विजयपालसे कहा, "विजयपालजी, आपने मेरा निश्चय सुन लिया है। आप चन्द्रावतीके सेनापति हैं। अब आपके नगरका हित किस बातमे है, यह आप जानें।"

आनन्दसूरिने तिरस्कारसे कहा, "धर्मकी विजयके बीच स्वार्थी हृदयकी प्रेरणाओंको लानेसे ही इस जगत्का अधःपात हुआ है।"

मुरारपाल बीचमें आकर बोला, "यतिजी, आप यति हैं, इसकी मुझे अधिक परवा नहीं है। अब यदि आप महारानीके सुनते, फिर ऐसी कोई बात मुखसे निकालोगे, तो आपका मस्तक कहींका कहीं जा गिरेगा! विजयपालजी, अब हम चले, महारानीजीकी तबीयत ठीक नहीं है।"

सब लोग चुपचाप बाहर निकल गये। मुरारपाल पीछे रह गया और रानीकी

ओर घूमकर बोला, " माताजी, अन्तमें आपने पाटनकी नाक,—पाटनकी प्रतिष्ठा बचा ली। एक बार मैंने आपकी आज्ञाका पालन करना अस्वीकार कर दिया था, अब मेरे प्राणोंकी आवश्यकता हो, तो वे भी हाजिर हैं। "

" मुरारपाल, मुझे इस बातका ज्ञान आज हुआ कि जब मैं तुम सब लोगोंकी रानी थी, तब मैंने कैसा मौका खो दिया। तुम विश्वास-पात्र हो। देखो, यदि मुझे कुछ हो जाय, तो जयदेवको सँभालनेवाले केवल तुम्हीं हो, यह ध्यान रखना।"

" माताजी, जबतक मेरी देहमें प्राण हैं, तबतक कुमार जयदेवको मैं ज़रा भी आँच न आने दूँगा। अब आप हारी-थकी हैं, विश्राम क़ीजिए। " कहकर मुरारपाल चला गया।

कुमार जयदेव अकेला रह गया। उसके स्वार्थी हृदयमें मीनलदेवीके प्रति प्रेम था, उसके शब्दोंके लिए सम्मान था, उसकी बुद्धिपर विश्वास था। मीनलदेवीकी यह प्रतिज्ञा देखकर वह विस्मित हो गया। उसे सूझा नहीं कि क्या करे। केवल उसने यह पूछनेका प्रयत्न किया कि मीनलदेवी सती क्यों हो रही हैं; परन्तु, मीनलदेवीने कल कहनेका वचन देकर उसे शान्त कर दिया। रानीका हृदय न जाने कौन-कौन-से विचारोंमें विहार कर रहा था।

४२—संधि-संदेश

त्रिभुवनने कुछ ही दिनोंमें अद्भुत शक्ति दिखलाई थी और नगरकी व्यवस्था और रक्षाके लिए जरूरी उचित उपायोंसे काम लेना शुरू कर दिया था। यह ठीक है कि खेगारके अनुभव और उदाकी राजनीति-पटुतासे बहुत काम हुआ था, फिर भी त्रिभुवनके समान उत्साह-प्रेरकता किसीमें नहीं थी। लोग उसे पहलेके शूर-वीर सोलंकियोंका मुकुट-मणि समझने लगे थे। उसके शब्दोंपर प्राण देनेको तैयार होनेमें बड़ाई मानने लगे थे। स्त्रियाँ उसके कोमल किन्तु सुन्दर मुखको देखकर निछावर होने लगीं। पुरुष उसके साहस तथा चतुराई-भरे चारित्र्यको देखकर बलि होने लगे। बूढ़े उसके पिता और माताकी पुरानी बातोंको स्मरण करके उसे पूजने लगे। डूँगर नायक तो उसे देवता समझता और उसके पीछे कुत्तेकी भाँति भक्तिसे घूमते रहनेमें बड़ाई समझता था। प्रसन्न उसके लिए सब

प्रकारकी व्यवस्था करने और उसके हृदयकी निराशा और दुःखोंको दूर करनेमें व्यस्त रहने लगी।

पाटनवासियोंका उत्साह कुछ अंशोंमें बढ़ गया था। यों ही द्वार बन्द करके बैठे रहना उन्हें भला न लगने लगा। अनेक लोग तो दिग्विजयकी तैयारीका विचार करने लगे। पर जिन्हें दिग्विजयकी हौंस थी उनको त्रिभुवनकी दृढ़ता और उदाकी व्यवस्था अधिकतर वशमें रखने लगी। उदाने अपने वर्त्तमान अधिकारसे लाभ उठाकर राजतंत्र जैसे पहले था वैसा ही चलानेका प्रयत्न किया, और लोगोंमें एक ही महत्त्वाकांक्षा होनेके कारण उसे बहुत अंशोंमें सफलता मिली। इन दोनोंके दिन और रातके परिश्रमसे किये हुए प्रबन्धके कारण अव्यवस्थाका भय दूर हो गया और पाटन निर्भयतासे शांतिके साथ रानीके मुक़ाबलेमें खड़ा हुआ।

त्रिभुवनको जो समाचार मिल रहे थे, उनपरसे प्रकट हुआ कि रानी अभी कुछ कर सके ऐसी स्थितिमें नहीं है। अतएव, बैठे बैठे वह विचार करने लगा कि पाटनका अधिकार किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है। जब प्रातःकाल वह सोकर उठा, तो माता-पिताकी मृत्युका शोक होते हुए भी उसका चित्त प्रफुल्लित था। उसके महत्वाकांक्षी हृदयको समस्त भारत जीत लेना भी सहज मालूम हुआ। सूतकके कारण नित्य-कर्म तो कुछ करना नहीं था; अतएव स्नान करके उसने बाहर निकलनेका विचार किया। परन्तु, सूर्योदयमें अभी विलम्ब था। उसने उदाको बुलाकर कुछ देर परामर्श किया और अपना हाथी मँगानेका आदेश दिया।

उदाने दुपट्टेकी तह करते हुए कहा, "महाराज, सब लोग एक ही बात कह रहे हैं।"

"काहेकी बात?"

आँखोंको छोटी करके मारवाड़ीने कहा, "आपकी।"

उदाकी बात कहनेकी खूबीपर हँसते हुए त्रिभुवनने कहा, "परन्तु काहेकी बात?"

"क्यों, आपको,— परन्तु महाराज, नाराज न हो जाना।"

"अच्छा, परन्तु कहो तो सही।"

"आपको सब लोग उलहना दे रहे हैं।"

"क्यों, किस लिए?"

"कल मैंने जो बात कही थी उसके लिए।"

" उदा सेठ, तुम कितनी ही चतुराई बतलाओ पर मैं एकसे दो नहीं होनेका। जो वचन मेरे दादाजीने दे दिया, उसे मैं भंग न करूँगा। पाटनके सिंहासनपर कर्णदेव महाराजके पुत्रके रहते मैं बैठूँ? पागल हुए हो! यह कैसे हो सकता है? पाटनका स्वामी वही है, मैं तो उसका सेवक हूँ।"

" इसी इसीमें—"

" देखो, फिर तुमने इस बातको बढ़ाया," कहकर वह घूमने जा रहा था कि इसी समय एक नौकर घबराता, हाँफता हुआ दौड़कर आया और यह भूलकर कि वह किससे बात कर रहा है, पूछने लगा, " खेंगार बापू हैं?—खेंगार?"

एक तीक्ष्ण दृष्टिपातसे त्रिभुवनने उसे डराया और विनयी बना दिया, "क्यों, ऐसा कौन डाका पड़ रहा है? तू कौन है?"

" महाराज, मैं पहरेदार हूँ, मोंढेरी दरवाजेपर—" कहकर वह कुछ देर साँस लेनेको रुक गया; त्रिभुवन सख्त होकर सुनता रहा, " महाराज, खेंगारजीसे कहने आया था कि दरवाजेके बाहर नगरसेठ आये हैं—पधारे हैं।"

त्रिभुवन और उदा दोनों इस प्रकार बोले जैसे नीचेसे पृथ्वी खिसक गई हो, " नगरसेठ?"

" हाँ महाराज, मुंजाल मेहता।"

दोनों सुननेवाले घबराहटसे फीके पड़ गये। त्रिभुवनने बड़े प्रयत्नसे अपनेको शान्त किया, " सेना लेकर? कितनी सेना साथमे होगी?।"

" नहीं महाराज, अकेले।"

" हैं!"

" हाँ, कहते हैं कि आपसे मिलना है; आज्ञा हो तो अन्दर आएँ, नहीं तो आप बाहर चलें।"

" उदा सेठ, जाओ, खेंगारसिंहको बुला लाओ।"

मंडलेश्वर खेंगारसिंहको बुलानेके लिए जाते हुए उदा विचार करने लगा। वह एकदम घबरा गया था; परन्तु उसकी निर्मल स्वार्थ-बुद्धिने तुरन्त सहायता की। 'मुंजाल नगरमें आ गया, तो सारा खेल खत्म हो जायगा; उसका व्यक्तित्व, उसका वाक्चातुर्य, उसकी बुद्धिमानी सबको वशमें कर लेगी। अब किया क्या जाय?' खेंगारसिंहके मिलनेतक उसने एक योजना गढ़ डाली।

" बापू, मुंजाल मेहता आये हैं, कोटके बाहर खड़े हैं। त्रिभुवनपाल महा-

राजसे मिलनेकी आज्ञा चाहते हैं। चलिए, आपको महाराज बुला रहे हैं।"

खेगारने कहा, "ऐं! रानीने भेजा होगा?"

"हाँ, और क्या। परन्तु देखना, कहीं सब लौट-पलट न कर दे, बड़ा भारी मुत्सद्दी है।"

बूढ़ेने मूँछोपर ताव देते हुए कहा, "अजी, कैसे लौट-पलट देगा! यह कोई सहज बात है!"

"नहीं तो बापू, इतना करना कि बात करनेके लिए त्रिभुवनपालको नगरसे बाहर जाने देना; मुंजाल मेहताको नगरमें न बुलाना।"

"जाओजी, पागल हुए हो! मुंजाल मेहता कभी पाटनको लाछन नहीं लगने दे सकता है।" कहते कहते खेंगार त्रिभुवनपालके पास आ पहुँचे। त्रिभुवनको सम्बोधन करते हुए बूढ़ेने कहा, "क्यों ठीक है न? मुंजाल मेहता आये हैं, तो बुलाओ उन्हें यहाँ।"

"हाँ, मैं यही विचार कर रहा था।"

उदाने फिर अपनी बात आगे रखी, "महाराज, आप ही नगरसे बाहर मिलनेके लिए जायँ, तो कैसा?"

"किसलिए? मेहताजी भी पाटनके हैं, और बातचीत करके वापस चले जायँगे।"

उदाने निःश्वास छोड़ा। उसके विचारसे यह सब मूर्खताका काम किया जा रहा था। "ठीक है, बापू।"

"काकाजी, आप कहें तो मैं अपना हाथी भेज दूँ। नगरसेठकी प्रतिष्ठाके योग्य ही स्वागत किया जाना चाहिए।"

खेंगारसिंह बोले, "परन्तु साथमें और कोई भी मनुष्य भीतर न आवे।"

"यह तो दरवान कह रहा है कि उनके साथ और कोई नहीं है।"

खेगारने कहा, "तो ठीक है, भेजिए। कहिए तो मैं चला जाऊँ।" उदा अधिक विचारमें पड़ गया, नगरसेठके नामके जादूने असर डालना शुरू कर दिया था। वह बीचहीमें बोल उठा, "मैं भी जाता हूँ।" ऐसे अवसरपर चूकनेवाला वह नहीं था।

"हाँ, जाओ।" कहकर त्रिभुवनपाल वहाँ रह गया और खेगार तथा उदा चले गये। कुछ क्षण बीते और समाचार सुनकर प्रसन्न दौड़ी हुई आ पहुँची।

यह सुनकर कि मुंजाल मेहता आ रहे हैं राजप्रासादमें खलबली मच गई थी।

"क्योंजी, क्या यह सच है?"

"हाँ, सच है। इतनी अकुला क्यो रही हो?"

"देखना, कहीं तुम्हारा व्रत भंग न करा दें!"

त्रिभुवनने गर्वसे उत्तर दिया, "तनिक भी न घबराओ। मैं अटल हूँ।"

न जाने कब तक दोनों जने एक दूसरेकी ओर टकटकी लगाकर देखते रहे। मुंजालसे मिलनेकी आतुरता और अधीरताके कारण, कोई भी एक शब्द मुखसे न निकाल सका। इतनेमें यह समाचार सुनकर दो-एक सामन्त और आ पहुँचे। कुछ देरमें बड़ी अधीरताका अनुभव करनेके बाद राजप्रासादमें कुछ लोग आते हुए सुन पड़े। त्रिभुवन चबूतरेपर जा खड़ा हुआ। मुंजाल, खेंगार, उदा और मार्गमें जो जो मिल गये, सभी पैदल चले आ रहे थे।

मुंजालके वस्त्र बिल्कुल साधारण और मैले थे। जिस वेषमे उसे बन्दी किया गया था, उसी वेषमें वह यहाँ आया था। उसका ऊँचा गठीला शरीर जरा झुक-सा गया था। उसके सिरकी रेखाओंमें गर्व कुछ कम और नम्रता अधिक दिख रही थी। नेत्रोंके तेजमें सत्ताके बदले तिरस्कार अधिक स्पष्ट हो रहा था। उसकी चाल पहलेके समान ही दृढ़ और अधिकार-प्रदर्शक थी। उसका व्यक्तित्व भी पहलेके समान ही शोभा दे रहा था : तेजस्वी और सबसे निराला।

त्रिभुवन स्वागतके लिए एकदम आगे बढ़ गया, उसका हृदय अनेक प्रकारसे उमड़ा आ रहा था; उसने एक अभिमानी मंत्री, राजनीतिज्ञ, नगरसेठ और रानीके सम्मानित मुंजालको देखनेकी आशा की थी। परन्तु इसके बदले एक साधारण भिक्षुककी भाँति निवेदन करने वह आया। इसी समय त्रिभुवनको मुंजालके उन शब्दोंका स्मरण हो आया, "त्रिभुवन, मेरे रिक्त हृदयकी आशाको पूर्ण करोगे?" इन शब्दोंके स्मरणसे वह सब कुछ भूल गया, केवल अपने मामाको देखता रहा,—उस मामाको, जिसको अन्तमें रानीने बन्दी कर लिया था। त्रिभुवन दौड़कर मुंजालसे लिपट गया, "मामा!" कहते कहते उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये। मुंजालके नेत्र ज्योंके त्यों स्थिर रहे।

त्रिभुवन उसे कमरेमे ले गया, और आदरसे बिठाकर बोला, "मामाजी, यह कष्ट आपने क्यों किया?"

"त्रिभुवन, तुम समझ तो गये होगे कि किस कारण मैं आया हूँ; परन्तु म

रानीकी ओरसे नहीं आया, अपने निजके लिए आया हूँ। तुम लोग अगर यह सोचते होगे कि मैं पाटनकी टेक तोड़ने आया हूँ तो यह वास्तविक नहीं है। मैं तुम लोगोंमेंके दो-एक अग्रणी जनोंसे वार्त्तालाप करने आया हूँ। मुझे कुछ बातें कहनी हैं, उन्हें सुनोगे तो पाटनके गौरवकी रक्षा अधिक होगी।" मुंजाल धीरे धीरे दुःखित स्वरमें कहने लगा।

खेंगारने कहा, "मेहताजी, हम आपकी सब बातें सुननेके लिए राज़ी हैं। हमने क्या कुछ मज़ाक़में ही यह सब आरम्भ किया है? जो कहना हो, मज़ेसे कहिए।"

"ठीक है, पर इस प्रकार नहीं। हम ही तीन-चार आदमी बैठ जायँ। कुछ बातें ऐसी होती हैं कि जिनका इधर उधर फैलना उचित नहीं।"

त्रिभुवनने खेंगारसे कहा, "ठीक है, आप ठीक कह रहे हैं काकाजी, सेठ वस्तुपालजीको बुला लिया जाय। वे, आप, मैं और उदा सेठ।"

"ठीक है।"

त्रिभुवनने कहा, "चलिए, हम लोग ऊपर चलें।" सब उठे और ज़ीनेकी ओर घूमे। प्रसन्न दौड़ती हुई बग़लके कमरेमें छिप गई पर मुंजालकी तीक्ष्ण दृष्टि उसपर पड़ गई।

दृढतासे नजर घुमाकर मुंजालने कहा, "कौन प्रसन्न?"

त्रिभुवनने कहा, "जी हाँ, प्रसन्न है। बुलाऊँ? प्रसन्न! ऐ प्रसन्न! मामाजी बुला रहे हैं।"

हँसती, लजाती, सिर झुकाए प्रसन्न तुरन्त आ खड़ी हुई।

"कैसी है बेटी? रानीसे मिली थी न? चल, तू भी चल। इसमें आपको कोई आपत्ति तो नहीं है?"

खेंगारने कहा, "जी नहीं, बिल्कुल नहीं।" कुछ दिनोंके अनुभवसे यह बूढ़ा भी ममतावश प्रसन्नके पीछे पागल हो गया था, "चल प्रसन्न!"

पाँचों आदमी ऊपर गये और चुपचाप बैठे। कुछ देरमें सेठ वस्तुपाल आ पहुँचे। वे बहुत घबराये हुए थे। आते ही वे मुंजालकी तबीयतका हाल पूछने लगे।

"सेठ वस्तुपालजी, तबीयत अब किसकी? पिछले पाँच दिनोंमें तो न जाने कितने युग मुझपरसे निकल गये। यह सब निबट जाय, तो मैं आबूजीकी शरणमें चला जाऊँ। दुनियाके बहुत बहुत लाहे मैं ले चुका।" धीमा, दयनीय हास्य

मुखपर लाकर मुंजालने कहा, " अन्तिम बार आप लोगोंने भी एक लाहा दिया। " खेंगार और त्रिभुवनकी ओर घूमते हुए उसने कहा।

दोनोंने एक साथ पूछा, " वह क्या ? "

" मैं जागता था, मैं सदा कहा करता था कि पाटन नगरी जागती ज्योति है, इसे छेड़नेसे किसीका भला न होगा, इसे आप लोगोंने सिद्ध कर दिया। "

वस्तुपालने पूछा, " तब यह सब आपको पसन्द है ? "

" पसन्द ? जब मैंने सुना कि परदेशियोंके पैरोंकी आहट पाकर पाटनवासी एक स्वरमें विरोधी हो गये हैं, तब मैंने अपने जीवनको सार्थक समझा। यह भूमि देव-भूमि है। इसके वीर पुत्रोंमें दैवी अंश है, इसका मुझे तभी भलीभाँति विश्वास हुआ। " कहते कहते उन्होंने गर्वसे मस्तक उठा लिया। उनके फीके, परन्तु सुन्दर मुखपर ऐसा लगा कि पहलेका-सा गौरव दीप्त हो उठा है।

त्रिभुवनने पूछा, " मामाजी, क्या यह सब आपको अच्छा लगता है ? तब आप क्या कहनेके लिए यहाँ आये हैं ? "

" भाई, लोगोंको जो कहना हो सो कहें; परन्तु मैं तो इतने वर्षों तक पाटनको चक्रवर्ती बनानेका ही विचार करता रहा हूँ। यह सब मुझे भला लगता है। तुम्हारी दृढ़ता,—तुम्हारी वीरता देख देख कर मेरा हृदय बालिश्त-भर ऊपर आ जाता है। और आया हूँ, तो केवल यही कहनेके लिए कि अब जो कुछ करो, वह विचार करके करना। इस अवसरपर भूल करोगे, चूकोगे, तो तुम्हारे नगरका पतन हुए बिना न रहेगा। "

खेंगारने पूछा, " कैसे ? "

" मंडलेश्वरजी, पहले मेरी एक बात सुन लो, फिर मैं कहता हूँ। रानीने मुझसे कहा कि तुम जाकर पाटनको मनाओ; परन्तु मैंने इनकार कर दिया। पीछे मेरे हृदयने मुझे प्रेरित किया और मैं आनेको तैयार हो गया। परन्तु, वह अपने लिए नहीं, रानीके लिए नहीं, केवल पाटनके लिए। "

" वह कैसे ? "

खेंगारसिंहजी, इस क्षणका मूल्य आप जानते हैं ? नहीं जानते। पर मैं जानता हूँ। आपको ज्ञात है कि मैं पन्द्रह वर्ष चुप क्यों बैठा रहा; और क्यों कुछ कर न सका ? कारण, कि वह क्षण नहीं आया था। आज अनेक वर्षोंसे सब लोग पाटनकी महत्ताके लिए तरस रहे थे, फिर भी कोई कुछ क्यो न कर सका ?

कारण, कि यह क्षण नहीं आया था ”

त्रिभुवनने कहा, “ मेरी तो समझमे नहीं आता। ”

“ त्रिभुवन, तुम्हें ज्ञात है कि पाटन जगत्‌का मुकुट कब बन सकता है ? जो उत्साह अकेले पाटनमें इस समय है, वह समस्त गुजरातमें आ जाए, तब। भीमदेवने एक चुटकी मारते ही पाटनको पुनः प्राप्त कर लिया था, इसका क्या कारण था ? यही कि सारे देशमे यही प्रेरणा हो गई थी। हमारी समस्त प्रजाको उठकर खड़ा होना चाहिए। हमारी ताम्रचूड़की ध्वजाके पीछे समस्त प्रजाको आना चाहिए। यह उत्साह इतने वर्षों नहीं आया, अब आएगा। ”

“ क्यों ? ”

“ तुम बालक हो, पुराने वैर-विरोधोंको तुमने नहीं देखा है; पर सब लोग जानते हैं। पाटनको चौथ देनेवालोंमे कितना विरोध है ? त्रिभुवन, बारह मंडलेश्वरोमे तुम्हारे पिता, खेंगारसिंहजी, मदनपालजी और वल्लभसेन,—ये चार तो पाटनमे आनेका कष्ट भी उठाते हैं, बाकी सब अपने अपने मंडलोंमे मौज करते हैं। हमारे बावन नगर कहे जाते हैं, उनमे देखा जाय तो हमारे केवल मोंढेरा, कर्णावती और अधिकसे अधिक सोमनाथ और पाटन हैं। बाकीके सब कहाँ हैं ? सभीने पाटनकी सरदारी स्वीकार की है; परन्तु, नाम-मात्रके लिए। ”

“ पिताजी भी यही कहते थे। ”

“ भैया, तुम्हारे पिताजीके उद्देश्य बड़े थे; परन्तु उनका स्वभाव बड़ा उतावला था। वे प्रत्येक मंडलको स्वतन्त्र रखकर पाटनका अधिकार बढ़ाना चाहते थे, पर यह कैसे हो सकता था ? और फिर इसमे हमारे श्रावकोंका झगडा बाधक था। विमलशाहकी स्थापित की हुई सत्ताके पीछे वे पागल हुए फिरते थे; अतएव जहाँ-तहाँ वे वही चाहते थे। ”

“ तब आपकी क्या धारणा थी ? ”

“ इन सब संकटोसे मार्ग खोज निकालनेका प्रयत्न करके मैं थक जाता था। जहाँ तक मुझसे हुआ, वहाँ तक सब कुछ ठीक रखनेका प्रयत्न किया। मेरा विचार और ही कुछ था। मै पाटनके नरेशकी प्रतिष्ठा बढ़ाकर उसका डंका सारे देशमे बजवाना चाहता था। जबतक किसी एकके हाथमें अधिकार नहीं होता, तबतक राज्य नहीं चल सकता। ”

“ यही तो महारानीजीका मत है। ”

"नहीं, तुम भूल रहे हो। उन्हें तो सत्ता चाहिए थी, और वह किसी भी रास्तेसे। उसका फल वे आज चख रहीं हैं। उस सत्ताके लिए ही तो उन्होंने चन्द्रावतीकी सेनासे सहायता माँगी।"

उदाने कहा, "और आनन्दसूरिको रखा।"

"यह यति बड़ा जबरदस्त है। उसका सिद्धान्त भयंकर है। उसे जैनधर्मकी विजयके आधारपर पाटन राज्यकी रचना करना है।"

वस्तुपालने कहा, "यह कैसे संभव है?" वैष्णव वणिकोंका अग्रणी होनेके कारण वह श्रावकोंकी सत्ताका विरोधी था।

"संभव क्यों नहीं है? यह कोई मूर्खताकी बात थोड़े ही है। धर्मकी शक्ति-पर राज्यकी रचना करनेसे दस वर्षोंमे हम सारे देशको जीत सकते हैं। परन्तु, हमारी परिस्थिति ऐसी नहीं है। और, जैनधर्ममे इतना जोश भी नहीं है।"

खेगारने पूछा, "तब आप क्या करना चाहते थे?"

"मेरा एक ही मार्ग था। यदि दो-चार मंडलेश्वर एक साथ हो जायँ, तो समस्त गुजरातकी सेनाको एकत्र करके मालवापर आक्रमण किया जाय, और आक्रमणमें जो साथ न दें, उन्हें अपने अधीन कर लिया जाय। मैं आप लोगोसे यही कहनेके लिए आया हूँ।"

"क्या?"

"कि जिस अवसरके लिए मैं, मंडलेश्वर, और प्रत्येक पाटनवासी तरसते रहे हैं, वह आगया है। पाटन त्रिभुवनको पूज रहा है। देहस्थली और वल्लभसेन त्रिभुवनके ही हैं। जिस समय भीमदेव महाराजने पाटनपर फिर अधिकार किया था, उसके बाद कितने ही वर्षोंमें प्रजामे यह उत्साह आया है। सभी लोग एक मनुष्यका आदेश पालन करनेको तैयार हैं। यदि वह मनुश्य अवसरका, समयका सदुपयोग करे तो पाटनका डंका दिग्दिगंतों तक सुनाई पड़ने लगे।" धीरे धीरे मुंजालके शब्दोंकी शक्तिसे उसके मुखपर तेज आने लगा। उसकी अपूर्व कान्ति अधिक तेजस्वी होने लगी।

उदाने कहा, "ठीक है, ठीक कह रहे हैं। मुझे भी यही विचार आते हैं।"

मुंजालने प्रभावसे काँपती हुई आवाजमें कहा, "अब विचारका काम नहीं। जो क्षण बीत रहा है, वह स्वर्णका है। महीना-भर इसी प्रकार पड़े रहोगे, तो उत्साह भंग हो जायगा। मैंने सुना था कि सारा पाटन-नगर राजमहलमे उलट

पड़ा था। तो उसे अब रोको मत, आगे बढ़ने दो और उस प्रवाहकी महा-तरंगोंको अवन्ती तक पहुँचा दो।"

उदाने पूछा, "हम यही करना चाहते हैं; परन्तु किस प्रकार करें?"

खेगार और त्रिभुवनपालके हृदयमे वीरता और महत्त्वाकाक्षाकी झंकार होने लगी।

"किस प्रकार करेंगे, विचार करो। आप सब लोग प्रतिज्ञा किये बैठे हैं कि मीनलदेवीको यहाँ न आने देंगे। यदि इस प्रतिज्ञाकी आप रक्षा करना चाहते हैं, तो दो ही मार्ग हैं।"

त्रिभुवनने पूछा। "कौन कौन?"

"या तो इसी प्रकार पड़े रहिए, इससे आपका उत्साह नष्ट हो जायगा; या त्रिभुवनपाल सिंहासनपर बैठकर अपनी दोहाई फेर दे।"

त्रिभुवनने जोरसे सिर हिलाकर कहा, "मैं! मैं यह कभी नही कर सकता। अपने दादाजीके वचनको मैं भंग करूँ?"

"मान लो, कि तुम न करोगे, परन्तु जिस रानीका आज एक भी मित्र नहीं है, कल उसके पचीस मित्र बन खड़े होंगे। गुजरातमे परस्पर मार-काट मच जायगी और कल पाटनवासी लोग भी थक जायेंगे। आप लोगोंके सारे उत्साह-पर पानी फिर जायगा और 'पाटनका प्रभुत्व' पाटनमें ही समा जायगा।"

खेगारने विचार करते हुए पूछा, "तब फिर किया क्या जाय?"

"करनेको तो एक ही वस्तु है जो बन सकती है, कुमार जयदेवको सिंहासनपर बिठाना।"

त्रिभुवनने एकदम उबलकर कहा, "मामा, आपकी बातको मैं समझ गया हूँ। हमारी प्रतिज्ञाको आप मिट्टी कर देना चाहते हैं? मीनलदेवीको हम फिर पाटनमे आने दे और चंद्रावतीके सैनिकोंको प्रविष्ट होने और घूमने दे?"

"नहीं, यह मैंने कब कहा? चन्द्रावतीकी सेनाको केवल लौटा ही न दिया जाय, बल्कि चन्द्रावतीसे चौथ भी ली जाय और उसकी सेनाको अपने शत्रुओंके मुकाबलेमें भेजा जाय। पर यह तभी हो सकता है, जब पाटनकी पीठपर उसका राजा हो और त्रिभुवन साथ रहे।"

"यह कैसे बने? मीनलदेवीने तो कुमार जयदेवको भेजना अस्वीकार कर दिया।"

" मीनलदेवी तो कल प्रातःकाल ही सती होनेको तैयार हैं, और वे सती हो जायँगी, तो आप लोग कुमार जयदेवको तुरन्त राजाके रूपमे स्वीकार कर लेंगे। तब प्रतिज्ञामें कौन-सी बाधा उपस्थित हो सकती है ?"

खेंगारने कहा, " कोई नहीं।"

" परन्तु तुम्हें इसके परिणामकी भी कुछ खबर है ? फिर आपके राजाका और पाटनका हृदय कभी एक न हो सकेगा। जयदेवके हृदयमें अपनी माताकी मृत्यु सर्वदा खटकती रहेगी और वह कभी न भूल सकेगा कि उसकी माताको आपके कारण प्राण देने पड़े। फिर आप लोग एकतानता कहाँसे लाएँगे ? राज्यको कैसे बढ़ाएँगे ?"

सब लोगोंने एक दूसरेकी ओर देखा।

" मैं फिरसे कहना चाहता हूँ कि मुझे पाटनके प्रति प्रेम है, इसीसे मैं कहनेके लिए आया हूँ। जो उत्साह इस समय आप लोगोंमे प्रसारित हो गया है, यदि आप उसका उपयोग करना चाहते हों; जो संकल्प महाराज भीमदेवके, कर्णदेवके, तुम्हारे पिताजीके और मेरे थे, उन्हे मूर्तिमान् करना चाहते हो, और गुजरातमें पाटनका अधिकार भली भाँति स्थापित करना चाहते हों, तो एक ही मार्ग है। आप रानी और कुमार जयदेवको फिरसे स्वीकार कर ले। उनके लिए यह दण्ड क्या कम है ?"

" परन्तु चन्द्रावती—"

" आप लोग इतना स्वीकार करते हों, तो उसका मार्ग बताना मेरा काम है। चन्द्रावतीकी सेना ! चाहें तो रानीसे ही कहला दीजिए कि चन्द्रावतीकी सेनाको वे लौटा दे और पुत्र और माता अकेले पाटनमें आएँ तो ही दरवाज़े खोले। पाटनकी रानीके लिए क्या यह कुछ अपमानकी बात है ?"

खेंगारने पूछा, " परन्तु हमारी प्रतिज्ञा ?"

" मंडलेश्वरजी, राज-कार्योंमे मुद्दोंकी रक्षा की जाती है, केवल प्रतिज्ञाकी नहीं। पाटनके स्वातंत्र्यकी रक्षा हो, चन्द्रावती और रानी मूर्ख सिद्ध हो, आप लोगोंका संकट दूर हो, और आप लोगोका अधिकार बढ़ जाय; यह सब अधिक है या क्रोधमे की हुई प्रतिज्ञाके शब्द ?"

" मामाजी, मेरी प्रतिज्ञा, मेरी टेक ?"

मुंजालने अभिमानसे मस्तक उठाकर कहा, " भैया, तुम्हारे पिताने जो भूल

की, वह तुम न करना। टेक पहले है, परन्तु किसकी? तुम्हारी अपनी अकेले-की नहीं; तुम्हारे पाटनकी। विचार करो कि पाटनकी टेक किस बातसे रहगी? पलभरमे जीवन-भरकी धारणाएँ सिद्ध हो जाएँ उसमे, या एक पलका निश्चय सारी ज़िन्दगीके आशयोंका भंग कर दे उसमें? पहले पाटन है, फिर पाटनवासी।"

खेगारने कहा, "मेहताजी, आपकी बात लगती तो ठीक है। परन्तु इसे नगरके समस्त अग्रणी जनोंके आगे रखना चाहिए, नहीं तो हमपर व्यर्थ ही दोष आएगा।"

"इसके लिए मैं कब मना करता हूँ? पाटनवासियोंकी सुबुद्धिपर मुझे विश्वास है। राजनीतिमे क्रोध रखनेवालेका कभी भला हुआ है? पहले रानीको जीतिए, चन्द्रावतीको जीतिए। इससे गुजरात आपका हो जायगा और सारा जगत् आपके पैरोमें आकर झुक जायगा।"

उदाने कहा, "परन्तु मेहताजी, कहीं रानी आकर सबका कचूमर बनाने लग जाएँ, तो? किये अपराधोंको वे कभी नहीं भूलतीं।"

"यह मैं जानता हूँ। परन्तु जब त्रिभुवन दंडनायक होगा, वल्लभसेन सेनापति होगा, और यहाँ तुममेसे कोई मन्त्री बनेगा तो फिर और क्या करना रह जायगा? परन्तु त्रिभुवन, तुम क्यों नहीं बोलते? तुम्हारा क्या विचार है?"

"मैं क्या बतलाऊँ? मेरी प्रतिज्ञा दृढ़ है। फिर भी आपकी बात सच है, उसमे कोई बाधा नहीं दिखलाई देती। पाटनको जो कुछ करना हो, वह करे।"

"नहीं, इस तरह पिछले पाटपर क्यों बैठते हो?"

"जी नहीं, मैं कहाँ अपने लिए पाटनके लाभपर पानी फेर रहा हूँ? उदा सेठ, जाओ, नगरमें ढिंढोरा पिटवा दो। किसीको भी असन्तोषका अवसर नहीं मिलना चाहिए।"

वस्तुपालने कहा, "बेशक, नहीं मिलना चाहिए। चलिए, अब हम लोग नीचे चलकर बैठें। फिर सबसे बातचीत करके आपको बुला लेंगे।"

"ठीक, मुझे कोई उज्र नहीं है।" कहकर मुंजाल बैठ गया। खेगार, उदा और वस्तुपाल नीचे चले गये।

४३—बत्तीस-लक्षणीके होमनेका कारण

मामा और भानजेने एक दूसरेकी ओर देखा। त्रिभुवनके नेत्रोंमें कठोरता आने लगी। उसने दाँत पीसते हुए कहा, "मामाजी, आज मैंने एक वस्तु देखी।"

"क्या?"

"यह कि आपसे सब लोग किस कारण डरते हैं।"

स्नेहपूर्ण स्वरसे मुंजालने पूछा, "किस कारण?"

"आपकी दृष्टि त्रिकालज्ञकी दृष्टि है; और आपकी जिह्वापर बृहस्पति विराजमान् हैं।"

"भैया, परन्तु तुम तो तनिक भी रीझे नहीं दिखलाई पड़ते।"

"इससे क्या? पाटनके आगे मेरी क्या बिसात है? मामाजी, आपने पाटनको जिला लिया, और भानजेको मार डाला।"

मुंजालने चौंककर पूछा, "कैसे?"

"ज्यों ही मीनल काकी नगरमें आई कि मैं इस देहको छोड़ दूँगा। मेरा निश्चय आप जानते हैं।"

मुंजालने ज़रा फीके पड़कर कहा, "क्या कह रहे हो? ऐसा भी कहीं निश्चय होता है?"

"आप जो चाहे कहे। जिसे जो कहना हो, कहे। मैं यहाँसे सोमनाथ पाटन जाऊँगा और फिर जहाँ बुद्धि सुझायगी वहाँ। मैं अपने पिताका पुत्र हूँ। मुझे अपना वचन सबसे अधिक प्यारा है।"

"पर भैया, यह, तुम क्या कह रहे हो? ऐसे पागलोंके-से विचार भी कहीं किये जाते हैं? यह युक्ति, योजना केवल इसलिए है कि तुम्हारा और पाटनका गौरव बढ़े। तुम मुझसे साफ साफ क्यों नहीं कहते?" कहकर मुंजालने स्नेहसे उसके कंधेपर हाथ रख दिया। त्रिभुवन काँप उठा।

"साफ क्या कहूँ? आप तो केवल मन्त्री हैं। बहनके लिए, बहनोईके लिए, आपके हृदयमें कोई सहानुभूति, कोई समवेदना हो सकती है? उनकी भयंकर मृत्युका बदला लेनेको आपका हृदय क्यों तड़पने लगा? पर मैं ऐसा नहीं हूँ। इस रानीके कपटसे मेरी माता और पिता दोनोंके प्राण गये; इसलिए इस जन्ममें उसे कैसे क्षमा करूँ? आपकी बातें मैंने सुनीं। वे अब आप सब लोगोंको भी

सुनाना। लोगोंने ज्यो ही उन्हें स्वीकार किया, त्यों ही मैं जहाँ इच्छा होगी, वहाँ चला जाऊँगा। पाटनके लिए, अधिक-से अधिक मैं अपने प्राण और अपनी आशाओंकी बलि दे दूँगा। बतलाइए, फिर और क्या चाहिए ?" त्रिभुवनने आवेशसे कहा।

"त्रिभुवन, तुम इतने बुद्धिमान् होकर भी केवल क्रोधको ही आगे रखोगे तुम इस समय पट्टनियोंके नायक हो, क्या उनकी कीर्तिके लिए इस क्रोधका शमन नहीं कर सकते ?"

"जी नहीं, मैं पट्टनी नहीं हूँ, अपने दृढ़प्रतिज्ञ पिताका पुत्र हूँ। पाटन जिस दिन उसके पक्षको त्याग देगा, उस दिन उससे और मुझसे कोई सम्पर्क, कोई सम्बन्ध नहीं रह जायगा।"

"परन्तु त्रिभुवन, कुछ विचार तो करो। इस उम्रमें दंडनायक बनकर तुम क्या क्या कर सकोगे ?"

त्रिभुवनने अदबके साथ कहा, "ज्यादा बात करनेसे क्या फायदा ? आप सही और मैं गलत, बस ?"

"नहीं तुम्हारी सम्मति न होगी, तो मैं कुछ नहीं करूँगा।"

"पाटनकी सम्मति हो, तो मुझे क्या ? मैं अपने आपका मुख्तार हूँ, मेरे लिए अपने माता-पिता सबसे पहले हैं।"

"भैया त्रिभुवन, कुछ तो विचार करो। तुम यह सोचते हो कि हंसाके लिए मुझे प्रेम नहीं था ? उसकी मृत्युके लिए मुझे दुःख नहीं है ? त्रिभुवन, इन गई-बीती बातोंको याद करना व्यर्थ है। मैंने अपनी बहनको जीवन-भर बन्दी रहने दिया, सो किस लिए ?—केवल पाटनके लिए।"

प्रसन्न अब तक एक भी शब्द बोले बिना सब बातें सुन रही थी। उसने कहा, "नहीं मेहताजी, मेरी बुआके लिए।"

"बेटी, तुम क्या जानो ? यदि हंसा मंडलेश्वरके साथ रही होती, तो आज गुजरात इतना भी नहीं होता।"

"यह कैसे ?"

"तुममेसे तो किसीने हंसाको देखा नहीं; परन्तु मैंने उसका बाल्य-कालसे ही पालन पोषण किया था। एक समय उसे लाड़-प्यार भी किया था। हमारी भाई-बहनकी जोड़ी थी।" गलेमे आई हुई खरखराहटको दूर करते हुए मुंजालने

कहा, "वह लताकी भाँति मुझसे लिपट जाती, बातोंमें रसिक, पराधीनताकी मूर्ति-सी लगती थी, फिर भी मनुष्यके हृदयमे शौर्य और उत्साहकी अग्नि क्षण-मात्रमें उत्पन्न कर देती थी। उसके सुन्दर मुखको देखकर लोग अपने आपमे नहीं रहते थे। उसका नाम सुनकर दुःखको भूल जाते थे। जब वह छोटी थी तब पाटनके लोग उसके पैर पूजा करते थे। जब वह मंदिरसे लौटती, तो लोग उसके हाथसे प्रसाद लेने और उसकी रसीली जिह्वासे दो शब्द सुननेके लिए तरसते थे।"

मुंजालका उमड़ता हृदय उसके नेत्रोंमें दिखलाई पड़ने लगा और उनमेंसे आँसू टपकने लगे। त्रिभुवन और प्रसन्नके नेत्रोंसे भी आँसुओंकी धारा बह चली। उसने आगे कहा, "तुम्हे खबर है? उसकी ख्याति सुनकर देश-देशके महारथी आया करते थे। उसे देखकर, उसके स्पर्शसे पावन होकर, प्रोत्साहित होकर लौट जाते थे। हंसा स्त्री नहीं थी। सरस्वतीका अवतार थी। वह मंडलेश्वरके साथ रहती, तो मंडलेश्वरकी सत्ता बढ़ जाती, पाटनमे विरोध उठ खड़ा होता, और पाटनवासी परस्पर कट मरते।" कहकर मुंजालने आँखें पोछ लीं।

त्रिभुवनने कठोरतासे पूछा, "मामाजी, तब ऐसी बहनको मारते हुए भी आपको कुछ नहीं लगा?"

"भैया, युवक समझते हैं, कि बूढ़े गधे होते हैं। क्या तुम्हारे पास हृदय है, और मेरे नहीं? मैं भी उसके लिए दिन दिनभर रोया किया हूँ; परन्तु जीवनके आदेशके आगे और सब कुछ भूल जानेकी शिक्षा मैंने पाई थी। मै हंसासे अकसर मिला करता था। उसने मुझे क्षमा कर दिया था। वह समझती थी।"

प्रसन्नने कहा, "परन्तु यह आप जानते हैं कि बुआजीने उन्हे किस प्रकार भेजा था? अब उन्हे कैसे क्षमा किया जा सकता है?"

"अधिकारके मदमे रानी अन्धी हो गई थीं। बेटी, ज़रा विचारो तो, जहाँ पाटनकी आन फिरती हो, वहाँ मुंजाल मन्त्रीको कोई बन्दी कर सकता है? मैं गर्व नहीं करता; परन्तु यदि केवल नष्ट ही करना हो, तो एक क्षणमें, एक शब्दमें आज सबका सत्यानाश कर छोड़ूँ। सोमनाथसे रेवा-तट तक एक भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो मेरे वचनपर मरनेको तैयार न हो जाय। जब मुझे बन्दी किया, तब मैंने समझा कि रानीने पाटनको बरबाद करना—आरम्भ कर दिया है; परन्तु जब मैंने तुम्हारा पराक्रम सुना, तब मेरे निराशा-पूर्ण हृदयमे आशाका संचार

हो गया। तभी पाटनके लिए मैं यहाँ आया। त्रिभुवन, इसीलिए कहता हूँ कि जिसके लिए मैंने बहन, बहनोई और अपने आपको मिटा दिया, वह जब आज सरलतासे प्राप्त हो रहा है तब क्या तुम इस प्रकार पीछे हटोगे ?"

"मेरी प्रतिज्ञा—"

"तुम्हारी प्रतिज्ञा ठीक है, परन्तु अपने कुलकी प्रतिज्ञाकी भी तुम्हे खबर है ? पाटनके लिए सर्वस्व अर्पण करनेवाले तुम्हारे दादा क्षेमराजके आत्म-त्यागका तुम्हे ज्ञान है ? अधेड़ उम्रमे पाटनका श्रेष्ठ सिंहासन त्यागकर वे वानप्रस्थ हो गये, केवल इस पाटनके लिए। बड़े पुत्र होकर देश-प्रेमके कारण छोटे भाईको गद्दी देना, यह तो उन जैसे भीष्म पितामह ही कर सकते हैं। तुम्हारे और हमारे कुलके भाग्यमे तो पाटनका यज्ञ-कुंड भरते रहना ही लिखा है। तुम्हारे दादा गये, पिता गये, माता गई, और यह मामा भी जा रहा है, सब पाटनके लिए गये। तुम बत्तीस लक्षणोंसे युक्त हो; मेरे पुत्रके समान हो, दूर दूर रहते हुए भी तुम्हे मैने अपनी ऑखोंका तारा समझा है। तुम्हें खबर है कि तुम्हे महीनेमे एक बार देखनेके लिए मैं कितना तरसता था ?"

त्रिभुवन और प्रसन्न, दोनों चौंक पडे।

जरा हँसकर फिर उसने कहा, "तुम जानते थे कि तुम जो प्रतिमास मिला करते हो, इसे कौन देखता होगा! परंतु मुंजाल मंत्री ऐसा अन्धा नहीं था। प्रत्येक सुदी पंचमी या छठको तुम मिला करते थे और तुमको देखनेके लिए मैं चुपचाप खडा रहा था। वही मुंजाल मैं आज तुमसे कहता हूँ कि तुम अपने हठको छोड दो। कुल-धर्मके आगे वचनकी क्या बिसात है ?"

त्रिभुवनने निराशासे कहा, "मामाजी, अब अधिक मत कहो, नहीं तो मेरी प्रतिज्ञा भंग हो जायगी।"

प्रसन्नने कहा, "परन्तु मेहताजी, यह कैसे समझ लिया कि बुआजी अब सीधी राह चलेंगी। उनका स्वभाव तो कुत्तेकी पूँछ जैसा है।"

"नहीं प्रसन्न, यह भी भगवान्‌की दया है। मैं कल ही मिला था। रानीका भी पुनरुद्धार हो गया है। तुम्हे खबर है कि कल सन्ध्या समय आनन्दसूरि वल्लभ-सेनके पाससे भागकर कुछ सेनाके साथ रानीसे मिला था ?"

त्रिभुवनने कहा, "ऐं!"

"हॉ, और उसने पाटनपर घेरा डालनेके लिए कहकर पूछा कि तुम्हारी क्या

राय है ? रानीने बिल्कुल अस्वीकार कर दिया और कहा कि पाटन मेरी बात मान लेगा, तो ठीक है, नहीं तो मैं सती हो जाऊँगी । "

त्रिभुवनने कहा, " यह बुद्धि बहुत देरसे आई ? "

" हाँ, परन्तु न आई होती, तो इस समय पाटनकी सीमापर पाटनवासियोंका रक्त बहता । जो कुछ होता है, वह भलेके लिए ही होता है । "

" ठीक है, तो भले ही पाटन मेरा भी बलिदान ले ले । पाटनवासियोंको स्वीकार हो, तो मैं कुछ न बोलूँगा । बस ? मैं अपने—"

" अब अपने-बपने कुछ नहीं । पाटनके सच्चे राजा अब तुम्हीं हो । अब तुम्हें उसकी दुहाई सब ओर फेरनी है । "

" यह बात जुदी है । आप सब तो हैं । देश-प्रेमसे मैं अपनी हठ छोड़ता हूँ, पर क्या और भी कुछ करनेको बद्ध हूँ ? "

" वह पीछे देखूँगा । बेटा, न जाने कितने बत्तीस लक्षणी पुरुष और पद्मनियाँ होमी जाती हैं, तब कहीं बड़े राज्योंकी महत्ताकी रक्षा होती है । "

" अच्छी बात है । मैं होमे जानेके लिए तैयार हूँ । " कहकर त्रिभुवनने मस्तक झुका दिया ।

कुछ देरमे उदा बुलानेको आ पहुँचा । अतएव मुंजाल और त्रिभुवन नीचे उतर गये । थोड़े-बहुत मन्थनके बाद सब लोग निश्चय पर आ गये : पहले चन्द्रावती सेनाको तुरन्त ही विदा कर दिया जाय, और इसके पश्चात् कल सन्ध्या-समय रानी, कुमार और केवल यहाँके सामन्त ही पाटन आएँ : इससे पहले मंत्री मुंजाल आज जाएँ और रानीकी आज्ञासे, भिन्न भिन्न पदवियाँ देनेका आदेश लेकर कल लौट आएँ । बहुत-सा वाद-विवाद होकर यह निश्चय हुआ कि त्रिभुवनपाल दंडनायक और पाटनका दुर्गपाल, वल्लभसेन सेनापति और उदा तथा सेठ शान्तिचद्र मंत्री बनाये जायँ ।

सन्ध्या समय मुंजाल मेहता यह सब समाचार लेकर रानीके पास लौट गये ।

उदा मारवाड़ी,—अब उदा मेहता जोरसे दुपट्टेकी घड़ी करने लगा । केवल स्वार्थके परिणाम-स्वरूप उसे अकल्पित फल मिल गया था ।

४४—फिर पाटनमें

जब मुंजाल लौट आया, तब रानीका हृदय बहुत ही डावाँडोल हो रहा था। सारी ज़िन्दगी जिस गर्वका पोषण किया उसे गलेके नीचे उतारना सहज नहीं मालूम हुआ। और यद्यपि लौटी हुई निर्मलताका साम्राज्य स्थापित हो गया था, फिर भी इस तरह नीची नाक करके पाटन जाना उसे बड़ा कठिन मालूम हुआ। मुंजाल सन्ध्या समय पहुँचा और उसने तुरन्त रानीके पास जाकर पाटनका सन्देश कह सुनाया।

रानीने उसे अरुचिकर मुँहसे सुना, "और कुछ ?"

मुंजालने कहा, "और कुछ नहीं। मैं कल सवेरे उत्तर लेकर वापस जाऊँगा। आपको जाना हो, तो कल सन्ध्या समय दरवाज़े खुलेंगे; परन्तु उससे पहले यह सेना यहाँसे चली जानी चाहिए।"

प्रणाम करके मुंजालने रानीसे बिदा ली। उसका व्यवहार स्वस्थ, विनययुक्त पर बड़ा ठंडा था। मीनलदेवीको वह अखरा तो बहुत परन्तु किया क्या जाय ? पहलेका हृदय लौट आनेपर, वह फिर मंत्रीके प्रतापसे दबने लगी थी। यह दबना उसे सुखमय प्रतीत होता था, फिर भी इससे उसके अभिमानपर गहरा घाव लगता था। उसने विजयपालको बुलवाया। विजयपाल आतुरतासे आया और पाटनसे आये सन्देशको सुनकर प्रसन्न हो गया।

"विजयपालजी, चन्द्रावतीने मुझपर बड़ा अनुग्रह किया है। इसे मैं कभी न भूलूँगी। फिर आप सब कुछ जानते हैं, और इस समयकी सहायताके लिए मैं जो कुछ दूँ, वह कम है।"

"महारानीजी, आपपर भगवान् महावीरकी कृपा है। यह सब झगड़ा टल गया, यह बहुत अच्छा हुआ। नहीं तो इसका परिणाम मुझे अच्छा नहीं दिखलाई पड़ता था।"

रानीने कुछ हँसते हुए कहा, "आपके आनन्दसूरि इस प्रकार नहीं मानते।"

"यह बात सच है। परन्तु, अब उसका पक्ष निर्बल हुए बिना न रहेगा। मैंने आज ही सुना कि चन्द्रावतीका संघ उसे पद भ्रष्ट करना चाहता है। उसके लिए अब वहाँ स्थान नहीं रह गया है।"

"वह है बड़ा चतुर। ज़रा बुलाओ तो उसे। वह मान जाय, तो उसे मोंढेरा या कर्णावती भेज दूँ। वहाँ उसकी प्रतिष्ठा बनी रहेगी।"

" परन्तु महारानीजी, वह शायद ही माने। चाहे तो देख लीजिए। समरसेन, ज़रा यतिजीको बुलाओ। मुझे तो ऐसा लगता है कि उसका मस्तिष्क विकृत हो गया है। कुछ नायकोंको वह उत्तेजित कर रहा था कि चलो हम पाटनपर चढाई करें। "

रानी हँस पडी। उसने पाटनके प्रभावका स्वाद सचमुच चख लिया था।

कुछ देरमे आनन्दसूरि आ पहुँचा। उसका मुख तिरस्कारसे ऐंठ रहा था। वह रानीकी ओर इस प्रकार देखने लगा, जैसे सृष्टिका सम्राट् हो।

" यतिजी, मै तो पाटन जाती हूँ, और विजयपालजी आपकी सेनाको वापस ले जाते हैं। अब क्या करना चाहते हैं ? "

" मीनलदेवी, महावीरकी कृपासे, आपको अनन्त कालतकके लिए नाम अमर करनेका मौका मिला, और अन्तमे आप भी ऐसी सिद्ध हुईं, यह खेदकी बात है। "

" मैने आपको इस लिए नहीं बुलाया है। " यतिकी धुन देखकर रानीने हँसते हुए कहा; उसे ऐसे चतुर मनुष्यकी ऐसी बेढंगी एकाग्रता देखकर दया आई—" परन्तु, यदि आप शान्तिसे जीवन व्यतीत करना चाहते हो, तो मोंढेरामे मेरा उपाश्रय है, वहाँ प्रबन्ध कर दूँ, वहाँ आपको पूरा पूरा सम्मान मिलेगा। "

" मुझे सम्मान ! रानी, आनन्दसूरि सम्मानका भूखा नहीं है। "

" तो और क्या चाहिए है ? "

" केवल अर्हन्तोंकी वाणी मेरे लिए बस है। तुम्हारे क्षणभंगुर नाम और इकरामका मेरे नजरसे कोई मूल्य नहीं है। "

" परन्तु मैंने सुना है कि चन्द्रावतीका संघ आपको अलग कर रहा है। "

खिलखिलाकर हँसते हुए यति बोला, " हा—हा—हा ! बेचारे क्षुल्लक जन्तु हैं। रानी, अपने जीवनके उद्देशके आगे मुझे किसीकी परवा नहीं है। उसीके लिए मैं तुम सब लोगोकी खुशामद करनेको निकला था। अब मैंने देखा कि सभी निःसत्त्व हैं। भगवान् महावीरके मंत्रको मूर्तिमान् करनेका किसीमें साहस नहीं है। मैं ऐसे जन्तुओंके साथ कैसे मिल सकता हूँ ? "

" तो अब क्या करोगे ? "

" तुम्हारी इस छोटी-छोटी खिलवाड़ोसे क्या मेरी मान्यता चली गई ? फिरसे अवसर आनेतक मैं प्रतीक्षा करूँगा। अपने सिद्धान्तोंमे मुझे श्रद्धा है। और एक

दिन, धर्मकी विजय करके लौटते हुए चक्रवर्तीकी बगलमें आप मुझे देखेंगीं।"

"यतिजी, महारानीजी सच्ची सलाह दे रही हैं। पाटनकी रानी बनकर जो जो कार्य वे करे, उनमें योग देनेसे ही राज्यका गौरव बढ़ेगा।"

यतिने तुच्छतासे कहा, "विजयपाल, तुम तो बालक हो। तुम क्या समझो? जाओ, राज्यका गौरव बढ़ाओ और अपने भ्रमके अन्धकारमें चक्कर काटते रहो। अन्तमे मेरे ही सिद्धान्तोंकी विजय होगी। नहीं तो, विधर्मी यवन आगे बढ़ रहे हैं। भारतवर्षकी पतितपाविनी भूमि उनके पैरोंसे कुचली जा रही है। पानीपत-की, सिन्धु देशकी भूमि हाथसे निकल गई है; और अब तुम्हारी भी निकल जायगी। धर्मसे रहित साम्राज्यकी स्थापना करोगे, तो अन्तमें तुम्हारे मुंजालोंका परिश्रम मिट्टीमें मिल जायगा। तुम्हारे बाल-बच्चे गज़नीके बाज़ारोंमें बिकेंगे। तुम सब मुझे मूर्ख समझते हो; परन्तु एक दिन धूल फाँकते हुए मेरी बुद्धिमत्ताको स्वीकार करोगे। मुझे तुम्हारे सम्मान या राज्यकी परवा नहीं है। अन्धों और बुद्धि-हीनोंके साथ मेरा सम्बन्ध अब समाप्त हो गया।" यह कहकर वह इस प्रकार खड़ा हो गया, जैसे भविष्यवेत्ताकी दिव्य दृष्टिसे भविष्यत्‌का संकट देख रहा हो। रानी और विजयपाल काँप उठे। दूसरे ही क्षण, आनन्दसूरि वहाँसे रानीकी ओर एक तिरस्कार-पूर्ण दृष्टि डालकर चला गया।

न जाने कबतक रानी और विजयपाल घबराए-से एक दूसरेकी ओर देखते रहे। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह भविष्यवाणी इसी समय सत्य हो रही हो। कुछ देरमें दोनों स्वस्थ हो गये।

"विजयपालजी, यह बेचारा बिल्कुल बहक गया है। खैर, तुम्हें और कुछ कहना है? मैंने एक विचार किया है, तुम्हें कोई आपत्ति न हो, तो कहूँ।"

"क्या?"

"यदि पाटनकी सत्ता मेरे हाथमें आई, तो तुम्हें पाटनका सामन्त बनाऊँगी और पाटन बुलाऊँगी।"

"महारानीजी, आप मुझे क्षमा करें। पाटनको मैं भी अपने माथेका मुकुट समझता हूँ; परन्तु अपनी चन्द्रावतीके बाद। सामन्त बननेको तो राज़ी हूँ; परन्तु पाटनमें न आऊँगा।"

"अच्छा, देखा जायगा।" कहकर रानीने बातको छोड़ दिया।

विजयपाल वहाँसे गया और उसने सेनाको कूच करनेका आदेश दे दिया। सेनामें बड़ा असन्तोष फैला। कई लोगोंने रानीकी कृतघ्नतापर धिक्कार दिये।

विवश होकर जैनधर्मकी विजयके स्वप्न त्यागकर सेना वहाँसे प्रातःकाल ही रवाना हो गई। केवल विजयपाल रानीके साथ रह गया।

सन्ध्या-समय, विजयपालके दिये हुए हाथीपर बैठकर, रानी पाटनकी ओर जाने लगी। मुरारपाल, विश्वपाल, विजयपाल तथा विनयचन्द्र आदि घोड़ोंपर बैठे कोई पन्द्रह आदमी साथ थे। पाटनको देखकर व्याकुलतासे और आशाओंके निष्फल हो जानेसे रानीकी आँखोंमे आँसू आ गये। तुरन्त उसे मुंजाल याद आया। उसके सारे जीवनका, उसके प्रयत्नोंका और आत्म-त्यागोंका स्मरण हो आया। उसकी दृष्टिके आगे, हताश, स्त्रीको मारकर, बहनको तड़पाकर, बहनोईका वध कराके, केवल उसके और पाटनके अधिकारके लिए संन्यासी बन जानेवाला मंत्री आ खड़ा हुआ। उसकी इस समय क्या दशा होगी? उसके आगे अपने दुःखोंकी क्या गणना हो सकती है? रानीको हंसा याद आई, उसकी रम्य मूर्ति भी उसके नेत्रोंके आगे आ गई। अपने लिए, पाटनकी सत्ताके लिए, उसको दिये हुए दुःख तथा उसकी अकाल-मृत्यु भी याद आई। हौदेपर बैठे बैठे रानीके नेत्रोंसे आँसुओंकी धाराएँ बहने लगीं। उसने गई-बीती भूल जानेका प्रयत्न किया। उसे फिरसे गुजरातकी महारानी बननेका अवसर मिला था। सारा नगर यदि क्रोधित हो तो उसे प्रसन्न करनेके लिए अहोरात्रि प्रयत्न करने और मुंजाल जैसे मुत्सद्दीकी सलाहके बिना एक पग भी आगे न बढ़नेका उसने निश्चय कर लिया। उसे त्रिभुवनपाल याद आया। मुंजाल जैसी उसकी मुखाकृति भी उसे याद आगई। एक अजीब तरहसे हंसाके इस पुत्रकी ओर उसे प्रेम हो आया। ये सब अब उससे मिलेंगे, उसके हो जायँगे। नहीं, वह स्वयं सबकी हो जायगी। पाटनने उसे अपनी दासी बना लिया था। मुंजाल, त्रिभुवन आदि सब पाटनके देवता थे। सिर्फ अपनी पुजारिनीकी भाँति ही वह उसे स्वीकार करता था।

मोंढेरी दरवाज़ेपर मंडलेश्वर खेंगार, सेठ शान्तिचन्द्र, उदा और वस्तुपाल कुछ सैनिकोंको साथ लिये प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके व्यवहारमें माया दिखलाई पड़ रही थी, साथ ही कुछ कृपा-दृष्टि भी। रानीने बड़े प्रयत्नसे अपने क्रोधको दबाया। पतिके शोकको त्यागकर नगरसे बाहर गई हुई रानीको कौन सम्मान करता? उनके सम्मानमें उमंग नहीं थी। जब रानीने मुंजाल और त्रिभुवन दोमेंसे एकको भी वहाँ नहीं देखा, उसका हृदय खिन्न हो गया। होठपर होठ दबाकर उसने अपनेको शान्त बनाये रखा।

नगरमें श्मशानकी भाँति शून्यता दिखलाई पड़ रही थी। कोई भी व्यक्ति बाहर नहीं निकला था। कोई भी खिड़कीमें नहीं बैठा था। सन्ध्या हो गई थी, अँधेरा होने लगा था; अतएव रानीको ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह चोरीसे छुपकर नगरमें प्रवेश कर रही हो।

'क्या यह वही राजमहल है?' रानीको उसमें बड़ा परिवर्त्तन दिखलाई पड़ा। देखते देखते यह राजमहल उसका मिटकर त्रिभुवनपालका हो गया था। यदि कहीं त्रिभुवनपाल गद्दीपर बैठ गया होता तो? रानी काँप गई। हाथी अन्दर पहुँचा, रानी उतर पड़ी, यद्यपि वहाँपर कल्याण नायक वही था, पर ऐसा दिखलाई पड़ा जैसे वह तिरस्कार-भावसे देख रहा हो। सेठ शान्तिचन्द्रके हास्यमें भी पहलेका-सा भाव नहीं दिखलाई पड़ा। रानी तेजीसे ऊपर चली गई। लीलाधर वैद्य मिले। ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वे चुपचाप उलहना दे रहे हैं। पं० वाचस्पति, खड़ाऊँ पहनकर, भस्म लगाये पूजा करके आ रहे थे, उन्होंने नमस्कार किया। रानीको उनकी खड़ाऊँओंकी आवाज़में उनके मतकी विजय-ध्वनि मालूम हुई। राजवंशकी सभी स्त्रियाँ उससे मिलीं। उनकी चापलूसी देखकर रानीको तिरस्कार हो आया। रानी जल्दी ही अपने कमरेमें चली गई। कुछ देरमें सब लोग चले गये और रात हो गई।

"बाहर कोई है?" रानीने इस प्रकार पुकारा, जैसे कोई दासी भयसे पुकार रही हो।

"जी माताजी, हाज़िर हूँ।" कहकर सदाका सेवक समरसेन उपस्थित हो गया।

"समर, पता तो लगाओ, त्रिभुवनपाल कहाँ है, मुंजाल मेहता कहाँ है, प्रसन्न कहाँ है, ये सब दिखते क्यों नहीं?"

"जी, पता लगाकर अभी बताता हूँ!" कहकर समर चला गया।

इतनेमें कुमार जयदेव थका हुआ आया था, रानीने उसके सोनेकी व्यवस्था कर दी। नौकर-चाकर और दासियाँ चुपचाप आते, जाते और काम करते दिखते थे। अपने मौनसे जैसे वे रानीको दाग रहे हों। धीरे धीरे रानीके हृदयकी व्याकुलता, रुद्धता बढ़ने लगी। इस तरह कोई एक घड़ी बीत गई, परन्तु समर लौटकर नहीं आया।

रानीने कुछ भोजन किया और हारी-थकी सोनेका विचार करने लगी। बहुत रात

बीत गई थी, "समर अभीतक क्यों नहीं आया ? क्या वह भी बेवफा हो गया ?"

इसी समय समरका स्वर सुनाई पड़ा, " माताजी, क्षमा करें, मैं मुंजाल मेहताके यहाँ गया था। वे आनेके लिए इनकार करते हैं। उन्होंने आपसे कहा है—"

" क्या ?"

" कि मुंजालने अंतिम परमार्थ साध लिया, और अब वह कल सवेरे स्वार्थसाधनके लिए जायगा।"

रानीने घबराकर पूछा, " कहाँ ?"

" आबूजी जानेकी तैयारी कर रहे हैं।"

" परन्तु वे हैं कहाँ ?"

" यहाँ नहीं हैं, वे तो अपने नगरसेठके मुहल्लेमें हैं।"

रानीको धक्का सा लगा, "सचमुच !" न जाने कितने वर्षोंमें मुंजाल राजमहलका रहना छोड़कर अपने घर गया है ! " तूने कैसे जाना कि आबूजी जाते हैं ?"

बूढ़ेने माथा हिलाकर कहा, " मैंने उनके सेवकोंसे पूछा है। अब मेहताजी न मानेंगे।"

" नहीं मानेंगे ? मुंजालके बिना मैं क्या करूँगी ?" उछलते हृदयकी लहरको बाहर निकालती हुई रानी कह गई। वह भूल गई कि सामने सेवक खड़ा है। समर यह उद्गार सुनकर चकित हो गया। " समर, तू वफादार है, मेरे साथ चलेगा ?" रानीने एकदम निश्चय करके पूछा।

" कहाँ ?"

" जहाँ मैं चलूँ वहाँ ?"

" जी, सेवक तैयार है।"

रानी तुरन्त अन्दर गई, साड़ी बदली, शालसे सारे शरीरको ढक लिया और बाहर निकल पड़ी, " चल मेरे साथ।"

स्वामि-भक्त सेवक चुपचाप पीछे पीछे चलने लगा। रानी राजप्रसादको छोड़कर पिछली खिड़कीसे चुपचाप चल दी।

४५—विजयिनी प्रसन्नमुखी

अब ज़रा यह देखें कि उस दिन दोपहरको क्या हुआ। त्रिभुवनके सन्देशके अनुसार वल्लभसेन पाटन आ पहुँचा। त्रिभुवनने उसे सारी बातें कह सुनाईं। पर वे उसके गले नहीं उतरीं। तथापि, देवप्रसादके पुत्रकी वचन-रक्षा और हित-साधनके लिए वह तैयार था। उसने पाटनमें रहना स्वीकार कर लिया। वह देवप्रसादके महलमें जा ठहरा।

जबसे नगरके अगुओंने रानीको लौट आने देनेके लिए विचार प्रदर्शित किये थे, तबसे त्रिभुवनपालका चित्त हिंडोलेपर चढ़ा-सा मालूम होता था। प्रातःकाल सबसे मिलने और राज्यकी तरह तरहकी व्यवस्थामें वह व्यस्त रहा; अतएव प्रसन्न उसकी भेंट न कर सकी। परन्तु उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि त्रिभुवनपाल मन ही मन कोई तजवीज गढ़ रहा है। दोपहरको जब वह वल्लभके साथ बातोंमें लगा था, तब भी उसे कोई अवसर नहीं मिला। आखिर वह दोपहर बाद मिल सकी।

"त्रिभुवन, अब क्या करना है?"

"किसका? क्या?"

"अपना। कलसे हमारा मिलना भी कठिन हो जायगा।"

उत्तरमें त्रिभुवनपालने एक विचित्र प्रकारसे प्रसन्नकी ओर देखा, "अभी मीनल काकीको आने तो दो।"

"आनेमें अब कोई सन्देह है? त्रिभुवन, इस प्रकार बातको क्यों उड़ा रहे हो?"

"नहीं, नहीं। हम लोग फिर बातचीत करेंगे।" कहकर उसने इस प्रकार प्रसन्नके कन्धेपर हाथ रख दिया, जैसे स्नेह बिना जाने फूट पड़ा हो। प्रसन्नने उसका हाथ पकड़ लिया, कुछ दबाया, और छोड़ दिया। त्रिभुवनके नेत्रोंमें प्रेम-ज्योति प्रदीप्त हो उठी और क्षण-भरमें फिर बुझ गई।

बुआजी अभी आएँगी। उनसे मिलने नहीं जाना है?"

"मैं किस लिए मिलने जाऊँगा? मेरा कार्य समाप्त हो गया। अच्छा, फिर बात करेंगे।" त्रिभुवनने यह इस प्रकार कहा, जैसे बातको यहीं समाप्त कर देना चाहता हो।

"तुम कहाँ जा रहे हो?"

"अपने महलमें। वल्लभ भी वहीं गया है। अच्छा तो जाता हूँ।" कहकर

वह वहाँसे चल दिया। उसके जाते ही प्रसन्नको कुछ धक्का-सा लगा। उसकी बातोंमें, और जब कन्धेपर हाथ रक्खा तब भिन्न ही प्रकारके दिखे हुए उसके स्नेहमे, उसे कुछ अपरिचित मर्म दिखाई दिया। उसे कलकी बातका स्मरण हो आया। त्रिभुवनने मुंजालकी बातको भली भाँति स्वीकार नहीं किया था। क्या वह पाटनको छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जानेके विचारमे है? वह दौड़कर तुरन्त खिड़कीके समीप गई और नौकरको पुकारने लगी, " बलदेव! ओ बलदेव! देख तो, मंडलेश्वर महाराज चले गये? कह दे कि ज़रा ठहरें, मैं आती हूँ।" कहकर दौड़ती हुई वह नीचे उतरी, बाहरके चौकमें पहुँची और उसने पुकार कर पूछा, " बलदेव, महाराज कहाँ हैं?"

" महाराज उस ओर खड़े हैं।"

प्रसन्न शीघ्रतासे दौड़कर पहुँची। उसे देखकर त्रिभुवनपालने ज़रा क्रोधित होकर पूछा, " क्यों, क्या काम आ पड़ा?"

प्रसन्न उसके घोड़ेसे सटकर खड़ी हो गई। " त्रिभुवन, मुझे भी तुम्हारे घर चलना है।"

" इस समय यह नहीं हो सकता। मुझे अभी जाने दे, काम है।"

" मुझे ले चलो। ऐसा क्या काम है? त्रिभुवन, तुम मुझसे कुछ छिपा रहे हो।"

त्रिभुवनने घोड़ेपर बैठे बैठे प्रसन्नकी ओर देखा। उसके सौन्दर्य, विनीत भावसे देख रहे उसक नेत्रों तथा उसकी वफादारीको देखकर वह पिघल गया। "प्रसन्न, मुझे अपने वचनका पालन करना है। मीनलदेवीके पाटनमें आनेसे पूर्व ही मैं यहाँसे चला जाऊँगा।"

" कहाँ जाओगे?"

" जहाँ इच्छा होगी। देहस्थली जाऊँगा तो उपद्रव खड़ा हो जायगा। भले ही पाटनकी सत्ता बढ़ जाय, मैं अपनी प्रतिज्ञाका पालन करूँगा और स्वयं ही देश-निकाला ले लूँगा।"

" तब मुझे भी साथ ले चलो। मैं यहाँ क्या करूँगी?" कहते कहते प्रसन्नके नेत्रोंमें आँसू आ गये। प्रसन्नको पाटन छोड़ना पसन्द नहीं था, तथापि वह त्रिभुवनके अधीन हो गई।

त्रिभुवनने एक शब्द भी न कहा परन्तु लगाम थामें हुए प्रसन्नके हाथको दबा दिया, क्षण-भर विचार किया और फिर कहा, " प्रसन्न, सहन बहुत करना पड़ेगा भला!"

" चिन्ता नहीं । "

त्रिभुवनने हाथ बढ़ा दिया; अतएव प्रसन्न तुरन्त उछलकर उसके पीछे घोड़े-पर बैठ गई । त्रिभुवनने घोड़ेको दौड़ा दिया ।

इतने दिनोंके अनुभवसे राजमहलके लोग त्रिभुवन और प्रसन्नको अपना स्वामी समझने लगे थे । अतएव, वे जो कुछ करते उसे लोग चुपचाप स-सम्मान देखते रहते । परन्तु, जब दूर एक द्वारमेंसे वाचस्पतिने देखा कि दोनों इस समय, इस प्रकार उतावलीसे चले जा रहे हैं तब उसे कुछ विचित्र-सा लगा । वाचस्पति स्नान करके सन्ध्या करनेकी तैयारीमें थे; अतएव सूझा नहीं कि क्या करें; परन्तु उन्होंने एक सेवकको भेजकर उदाको बुलवा लिया और उससे सब कह दिया । उदा मेहता तैयार होकर मोंढेरी दरवाजेपर रानीकी अगवानीके लिए जानेको तैयार खड़े थे कि इतनेमें यह सुनकर उनकी आँखें खुलीकी खुली रह गईं ।

" पंडितजी, बात बिगड़ गई, त्रिभुवनपाल चले जायँगे । "

" ऐं ! परन्तु अब किया क्या जाय ? और उनको जाने भी कैसे दिया जा सकता है ? "

" महाराज, त्रिभुवनपाल मानेंगे नहीं, वे अपने पिताके पुत्र हैं । "

" अरे कुछ करो तो सही । मुंजाल मेहतासे तो जाकर कहो । "

" हाँ, हाँ, यह ठीक है । " कहकर उदा उठ खड़ा हुआ । वह सर्वदा एक अवसरसे दो लाभ उठानेका प्रयत्न किया करता था । अभीतक मुंजालसे उसका बहुत अल्प परिचय था और उसके प्रभावसे वह दबता भी था । उदाकी धारणा थी कि प्रत्येक अवसर उसके लाभके ही लिए है; अतएव इस अवसरपर भी उसे लाभ दिखलाई पड़ा ।

वह पहले खेंगारके पास गया । " महाराज, मुझे एक आवश्यक कार्य है, मैं अभी क्षण-भरमें दरवाजेपर आ पहुँचता हूँ । " कहकर वहाँसे रवाना हुआ और हाँफते हाँफते नगरसेठके मुहल्लेमें मुंजालसे समाचार कहनेको जा पहुँचा ।

उधर त्रिभुवन और प्रसन्न चुपचाप अपने महलमें जा पहुँचे ।

" प्रसन्न, बतलाओ, तुम अभी मेरे साथ चलोगी, या मैं फिर आकर तुम्हें ले जाऊँ ? शीघ्रता करो । देखो, अभी सन्ध्या हो जायगी । "

" नहीं, नहीं, चलूँगी तो साथ ही चलूँगी । परन्तु कहाँ जानेका विचार किया है ? "

"यहाँसे पहले प्रभास चलेंगे। तुझे मर्दका वेष ठीक लगेगा? उस वेषमें मार्गमें अधिक सुविधा रहेगी।"

"हाँ, हाँ।" ऐसे विकट प्रसंग प्रसन्नको बहुत रुचते थे। "तुम घोड़े तैयार कराओ, और मेरे लिए कपड़े कहाँ हैं यह बतलाओ, मैं पहनने लगूँ।"

त्रिभुवनने प्रसन्नको कपड़े ला दिये और वह दूसरा घोड़ा तैयार करनेका आदेश देने चला गया।

प्रसन्नका हृदय आनन्दित हो रहा था। यद्यपि उसमें कुछ चुनचुनाहट थी। वह सब विचार त्यागकर वस्त्र बदलने लगी। पुरुषके वस्त्र पहनते हुए उसे बड़ा आनन्द आया। अपने रमणीय, छटादार अंगोंको पाजामे और मिरजई जैसे अपरिचित वस्त्रोंसे ढकते हुए उसे न जाने क्या क्या विचार आये। अन्तमें उसने वस्त्रोंको पहन लिया और वह शीशेके सामने जा खड़ी हुई। पलभर अपना मुख देखकर वह पागल हो उठी। त्रिभुवनके साथ जानेकी आशाने उसका मन प्रफुल्लित कर दिया था। वह नीचे और नीचे झुक-झुककर शीशेमें देखती रही। मिरजईकी तनी पुरुषकी भाँति बाँधनेका प्रयत्न करने लगी। उसने अपने बालोंको ऊपर किया और साफा बाँधनेका विचार किया, फिर अपने आपको सम्बोधित करते हुए वह बोल उठी, "वाहजी मेरे प्रसन्नपाल!" उमंगसे उसका हृदय उछल पड़ा। नीचे झुककर उसने सामने दिखते हुए 'प्रसन्नपाल' के मुखसे मुख लगा दिया, और चुम्बन ले लिया!

पीछेसे किसीने द्वार खोला। प्रसन्नने विचार किया कि त्रिभुवन लौटकर आया होगा। "क्यों, सब ठीक कर आये?" परन्तु इन शब्दोंका भली भाँति उच्चारण करनेसे पहले शीशेमें किसी औरका ही मुख उसे दिखलाई पड़ा। वह चौंक कर घूम पड़ी। दरवाजेपर मुंजाल मेहता उलझनमें पड़े हुए खड़े थे। उदाने अपना काम साध लिया था। प्रसन्न उन्हें देखकर लजा गई। उसके मुखपर लज्जाकी रेखाएँ खिंच गई और वह नीचे देखने लगी। उसे सूझ ही न पड़ा कि वह साड़ी पहन ले या क्या करे। घबड़ाती, लजाती, धरती मातासे रास्ता माँगती हुई वह खड़ीकी खड़ी रह गई।

मुंजालने उसे प्रकृतिस्थ होनेका अवसर देकर पूछा, "प्रसन्न, त्रिभुवन कहाँ है? पाटन-छोड़नेकी तैयारी हो रही है क्या?"

कंठ सूख जानेसे भर्राई हुई आवाज़में प्रसन्नने कहा, "हाँ।"

बड़े दयाजनक स्वरमें मुंजालने कहा, "प्रसन्न, क्या तुम भी पगली हो गई हो? त्रिभुवन प्रतिज्ञाकी धुनमें मूर्खता कर रहा है और तुम उसका साथ दे रही हो? वह कहाँ है?"

"घोड़े लाने गये हैं।"

धीमे स्वरमें शीघ्रतासे मुंजालने कहा, "प्रसन्न, अभी समय है। वह जाकर क्या करेगा? इस प्रकार अपना हक छोड़कर परदेशमें रहेगा? पाटनमें सत्ता है, यश है, विजय है,—इन सबको त्यागकर एक जिदके लिए तुम अपने जीवनको पानीके मूल्य बेच दोगे?"

बड़ी मुश्किलसे लज्जा छोड़कर प्रसन्नने कहा, "मेहताजी, मैं क्या करूँ? मैं तो जो वे कहे वह करनेको तैयार हूँ।"

"तुम क्या करो? प्रसन्न, तुम्हीं कुछ कर सकती हो। तुम्हारे ही मुखसे वह मानेगा। कुछ आजमायश तो कर देखो। मुझे देखकर तो भड़क उठेगा।"

"मेरी बात शायद ही माने।"

"प्रसन्न, मैं तुम्हें पहचानता हूँ। तुम एक बार प्रयत्न तो करो। इस अमरावतीका दंडनायक बनने, सोलंकियोंकी गद्दीका संरक्षक बनकर रहने, ताम्रचूडके विजयध्वजको अवन्तीमें फहराने, आदि कार्योंके लिए तो देवता भी स्वर्ग छोड़कर यहाँ आ सकते हैं। प्रसन्न, तुम दोनों अमर होनेके लिए पैदा हुए हो। पर इस प्रकार तो यह सब खो बैठोगे। तुम्हारे जैसी पद्मिनी क्या नहीं कर सकती?"

मंत्रीके शब्दोंमें जादू था। उसकी धीमी, परन्तु जोशीली आवाज़, चमकती आँखें, और पानीदार भाषाने प्रसन्नके हृदयके विचारोंको सजीव कर दिया। वह पहलेसे ही जानेके विरुद्ध थी। "मेहताजी, आप यहीं रहे। मुझसे जो बन सकेगा करूँगी। परन्तु न मानें, तो?"

"प्रसन्न, इस समय चाहे ब्रह्माण्ड ही टूट पड़े, पर त्रिभुवन न जाने पाए। मैं अपना और अपने बहनोईके वंशका नाश अपने रहते न होने दूँगा। तुम्हारी बात न मानेगा, तो मैं आऊँगा और जबरदस्ती करूँगा। क्या तुम नहीं जानतीं कि मेरा वचन टालना कितना भारी होता है? मैं इस पासके कमरेमें ही खड़ा हूँ। मैं यहाँ रहूँगा, तो तुम लजाओगी।" प्रसन्न नीचे देखने लगी। "समझाओ, समझाओ। तुम्हारी जिह्वापर सरस्वती उतर आएगी। तुम जैसी भनेज बहूका पाटन छोड़ना कैसे सहन हो सकता है?" मुंजाल हँस पड़ा। उसके हास्यमें

कुछ खेद था, पर दुर्जेय माधुर्य भी था।. प्रसन्न वश हो गई। मुंजाल बगलके कमरेमें चला गया।

प्रसन्न विचारमें पड़ गई कि अब क्या करना चाहिए? मुंजालके शब्दोंसे फिर पुराना विचार हो आया, "पाटनको छोड़कर किस लिए निर्वासित हुआ जाए?"

कुछ देरमें त्रिभुवन आ गया। "क्यों, तैयार हो गई? घोड़ा आ गया है?"

अब क्या कहना चाहिए? घबराते हुए प्रसन्नने कहा, "त्रिभुवन, तुम मेरे परमेश्वर हो, मेरी एक बात मानोगे?"

"क्या बात है? इस समय क्या बात करनेका अवसर है? रानी अभी नगरमें वेश करेगी।"

"करने दो त्रिभुवन, तुम मेरी बात सुनो। हम यहाँसे भागकर न जाएँ, काम नहीं चल सकता? प्यारे, यहाँ हमें किसी बातकी कमी नहीं है, फिर हम बाहर क्यों जाएँ?" प्रसन्नको मुंजालकी अटलतापर विश्वास था; अतएव उसने निश्चित रूपसे विचार कर लिया कि वे त्रिभुवनको अवश्य ही यहाँ रख लेंगे। परन्तु, इसके पूर्व वह यथासंभव प्रयत्न करनेको तत्पर हो गई।

एकदम नेत्र विस्फारित करके, पैर पटककर उग्र रूप धारण करके त्रिभुवन बोला, "प्रसन्न, इसीलिए तुम मेरे साथ आई हो? मेरी प्रतिज्ञा भंग कराना चाहती? मैं निश्चल हूँ; तुम चलोगी या नहीं? न चलना हो, तो तुम यहीं रहो।"

"मैं भी यहीं रहूँगी, और तुम्हें भी रखूँगी। हमे सारा जीवन व्यतीत करना है। मैं दंडनायककी पत्नी बनना चाहती हूँ। तुम यहीं रहो त्रिभुवन!" कहकर प्रसन्नने त्रिभुवनका हाथ पकड़ लिया।

"प्रसन्न, तुम्हें यह क्या हो गया? तुम चल रही हो, या नहीं?" कहकर वह प्रसन्नको द्वारकी ओर घसीटने लगा। उसका रक्त खौल उठा था। उसे केवल यही ध्यान था कि प्रत्येक क्षण मीनलदेवी दरवाजेके समीप आ रही है। प्रसन्नने दोनों हाथोंसे त्रिभुवनका हाथ पकड़ लिया।

"त्रिभुवन, मुझे कहाँ ले जा रहे हो? रहो मेरे मालिक, तुम ऐसे निष्ठुर, ऐसे क्रूर-हृदय क्यों बने जा रहे हो? अपने पूर्वजोंकी प्रतिष्ठाके लिए, अपने पाटनके लिए, मेरे लिए, कुछ तो विचार करो। तुम्हारे बिना हम सब मर जाएँगे, झुरझुर कर, तड़प तड़प कर। तुम हमें कहाँ छोड़े जा रहे हो?"

भयंकर रूपसे हँसकर त्रिभुवनने कहा, "अर्थात्—तुम नहीं चलोगी? कमीनी! दुष्टा! छोड़ मेरा हाथ।—"

"नहीं, नहीं, त्रिभुवन, ज़रा मेरी बात सुनो।"

" छोड़ दे " कहकर क्रोधावेशमें त्रिभुवनने अपना हाथ छुड़ानेका प्रयत्न किया। प्रसन्न और ज़ोरसे चिपट गई। त्रिभुवनने होठ दबाकर भगीरथ प्रयत्न किया और उसे झिंझोड़ डाला। प्रसन्न छूट पड़ी, धड़ामसे भूमिपर गिर पड़ी, और " आह त्रिभुवन ! " कहकर अचेत हो गई।

त्रिभुवन इधर उधर जरा भी न देखकर दो-चार पैर आगे बढ़ गया। पीछेसे एक परिचित, अधिकारपूर्ण स्वर सुनाई पड़ा, " त्रिभुवन ! " त्रिभुवन एकदम लौट पड़ा और मुंजालको देखकर चकित हो गया। मुंजालके नेत्रोंसे असह्य तेजकी किरणें निकल रही थीं, " जिस लड़कीने तुम्हें हज़ार बार बचाया उसे यह अच्छा पुरस्कार दिया ! " कहकर उसने गौरवके साथ एक हाथ प्रसन्नकी ओर किया। गिरते गिरते एक चौकीसे प्रसन्नका सिर टकरा गया था, वह अचेत हो गई थी, और उसके माथेसे रक्तकी धारा बह रही थी।

त्रिभुवनने प्रसन्नकी ओर देखा, उसे अचेत और लोहू-लुहान देखा और अपने जिस हाथसे उसने उसे झिंझोड़ा था, उस हाथकी ओर देखा। निश्चयके कारण जोरसे दबे हुए उसके होठ ढीले पड़ गये, और उसके मुखपर आई हुई भयंकर कठोरतामें कोमलता आ गई। वह क्षण-भर अनिश्चित-सा रहा। उसे सूझा नहीं कि वह इधर आए, या उधर जाए।

मुंजाल चुपचाप केवल नेत्रोंसे ही त्रिभुवनको उलहना देता खड़ा रहा।

त्रिभुवन तुरन्त लौटा, उसने द्वारकी ओर इस प्रकार दृष्टि डाली, जैसे उसे नमस्कार कर रहा हो और प्रसन्नकी ओर दौड़ा, " आह मेरी प्रसन्न ! " त्रिभुवनने उसका लहू-लुहान मस्तक अपने हाथोंमें ले लिया।

" तुम इसे देखो, मैं किसीको लीलाधर वैद्यको बुलानेके लिए भेजता हूँ। माथेसे रक्त बहता हुआ रोको, मिरजई निकाल डालो, नहीं तो इसका दम घुट जायगा। " कहकर मुंजाल मेहता बाहर चले गये।

बड़ी देरमें, वैद्यके अनेक उपचारोंसे, प्रसन्नका बहता हुआ रक्त रुका। उसे चेत आया, " त्रिभुवन ! "

त्रिभुवन दौड़ पड़ा।

" पाटनमें— "

" हाँ, हाँ पाटनमें ही हैं। तुम निश्चिन्त होकर सो रहो। जहाँ तुम हो, वहीं मैं हूँ। "

४६—न जाओ छोड़ मुझको

दो चार घड़ियोंके बाद जब मुंजाल वहाँसे निकला, तब उसका मन शान्त हो गया था। पाटनके राज-तंत्रको ज्यों त्यों करके स्थिर रखनेका उसने जितना बन सका उतना प्रयत्न किया था। वह रानीको लौटा लाया था, उसने जनताको समझाया था; उनका दंडनायक जा रहा था, उसे भी रोक लिया था, अपना कौटुम्बिक श्रेय-साधन भी कर लिया था। अब उसे अपना जीवित रहना सार्थक प्रतीत हुआ और जगत्के प्रपंचोंको त्यागकर चले जानेमें उसे कोई बाधा नहीं दिखी। वह धीरे धीरे पैदल चलकर अपने घर आया। ऐसा मालूम हो रहा था, जैसे वह पाटनकी गलियोंको अन्तिम बार देख लेनेका लाहा ले रहा है।

उसने अपने जीवनके विगत वर्षोंपर दृष्टिपात किया। उनमें निराशा और दुःखके अनेक प्रसंग थे, तथापि उसे अपना समग्र जीवन बहुत अंशोंमे सफल हुआ दिखलाई पड़ा। उसीके कारण पाटन आज टिक रहा है। भविष्यकी प्रजा जब पूर्वजोंको याद करेगी, तब सबसे पहले उसीके नामका स्मरण करेगी। सरल तथा सादे जीवनकी पुरानी भावनाओंसे चिपटे हुए लोग अपने अपने घरोंमें सो गये थे। सारे नगरमें शून्यता प्रतीत हो रही थी। उसने मन ही मन इस प्रकार आशीर्वाद दिये, जैसे नगरके सभी लोग उसके बालक हों, और वह सारे नगरका पिता हो।

जब वह अपने घर आया, तब एक सेवक बाहर चबूतरेपर बैठा था, वह बोला, " महाराज, कोई एक स्त्री आकर बैठी है। "

मुंजाल जरा हँसा। अक्सर नगरके असहाय, दुःखसे पीड़ित लोग सलाह लेने, अपने झगड़े निबटाने या सहायता पानेकी आशासे उसके पास-आया करते थे। परन्तु अब यह किस लिए? उसके पास सत्ता नहीं थी; धन था, सो उसमेंसे वह बहुत कुछ धर्म-कार्योंमें दान कर चुका था।

" कहाँ है? "

" ऊपर है, उसके साथ एक नौकर है। "

" अच्छा। " कहकर मुंजाल ऊपर गया। जीनेके समीप एक मनुष्य सिकुड़कर बैठा था, " कौन है भाई? "

" महाराज, मैं हूँ। "

" कौन समरसेन! तुम यहाँ कैसे? किसे लाये हो? "

कुछ झुककर समरने धीरे-से उत्तर दिया, " महारानीजी आई हैं। "

" ऐं ! " मुंजाल इस प्रकार पीछे हट गया, जैसे सर्पने डस लिया हो।

समरने माथा हिलाकर कहा, " हाँ। " मुंजाल शीघ्रतासे अन्दर जाकर बोला, " मीनलदेवी, यह क्या! मेरे यहाँ ? "

" क्यों, न आऊँ ? सेठानी थीं, तब एक बार आई थी, कितने वर्ष हुए ? जुगके जुग बीत गये। "

" परन्तु, कोई जानेगा, तो क्या कहेगा ? "

" जिसे कहना हो, कहे। किसीके मुँहको कभी किसीने बन्द किया है ? मनुष्यके जीवनमे एक क्षण ऐसा भी आता है कि जब उसे किसीके बापकी परवा नहीं रहती। "

" वह साधारण लोगोंके लिए ठीक है। ज्यों ज्यों हम ऊँची पंक्तिपर पहुँचते हैं त्यों त्यों हमें परवा ज्यादा रखनी पड़ती है। परन्तु, इस समय यहाँ कैसे ?"

" तुम इतने वर्षों बाद राजमहल छोड़कर यहाँ कैसे आये ? "

मुंजालकी भवें तन गईं। वह सामने गद्दीपर बैठ गया और कठोरतासे रानीकी ओर देखने लगा। " मीनलदेवी, अगर हम पुराने पोथोंको खोलने लगें, तो उससे क्या लाभ होगा ? अब मुझसे और राज्यके झगड़ोंसे क्या सम्बन्ध ? सब समाप्त हो गया। अब मैं आबूजी जाऊँगा। संसारकी विटबंनामें बहुत समय तक लिपटा रहा। " मुंजालने यथाशक्य सभ्यताके साथ कहा।

रानीको उसके कठोर शब्दोंकी परवा न थी। उसे ऐसा लगता था, जैसे उसके समस्त शरीरमें होली सुलग उठी है और वह तभी शान्त हो सकती है जब उसे शब्दोंके रास्ते निकल जाने दिया जाय। " मुंजाल, यह सब तुम किसे समझा रहे हो ? क्या मैं तुमको पहचानती नहीं हूँ ? संसारकी विडंबनासे छूटना चाहते हो ? अभी तो तुममें पाँच संसारोंको जीतनेका बल है। अभी तुममें समस्त भारतवर्षके राजतंत्रको संचलित करनेकी शक्ति है। यह क्या मैं नहीं जानती ? "

" रानी, मुझमे इतने दिनोंमें बड़े परिवर्त्तन हो गये हैं। जब आपने मुझे बन्दी किया,. तब मेरे क्रोधका पार नहीं था। जब आपने मुझे बुलाया, तब मैं निराश था; परन्तु पाटनके साहसकी बात सुनकर मेरी निराशा दूर हो गई; किन्तु उत्साह नहीं आया। देशके लिए और अपनी जीवन-भर संग्रह की हुई आशाओंके लिए मैंने मेल कराया; तथापि हृदय तटस्थ ही रहा। इस समय यद्यपि मैं चालीस वर्षका भी नहीं हूँ फिर भी मैंने बूढे दादा बनकर तुम्हारे दंडनायकको जानेसे रोका; फिर भी जीवनमे रस नहीं आया। "

" क्यों, त्रिभुवन कहाँ जा रहा था ? "

" अपनी टेक रखनेके लिए पाटन छोड़कर देश-निकाला ले रहा था । "

" फिर, रुक गया,—तुमने रोका ? "

" नहीं, आपकी भतीजीने । बेचारीका माथा फूट गया है। अब ठीक है। लीलाधर वैद्य वहीं हैं। —मैं क्या कह रहा था ? —हाँ, इतना सब कुछ किया, फिर भी जी नहीं मानता,—विरक्त हो गया है। अब पाटन ठिकाने आ गया, अतएव मैं निश्चिन्त हूँ । "

" यह तो तुमने अपना इतिहास कहा, अब मेरा भी सुनना है ? विखराटमे जब दुःख पड़ा तब तक मैं पापिनी थी, सत्ताके शौकमे मै अधिकाधिक पतित होती जा रही थी । एक रातको मुझे स्वप्न आया, और मैं बच गई,—मेरा र हुआ । "

मुंजालको कुछ खयाल आया कि मीनलदेवी बातको कहाँसे कहाँ ले जा रही है; परन्तु करता क्या ? वह चुपचाप बैठा रहा।

" किसने पुनरुद्धार किया, खबर है ? जब मैं अपने चन्द्रपुरमे प्रसन्न जितनी थी, तब जिसने मेरे हृदयको हर लिया था, उसने । " रानीके नेत्रोंमे भयंकर बिजली चमक उठी । मुंजाल नीचे देखने लगा। " नीचे देखनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम महान् पुरुष हो, विरागी हो गये हो । मैं तो क्षुद्र हूँ । वासनाओंकी दासी हूँ । हम स्त्रियोंको वैराग्य शीघ्र प्राप्त नहीं होता । उस रात्रिके पश्चात् मैं जैसी थी वैसीकी वैसी हो गई हूँ । "

" मीनलदेवी, अब इस उम्रमें, ऐसे समय ऐसी बातें करना ठीक नहीं है। जो था, हो गया, उसे जाने दो । "

" मैं भी यही कहती हूँ । पिछले दस वर्षोंमे मैं जैसी हो गई थी,—उन वर्षोंको जाने दो । जैसे थे, वैसे ही रहें । "

" मुंजालने माथा हिलाया ।

" तुम भले ही कहो । उस दिन विखराटमे जब तुमने मुझे ढकेल दिया, तब मुझे विश्वास हुआ कि तुम जैसे थे वैसे ही हो । अभिमानके कारण अलग होनेका प्रयत्न अवश्य करते हो परन्तु तुम्हारा हृदय तो जैसेका तैसा है । "

" मीनलदेवी, इस तरहकी बातें मुझे पसन्द नहीं हैं । "

" न कहूँ ? एक वचन दो । "

" क्या ? "

"पाटन छोड़नेका विचार त्याग दो।"

"यह कैसे हो सकता है? मीनलदेवी, मैं जैसा था वैसा नहीं रहा हूँ। मैं तुम्हारे किये हुए अपमानको भूलनेकी चेष्टा करता हूँ; परन्तु उसने बड़ा गहरा घाव कर दिया है। मेरी बहन, अपनी हंसाकी मृत्युकी चोट भी मुझे कुछ कम नहीं लगी है। मुझमें अब पहलेकी शक्ति नहीं रही है। यहाँ रहकर भी मैं क्या करूँगा?"

"क्या करोगे? मीनलदेवीके राज्यमें तुम क्या करोगे? मालिक बनकर रहोगे!"

"नहीं, नहीं, अब उस प्रकार नहीं रहा जा सकता। सारे जगत्के देखते बन्दी हुआ—अब मुझसे यह कैसे माना जाय? मैं उलहना नहीं देता हूँ, ताना नहीं मारता, परन्तु वह प्रसंग मुझसे भूला नहीं जाता।"

"मैं उसे ही भुलाने आई हूँ। उसके लिए प्रायश्चित्त करने आई हूँ।"

कुछ हँसते हुए मुंजालने पूछा, "किस प्रकार करोगी?"

"किस प्रकार करूँगी? तुम कहो तो तुम्हारे पैरों पड़कर। मुंजाल, न जाने क्यों, उस दिनसे मुझे अपने विवाहका प्रसंग याद आता है। उस दिन रातको हमने जो निश्चय किया था, याद है?"

"हाँ, और उस निश्चयको तुम इस समय तोड़नेका प्रयत्न कर रही हो। हमने भाई-बहनके-से निर्मल स्नेहका व्यवहार करनेकी शपथ ली थी। किसी भी प्रकारके स्खलनसे गुजरातके गौरवको दूषित न करेंगे, राज्य-कार्यके अतिरिक्त हम और किसी समय न मिलेंगे, विषयके कर्कश वार्त्तालापको छोड़ और कोई वार्त्तालाप न करेंगे, ऐसी ऐसी प्रतिज्ञाएँ ली थीं। चौदह-पन्द्रह वर्षोंके पश्चात् आज तुमने प्रतिज्ञा तोड़ी और राज-काजके विना मिलने आई। तुम देवी हो, पतितपाविनी हो, यह तुम्हें शोभा देता है?"

"मुंजाल, तुम अपनी प्रतिज्ञाका भी पालन कहाँ कर रहे हो? मुझे छोड़कर जो इस प्रकार भाग जाना चाहता हो, वह कैसा मित्र? तुमने अपने वचनको छोड़ा तो मैंने भी छोड़ दिया। मैं रानी नहीं बनना चाहती। मैं पाटनमें रहूँगी तो तुम्हारे साथ रहूँगी; नहीं तो जहाँ तुम जाओगे वहाँ।"

मुंजालने दुःखित स्वरमें कहा, "मीनलदेवी, तुम मुझे नाहक ही उलझनमें डाल रही हो।"

"नहीं हकसे।" मीनलदेवीने कहा और वह ज़रा हँसी, "तुम मुझे पाटन ले आए—एक बार नहीं, अब तो दो बार। अब मैं तुम्हें पाटनसे बाहर

कैसे जाने दे सकती हूँ ?" कहकर मीनल एकदम उठी और मुंजालके समीप आगई।

मुंजाल ज़रा पीछे हट गया, "नहीं, नहीं।"

"मुंजाल, ये निकम्मी बातें किस मतलबकी! मैं लडूँगी भी तो तुम्हारे साथ, अतएव कहीं तुम्हारे बिना क्षण-भर भी चल सकता है? और तुम सब कुछ कहो; पर मैं नहीं मानूँगी। तुम मीनलको कैसे भूल सकते हो ?" कहकर रानीने मुंजालका हाथ पकड़ लिया। विचारोंमे, उलझनमे मुंजालने कपालपर हाथ रख लिया।

"मुंजाल, विचार न करो। बिना माने निस्तार नहीं है। सोच लो कि मैं चन्द्रपुरमें हूँ, छोटी हूँ; सोच लो कि उस समय जैसी थी, वैसी ही तुम्हारी संगतिके लिए पागल हूँ, तुमसे विनय कर रही हूँ, मान जाओ। हम अलग कैसे रह सकते हैं? यहाँ तुम्हारे बिना ऐसा कौन है जो मेरे विचारोंका साथी हो? पाटनको जगत्‌की राजधानी बनानेके लिए मेरी सहायता करनेका किसमे सामर्थ्य है? मुंजाल, तुम अपनी विशाल, निष्कलंक बुद्धिके तेजमें मुझे पहलेकी भाँति स्नान करने दो। बस, मुझे इतना ही चाहिए।"

"रानी—"

"नहीं, मीनल—"

"अच्छा, मीनलदेवी, मैं सोचूँगा। हो सकेगा तो मान लूँगा। अब कृपा करके जाओ, बहुत हो गया।"

नहीं, वचन दो और इसी समय मेरे साथ चलो, राजमहल सूना है। जब तक तुम न चलोगे, मैं जानेकी नहीं।"

मुंजालने रानीकी ओर देखा। उसके प्रेमसे पागल हुए मुखपर अद्भुत छाया पड़ रही थी। उसके हाथ, जो मुंजालके हाथको थामे हुए थे, थरथर काँप रहे थे।

"मीनलदेवी, अच्छी बात है। मैं राजी हूँ।"

रानीने आतुरतासे पूछा, "वचन दे रहे हो ?"

"हाँ, वचन दे रहा हूँ।"

"ओह मेरे मुंजाल!" कहकर रानी मुंजालके गलेसे लिपट गई। डूबता हुआ मनुष्य जैसे आशा छोड़कर प्रवाहकी शरण लेता है, उसी प्रकार मुंजाल शरण हो गया।

कुछ क्षण इसी प्रकार बीत गये।

"मीनलदेवी, यह नहीं चल सकता। मैं यहाँ रहूँगा, तो उस दिनवाली प्रतिज्ञाका पालन करना होगा। जिस निर्मल जीवनने लोगोंके मुखोंको बन्द कर दिया था, उनके शंकाशील हृदयमें श्रद्धा ला दी थी, उस जीवनको फिरसे स्वीकार करना होगा।"

"हाँ, हाँ, मुझे स्वीकार है। बड़प्पनका जितना भी दंड भोगना होगा, भोगूँगी, परन्तु तुम मेरी आँखोंके आगे रहो।"

४७—महाराज जयदेवकी आन

उदा मेहता सवेरे मन ही मन मुस्कराते हुए उठे। एक प्रकारसे उनका निर्मल स्वार्थ सिद्ध हो गया था। नगरके निवासी विद्रोह खड़ा करें, त्रिभुवनपाल लड़ाई ठाने और युद्धक्षेत्र तक बात जा पहुँचे, इसकी अपेक्षा राज्य ज्योंका त्यों रहे और वह मंत्री बन जाय, यह उसे बहुत अच्छा मालूम हुआ। उसने सोचा कि अब तो उसके पौ-बारह हैं। मुंजाल मेहता आबूजी जानेवाले थे, और अन्य कोई उसके आगे किसी गिनतीमें था ही नहीं।

इतनेमें डूँगरनायक आ पहुँचे। जागीरदारीका नया रुतबा मिलनेकी आशासे उनमे कुछ भलमंसीका ढँग आने लगा था।

"कहो मेहताजी, यह नई बात भी सुनी?"

"क्या भाई?"

"प्रसन्नमुखी मृत्यु-शय्यापर पड़ी हैं और मुंजाल मेहताने आबू जानेका विचार त्याग दिया है।"

इन दोनों बुरे समाचारोंको सुनकर उदाने कुछ उदास होते हुए कहा, "अरे यह क्या कह रहे हो? मुंजाल मेहता पाटनमें रहें, तो फिर उदा मेहताको कौन पूछेगा? पर यह बात झूठ है। मैंने स्वयं मुंजाल मेहताके मुखसे आबू जानेकी बात सुनी है।"

"अच्छी बात है, जब राजमहलमें जाओ तब देख लेना।" कहकर डूँगरने विदा ले ली। उदाका मन छटपटाने लगा। 'मुंजाल कैसे रह गये?' वह तुरन्त कपड़े पहनकर राजमहलकी ओर गया। वहाँ प्रवेश करते ही उसने एक बड़ा परिवर्तन देखा। सारा राज तंत्र पहलेके ही समान नियमित और विनयशील हो गया है। सैनिक

लोग धीरे धीरे और नियमानुसार घूम रहे हैं। नौकर-चाकर पहलेकी ही भाँति अपने अपने कामपर जा रहे हैं। उसे यह परिवर्त्तन बड़ा मार्मिक प्रतीत हुआ।

सदाकी भाँति उदाने पूछा, "कहो कल्याण नायक, क्या हाल है?" नायकका व्यवहार बड़ा नम्र हो गया था। कुछ अपरिचित-सी सभ्यतासे उसने धीरे-से उत्तर दिया, "सब कुशलता है।" और वह अपने कामसे चला गया।

वह जल्दी जल्दी लीलाधर वैद्यके पास गया। वे प्रसन्नमुखीकी सेवा-शुश्रूषामें थे; इसलिए भेंट नहीं हो सकी। डूंगरकी एक बात तो सच हुई।

जब वह रानीसे मिलनेको चला तो समरसेनने रोक लिया, "महारानीजी मुजाल मेहतासे बातें कर रही हैं।" उदा बरफकी भाँति ठंडा हो गया। अब उसकी समझमें आया कि राजमहल इतना नियमित क्यों हो गया है। स्वामी-हीन राज्यका सच्चा स्वामी आ गया था। उसके मुखसे निःश्वास निकल पड़ा। उसे मुजालकी धाक पहले जैसी ही मालूम हुई और वह यह भूल गया कि मैं भी मंत्री हूँ। वह बड़ी उतावलीसे मुंजाल मेहताके कमरेके समीप पहुँचा। कमरेमें पाटनके अनेक अगुए बैठे हुए उनकी राह देख रहे थे।

कुछ देरमें मुंजालने आकर सबसे भेंट की। उसकी मधुर जिह्वाने प्रत्येकको कुछ न कुछ सम्बोधन किया और अपने आबूजी न जानेका कारण बतलाया कि रानीका हुक्म है। सब हँसे, बोले और चले गये।

मुंजालने कुछ हँसते हुए कहा, "उदा मेहता, ज़रा ठहरना, मुझे कुछ कहना है।"

उदा ठहर गया। इस मनुष्यका जादू उसपर भी चलने लगा था।

"उदाजी, अब राज्याभिषेकका कार्य तुम्हें अपने माथे लेना होगा। इस समय विश्वपाल मालवराजसे मिलने जा रहे हैं आर चार दिनोंके अन्दर वे गुजरातसे बाहर न चले गये तो वल्लभसेनकी अध्यक्षतामे सेनाको भेजनेकी धमकी दे दी गई है। परन्तु, सबसे पहले महाराज जयदेवको सिंहासनपर आरूढ़ होना चाहिए। ऐसे ठाट-बाटसे सब कुछ करना है कि गुजरातने भी कभी न देखा हो। कारण कि मैंने सभी मंडलेश्वरोंको निमंत्रित करनेका विचार किया है। अब पूरा प्रभाव दिखलाना होगा।"

उदाको जो कुछ थोड़ा-बहुत काम-काज मिला, उसे उसने स्वीकार कर लिया। उसे ऐसा लगा कि मुंजालके रहते उसकी कुछ चल नहीं सकती।

मुंजालकी देख-रेखमें, उदाके परिश्रम और पाटनके उत्साहसे, कर्णदेवकी मृत्युके

ठीक सवा महीने बाद जयदेव पराक्रमी गुर्जरेश्वरोंके सिंहासनपर बैठ गये। पाटन हर्षित हुआ। सारे गुजरातमें डंका बज गया। दूर देशोंके द्वेषी राजाओंके हृदयमें, एकताकी यह नई लहर देखकर, एक अकल्पित-सा भय समा गया।

× × × ×

इस एकतासे घबराकर मालवराजने आगे पैर बढ़ाना बन्द कर दिया। खेंगार और वल्लभसेनके उपरात अन्य दो-तीन मंडलेश्वर भी समय देखकर पाटनको कुछ समझने लगे और मुंजालकी राजनीतिसे उनकी स्वतन्त्रता एकदम चली नहीं गई, इसलिए उन्होंने प्रसन्नतासे पाटनकी पीठपर रहकर लड़ना स्वीकार कर लिया।

× × × ×

परन्तु मंडलेश्वरोंका नायक त्रिभुवनपाल इस समय सब कुछ भूल गया था। एक बहुत जरूरी काममे वह रुका हुआ था और वह था प्रसन्नमुखीको मनाना। कुछ दिनोंके पश्चात् एक और बड़े उत्सवके पीछे पाटनके लोग पागल हो गये। उनके दंडनायकका ऐसे ठाटसे प्रसन्नमुखीके साथ विवाह हुआ कि जयदेवके राज्याभिषेकके अवसरको भी लोग भूल गये। कठोर-हृदय मुंजालके नेत्रोंसे टप टप आँसू टपक पड़े। रानीको सूझा ही नहीं कि वह हँसे या रोए। इस विवाहके पीछे लोगोंको इतना पागल हुआ देखकर जयदेव अपने विवाहकी भी हठ ठान बैठा।

रानीने मुंजालसे कहा, "इस प्रसंगपर अब कोई कमी नहीं रह गई है।"

मुंजालने उत्तर दिया, "कमी केवल मेरी बहन और बहनोईकी है।"

+ + + +

त्रिभुवन पाणिग्रहण करके ज्यों ही उठा कि उदा मेहता मिले।

"उदा मेहता, अब तुम कब विवाह करोगे?"

उदाने एक आँखको मींचकर कहा, "महाराज, गुर्जर-राष्ट्रमे प्रसन्नमुखी एक ही थी, दूसरी कहाँ है?"

"क्यों बे बनिये! यह गुस्ताखी..."

× × ×

मुंजाल और त्रिभुवन मिले और भेंटे।

"मामाजी, अब तो राजी हुए?"

"नहीं भइया!"

"क्यों, अब और क्या बाकी है?"

"जब पाटनका दंडनायक अवन्तीसे चौथ लेगा, तब राजी होऊँगा।"

* * * *

रात हुई। देवप्रसादका सूना महल, जो हर्षसे गूँज रहा था, शान्त हो गया। उसमें एक मुग्धा मद और मानसे भरी हुई बैठी थी।

" अब तुम्हें पाटन छोड़ना हो तो छोड़ सकते हो, छुट्टी है।"

" अब कहाँ जाऊँ ? उस समय क्यों नहीं जाने दिया ? "

अपने कोमल हाथोंकी मुट्ठी ऊँची करके प्रसन्नने कहा, " अपना माथा फोड़वानेके लिए। अब देखना है कि किसका माथा फूटता है। "

" देख लिया तुम्हारे हाथोंको, अभी चाहूँ तो मसल डालूँ। "

" याद रक्खो, इन हाथोंने तुम्हें मरतेसे बचाया है।"

" इन हाथोंने ! कब ? "

" जब कुमार जयदेवने तलवार तानी थी, तब उसका हाथ किसने घायल किया था, भूल गये ? "

" तुमने !—तुम तो—" कहकर त्रिभुवन एकदम समीप बढ़ आया।

" खबरदार ! "

" क्यों ? "

आँखोंको नचाते हुए प्रसन्नने कहा, " उस बेचारे मुरारपालको तो इस समय नींद ही नहीं आ रही होगी। "

" प्रसन्न, अब मज़ाक रहने दो। इस समय तुम्हें देखकर मेरी समझमें एक बात आ रही है। "

" क्या ? "

" यह कि पिताजीने माताजीके लिए क्यों अपने प्राण दे दिये।"

× × × ×

ताम्रचूड़ध्वज सिद्धराज जयसिंहके महान् साम्राज्यका आरम्भ हुआ। स्वार्थमें घिसटते हुए भिन्न भिन्न व्यक्तियोंका केवल एक ही ध्येय हो गया। उनके हृदयमें केवल एक ही मंत्र गूँजने लगा।

वह ध्येय, वह मंत्र था, " जय सोमनाथ ! "

समाप्त